प्रकाशक :

श्री जिनदत्तसूरि मण्डल

दादावाड़ी, अजमेर (राजस्थान)

☆

आवृत्ति चतुर्थ

वीर स २५०१

वि. सं. २०३१

दिसम्बर, १९७४

प्रति १०००

कुल प्रति ४७००

मूल्य : रु० ५ ५०

★

मुद्रक

शिरीशचन्द्र शिवहरे

दी फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस

अजमेर दिसम्बर, १९७४

पुस्तक प्राप्ति स्थान

१ श्री जैन श्वेताम्बर सेवा समिति
१५, नारायण प्रसाद बाबू लेन, कलकत्ता।

२ सरस्वती पुस्तक भण्डार
रतन पोल, हाथीखाना, अहमदाबाद

३. सोमचन्द डी० शाह
पालीताणा (सौराष्ट्र)

४ मास्टर मेवतीलाल वी० शाह
२०, महाजनगली, पहला माला
झवेरी बाजार, बम्बई—२

५. शाह वेलजी मेघजी गुटका
१६८ मोतीशाह जैन पार्क
मोतीशाह लेन, भायखला
बम्बई—२७

६. शाह ललितकुमार गोरधन भाई
शिवगंज (राज०)

७ मेघराज पुस्तक भण्डार
219A, कीका स्ट्रीट,
गोडीजी चाल, बम्बई—२

८. जैन भवन
P—२५ कलाकार स्ट्रीट,
कलकत्ता

९ श्री नमस्कार महामन्त्र
आराधक मण्डल,
महावीर नगर, जवेरी सडक
बंगला नं० १३,
नवसारी (गुजरात)

नमस्कार महामन्त्र पर उपलब्ध अन्य दो हिन्दी संस्करण

(१) महामन्त्र की अनुप्रेक्षा

लेखक:
पू० पं० श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर

इस पुस्तक में पूज्य पं० श्री भद्रंकरविजयजी ने नमस्कार महामन्त्र पर तात्त्विक चिन्तन प्रस्तुत किया है। यह चिन्तन उनकी गुजराती अनुप्रेक्षा भाग १, २, ३ में आबद्ध था। अब वह चिन्तन महामन्त्र की अनुप्रेक्षा नामक पुस्तक में संकलित कर दिया गया है।

* * * *

(२) परमेष्ठि नमस्कार

लेखक:
पू० पं० श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर

प्राप्ति स्थान: (१) सोमचन्द डी. शाह पालीताणा (सौराष्ट्र)
(२) श्री जिनदत्तसूरि मण्डल, दादावाडी, अजमेर

नमस्कार चिन्तामणि

(हिन्दी)

श्री नमस्कार महामन्त्र की आराधना करने के लिये अत्यन्त उपयोगी "श्री नमस्कार चिन्तामणि" नाम की ३०० पृष्ठ की पुस्तक गुजराती भाषा में मुनिराज श्री कुन्दकुन्दविजयजी म० सा० ने तैयार की थी। गुजराती प्रजा में यह पुस्तक अति लोकप्रिय बनी। उसके पश्चात् अनेक महानुभावों ने हिन्दी-भाषी विशाल जनसमूह को भी इस उपयोगी वांचन-मनन का लाभ मिले उसके लिये उसका हिन्दी में अनुवाद कराने की तीव्र मांग की। तदनुसार मूल गुजराती से उसका हिन्दी भाषान्तर श्रीमान् चान्दमलजी सीपाणी ने अत्यन्त उत्साह और लगन पूर्वक समर्पण भाव से सरल और भाववाँही हिन्दी भाषा में किया और उसको श्री जिनदत्तसूरि मण्डल, अजमेर द्वारा छपवाकर प्रकट किया गया है।

नमस्कार महामन्त्र यह जैन शासन का प्राण है। इस महामन्त्र की उपासना के लिये हर जैन के घर में इस पुस्तक को रखकर उसके द्वारा मार्गदर्शन करके महामन्त्र की आराधना द्वारा दुर्लभ मानव जन्म को सफल करें ऐसी मेरी नम्र प्रार्थना है।

सोहनलाल पटनी
एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी)
हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, सिरोही (राज०)

विषयानुक्रम



पृष्ठ

पृष्ठ

पृष्ठ

पृष्ठ

अभिप्राय १

जैन कुल में उत्पन्न हुए व्यक्तियों को महामन्त्र की महिमा बारम्बार सुनने को मिलती है परन्तु वह अधिकांश में फल श्रुति रूप होती है। साधक स्वयं साधना में तीव्रता लाने के लिये आवश्यक ऐसी बहुत सी बातों से अनभिज्ञ होते हैं। इसलिये साधना करने पर भी वे उसका शास्त्रोक्त परिणाम नहीं ला सकते। साधना के लिये चार बातों की जानकारी अनिवार्य है। एक साधक, दूसरी साध्य, तीसरी साधना और चौथी उसका फल। इन चार बातों का ज्ञान साधक को भली भांति होना चाहिये। नमस्कार चिंतामणि नामक इस पुस्तक में इन चार बातों का ज्ञान अलग अलग रीति से बतलाने का प्रयास किया गया है।

साधक को महामन्त्र की साधना के योग्य सदाचार आदि गुणों से युक्त होना चाहिये, साध्य अभीष्ट, अबाधित और सर्व-श्रेष्ठ होना चाहिये, साधना शब्द अर्थ दोनों से उपयोग सहित होनी चाहिये तथा उसका परम्पर फल एकांतिक, आत्यंतिक और अविनश्वर सुख स्वरूप मोक्ष होना चाहिये।

महामन्त्र की साधना में उपयोगी इन चार बातों का बुद्धिग्राह्य और हृदयस्पर्शी वर्णन इस पुस्तक में बताया गया है। जिज्ञासु वर्ग इससे लाभ लेकर कृतार्थ बने यही अभिलाषा है।

पं० भद्रंकरविजय गणी

अभिप्राय २

श्री नमस्कार महामन्त्र की आराधना क्यों करना चाहिये, साधना में वल कैसे आवे तथा साधना उत्तम रीति से सफल कैसे हो, इन विषयों पर इस पुस्तक में लेखक मुनिराज श्री कुंदकुंदविजयजी ने इतने महत्त्वपूर्ण उपयोगी विषयों का सामावेश किया है कि विविध रुचि रखने वाले विविध कोटि के साधकों को अपनी २ उपयोगी अनेक प्रकार की सामग्री इसमें मिल जाती है।

'नमस्कार का विशेष परिचय' नामक प्रकरण में पुण्याड्-गजननी इत्यादि नमस्कार के विशेषणों का विवेचन तथा नमस्कार महामन्त्र की महिमा का वर्णन इतना भाववाही और रोचक है कि पढ़ने में अपूर्व आनन्द का अनुभव होता है।

"साधना मार्ग में पथ्यापथ्य", "साधक जीवन और नियमितता," "दोषों को जीतने के उपाय" ये प्रकरण इतने सुन्दर तरीके से लिखे गये हैं कि केवल महामन्त्र के साधकों को ही नहीं वरन् जो मनुष्य जीवन में अच्छा मानव वनना चाहता हो और जीवन को सुख शान्तिमय वनाना चाहता हो उसके लिये भी ये प्रकरण बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

विशेषता यह है कि यह पुस्तक लेखक की दीर्घकाल की देव गुरु की उपासना का परिणाम होने से पुस्तक का कितना ही भाग लेखक की अन्तरात्मा से निकलने से प्रवाह रूप वन गया है।

भाषा सरल होने के साथ-साथ सौम्य, भाववाही और मधुर होने से पुस्तक आवाल वृद्ध सब के लिये उपयोगी हो ऐसी है।

इस प्रकार यह पुस्तक विविध रूप से उपयोगी होने से हर एक मनुष्य को घर में रखने योग्य है और वाचन मनन कर जीवन में उतारने जैसी है।

पूज्यपाद गुरुदेव मुनिराज श्री भुवन विजयान्तेवासी

मुनि जम्बूविजय

अभिप्राय ३

मुझे मुनिराज श्री कुन्दकुन्दविजयजी महाराज विरचित 'नमस्कार चिन्तामणि' पुस्तक के अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त हुवा। निःसन्देह नमस्कार महामन्त्र पर जितनी भी कृतियाँ हमारी राजभाषा हिन्दी में इस समय उपलब्ध हैं उनमे यह कृति अपना विशिष्ट स्थान रखती है तथा सदैव रखेगी।

प्रस्तुत पुस्तक में मुनिश्री ने नमस्कार मन्त्र पर विविध आध्यात्मिक दृष्टिकोणों को लेकर गम्भीर, विशद तथा विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया है, जो वास्तव में प्रेरणास्पद है।

नमस्कार मन्त्र की साधना के बाह्य रूप अपनी अपनी मान्यतानुसार विविध प्रकार के हो सकते हैं, किन्तु सिद्धान्त की दृष्टि से साध्य के स्वरूप में मेरी साधारण बुद्धि में किसी मौलिक मतभेद की गुंजाइश कदाचित् ही हो सकती है। मेरा विश्वास है कि नमस्कार मन्त्र के सैद्धान्तिक स्वरूप को जन साधारण के समक्ष प्रस्तुत करने की दिशा में यह एक महान् तथा पावन प्रयास है। पुस्तक की शैली सुन्दर, सुगम तथा रोचक है और छपाई आदि उत्तम है।

मेरी मान्यता है कि इस महान् उपयोगी रचना का जैन तथा अजैन आध्यात्मिक जगत् में सर्वत्र समुचित सन्मान तथा स्वागत किया जावेगा।

इन्द्रनाथ मोदी
दी रिटायर्ड हाईकोर्ट जज
जोधपुर (राजस्थान)

५ अक्टूबर, १९६९
मोदी हाउस, जोधपुर

NAVKAR is always divine Our existing Soul is potentially divine. The aim is to manifest this divinity But how to approach the emanicipation is the main crux

Rev Maharaja Shree has unravelled the mystrey of it in the 'pravesh' of 'Namskar Chintamani' which is composed by him.

He has narrated the following four leading points (steps) at length in the pravesh of it, which is pleasing and also charming.

1. KRITAGYATA (कृतज्ञता)
2. PAROPAKARITA (परोपकारिता)
3. ATMASAMDARSHITVA (આત્મસમદર્શિત્વ)
4. PARMATMASAMDARSHITVA (પરમાત્મ-સમદર્શિત્વ)

All these are relative to one another. Practise these and the goal is at your feet.

Do these and be free, this is the essence of all religions.

All the sweetness of religion-exhortation is conveyed to the reader through the magic hands of Shree KUNDKUNDVIJAYJI

Any one who is hungry for spiritual development can go through and grasp something one likes This is tne climax since his writing so far.

Dantta (Saurashtra) Shantilal D. Shah

अभिप्राय ५

पूज्य मुनिराज श्री कुन्दकुन्दविजयजी महाराज द्वारा रचित 'नमस्कार चिन्तामणि' नामक ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद मैंने आद्योपान्त पढ़ा। श्री नमस्कार महामन्त्र के सम्बन्ध मे अनेक पहलुओं से इस ग्रन्थ मे विवेचन किया गया है। महामन्त्र के अन्तरग व बाह्य स्वरूप पर समग्र रूप से इतना प्रकाश किसी अन्य ग्रन्थ में नजर नहीं आया। मन्त्रसाधना के अनेक प्रकार बताकर मुनिश्री ने साधको का मार्गदर्शन अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है। प्रत्येक सद्गृहस्थ के लिये यह ग्रन्थ मननीय है।

सरदारपुरा, — **रिखबराज कर्णावट**

जोधपुर (राज०) — एडवोकेट सुप्रीम कोर्ट

अभिप्राय ६

'नमस्कार चिन्तामणि' पुस्तक प्राप्त हो गई। पुस्तक बहुत उपयोगी है।

डॉ० मोहनलाल मेहता, अध्यक्ष

दि० १४-४-६६ — पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, जैनाश्रम, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–५

अभिप्राय ७

विजयानन्द अप्रेल १९७१

एक समय था जब भारतीय समाज में मन्त्र-तन्त्र का बड़ा प्रभाव था किन्तु वैज्ञानिक मूल्य के प्रसार के साथ मन्त्र शास्त्र का उतना प्रभाव नहीं रह सका, फिर भी आज जैन समाज मे नमस्कार महामन्त्र के प्रति जितनी गहरी आस्था विद्यमान है उतनी किसी और मन्त्र के प्रति नहीं।

यह महामन्त्र एक प्रकार से प्राण है, आगम में इसे समस्त विद्याओं का बीज कहा गया है। जीव का उद्देश्य संसार के कष्टो से छुटकारा पाकर अपने परम अखण्ड चित् स्वरूप का आस्वादन करना है और इसके लिये नमस्कार महामन्त्र मुख्य और वेजोड़ साधन है। इस महामन्त्र की अपूर्व शक्ति है, भावपूर्वक इसका जाप करने से असंख्य भवों के पाप क्षणमात्र में धुल जाते है। इतना ही नहीं इस महामन्त्र की मात्र प्राप्ति जिन्हे हो जाती है उनका जीवन सार्थक हो जाता है। अपूर्व प्रभाव वाले इस महामन्त्र की साधना विधि पूर्वक करना चाहिये, बहुत से ऐसे भक्त हैं जिनकी मन्त्र में आस्था तो है किन्तु उसकी विधि से न तो परिचित हैं और न उनके पास ऐसा कोई साधन ही। इस सम्बन्ध में मुद्रित पुस्तको का तो प्रायः अभाव ही है। मुनि श्री कुन्दकुन्दविजयजी महाराज ने ऐसे भक्तों की कठिनाई को ध्यान में रखकर 'नमस्कार चिन्तामणि' पुस्तक लिखकर लाखों लोगो का उपकार किया है, प्रस्तुत कृति दो भागों में विभाजित है। पूर्वार्ध में नमस्कार महामन्त्र का प्रभाव पंच परमेष्ठी भगवन्तो के गुणो पर प्रकाश स्तुतियां, नमस्कार मन्त्र की रीति, जाप का तरीका, प्रकार, साधक की योग्यता, ध्यान की विधि आदि अनेक विषयो पर प्रकाश डाला गया है। उत्तरार्ध में साधना में उपस्थित होने वाले विघ्नों को जीतने का उपाय, लक्ष नवकार जाप के अनुष्ठान की विधि, नव दिन एकासन से नवकार तप की विधि, संथारा पोरिसी मूल आदि अनेक विषयों पर विशद प्रकाश डाला गया है। अन्त में कुछ स्तुतियाँ भी दी गई हैं। निश्चय ही इस पुस्तक के प्रकाशन से महामन्त्र के प्रभाव से धर्म बन्धु लाभ उठा सकेंगे। कागज और छपाई सुन्दर है।

प्रो० पृथ्वीराज जैन एम० ए०

अभिप्राय ८

इस पुस्तक में 'नवकार महामन्त्र' की महिमा बड़े सुन्दर ढग से वर्णित की गई है। नवकार मन्त्र का महत्त्व, जाप करने की विधि, उसका लाभ आदि पर अत्यन्त सरल तथा सुबोध भाषा में प्रकाश डाला गया है।

वस्तुतः जैन-समाज मे भी अधिकांश ऐसे व्यक्ति हैं, जो नवकार मन्त्र का जाप तो करते हैं, लेकिन उसके गूढार्थ को नहीं समझते। मुझे पूरा विश्वास है कि यह पुस्तक जैन तथा जैनेतर समाजों के लिये बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी।

ऐसे लोकोपयोगी प्रकाशन के लिए मैं आपको हार्दिक बधाई देता हूँ।

पुस्तक का अनुवाद अच्छा हुआ है। पढ़ने में ऐसा लगता है मानो पुस्तक मूल रूप से ही लिखी गई है।

यशपाल जैन
(प्रख्यात साहित्यकार)

अभिप्राय ९

मूल 'नमस्कार चिन्तामणि' मुनि श्री कुन्दकुन्दविजयजी ने गुजराती में लिखी है। पुस्तक की लोकप्रियता से प्रभावित होकर श्री चाँदमल सीपाणी ने इसका हिन्दी में अनुवाद किया है। इसमें मत्राधिराज 'नवकार' मत्र की विविध रीति से व्यापकता एवं महत्ता बताई गई है। 'नवकार' मत्र के प्रेमी साधको के लिए यह ग्रंथ अत्यन्त उपयोगी है। भाषा रोचक तथा मुद्रण उत्तम है।

अमर भारती
अक्टूबर १९७४

अभिप्राय १०

'नमस्कार चितामणि' पढ़ी। यह पुस्तक मनुष्य मात्र के लिये उपयोगी है। पुस्तक के पढ़ने से एकदम नवकार मंत्र पर इतनी श्रद्धा होती है कि इसमे बताये विधान अनुसार इसका जाप करना ही चाहिये।

मानमल चोरड़िया
मैनेजर
श्री जैसलमेर लौ. पा. जैन श्वे० ट्रस्ट
जैसलमेर

अभिप्राय ११

'नमस्कार चितामणि' किताब सचमुच बहुत ही उपयोगी है। नमस्कार महामंत्र का सच्चा स्वरूप इसमें बताया गया है। हम चाहते हैं कि हरएक जैन भाई बहन पढ़कर अपने जीवन में इसका आदर्श प्रस्थापित करे और अपना जीवन सार्थक करे।

नमस्कार चितामणि का भाषांतर बहुत ही अच्छा और सुरुचिपूर्ण हुवा है। भाषांतर कर्ता सचमुच ही बधाई के पात्र हैं।

हम 'चांदमलजी सीपाणी' को इस अवसर पर धन्यवाद देते हैं।

जवाहर कान्तीलाल मेहता
महामंत्री
श्री संयुक्त जैन विद्यार्थी गृह
89/4 प्रिंसेस स्ट्रीट बम्बई 22

दि. ५-९-७२

प्रकाशकीय निवेदन

पहली आवृत्ति

श्री जिनदत्तसूरि मण्डल द्वारा संचालित श्री जिनदत्तसूरि ज्ञान माला के बारहवें पुष्प के रूप में यह प्रकाशन प्रस्तुत करते हुए हमे हर्ष का अनुभव हो रहा है।

नवकार मन्त्र का सम्बन्ध विश्वदृष्टि से कितना व्यापक और उच्च है, इस पर विचार कर यदि इसकी आराधना की जाय तो मनुष्य के प्राण और मन मे नवकार अपना अभूतपूर्व प्रभाव स्थापित करने मे समर्थ है।

आज की प्रजा मे जिज्ञासा है, सद्भाव है, जानने की आतुरता है। धर्म में रहे हुए इतने सुन्दर, इतने अद्भुत और जीवन में पग पग पर उपयोगी तत्व को समझकर मानव मात्र इससे लाभान्वित हो, यही इस प्रकाशन का उद्देश्य है।

परमपूज्य मुनिराज श्रीकुन्दकुन्दविजयजी महाराज ने नमस्कार चिन्तामणि नाम की इस पुस्तक में मन्त्राधिराज श्री नवकार के प्रति श्रद्धा, भक्ति और आन्तरिक पक्षपात प्रगटे उसके लिये विविध रीति से सरल और रोचक गुजराती भाषा में अनुमोदनीय तत्व प्रस्तुत किये है उसीका यह हिन्दी अनुवाद आपके समक्ष है।

श्री नवकार में कृतज्ञता, परार्थता, आत्मसमदर्शिता, और परमात्मसमदर्शिता का स्थान कैसा है, वह इस पुस्तक के 'प्रवेश' मे विद्वान लेखक ने भली प्रकार स्पष्ट किया है।

महामन्त्र की साधना के लिये यह पुस्तक भाग्यशालियों को नवकार मंत्र की साधना मे पूरी तरह मार्गदर्शक और प्रेरक बनी रहेगी, यह इसमे वर्णित विषयों व उसकी स्पष्टता को देखकर बराबर समझा जा सकता है।

परमपूज्य प० श्री भद्रंकरविजयजी गणिवरजी की मननीय प्रस्तावना तथा प० पू० मुनि राजश्री जम्बूविजयजी म० सा० के दो शब्द भी महामन्त्र की साधना मे वेग लाने के लिये अवश्य उपयोगी सिद्ध होगे।

इस अपूर्व पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रकाशन करने की आज्ञा पू० मुनिराज श्रीकुन्दकुन्दविजयजी महाराज साहब ने प्रदान की, अतः हम उनके आभारी हैं।

नवकार साधना में उपयोगी सामग्री से समृद्ध यह पुस्तक हिन्दी भाषा भाषी जिज्ञासुओ के लिये उपयोगी सिद्ध हो तथा पाठकगण इससे लाभ उठावें यही अभिलाषा है।

जनवरी, १९६९

दूसरी आवृत्ति

नमस्कार चिन्तामणि की दूसरी आवृत्ति पहली आवृत्ति के तुरन्त समाप्त हो जाने के कारण एक माह बाद ही प्रकाशित करनी पड़ी। इस पुस्तक की उपयोगिता तथा हृदय स्पर्शिता का यह ज्वलत उदाहरण है।

मार्च १९६९

यहां एक बात उल्लेखनीय है कि श्रीमान् रामलालजी सा. लूणिया ने इस आवृत्ति की ५०० पुस्तके रु. ७५०) मे क्रय कर सस्था को दी जिससे कि भविष्य मे छपने वाली आवृत्तियों मे यह राशि काम मे आती रहे। इसके लिये मण्डल उनका आभारी है।

तीसरी आवृत्ति

इस आवृत्ति को मुद्रणालय में देने से पूर्व श्री नानालालजी सा० रूणवाल झाबुआ निवासी ने स्वयं ही सघ व धर्म की सेवा भावना से प्रेरित होकर हिन्दी अनुवाद मे आवश्यक सशोधन कर पुस्तक को सुन्दर बनाने मे जो सहयोग दिया उसके लिये मण्डल उनका आभारी है।

चतुर्थ आवृत्ति

तीसरी आवृत्ति की प्रतिया प्रकाशन के कुछ माह बाद समाप्त हो जाने पर चतुर्थ आवृत्ति आर्थिक व्यवस्था के अभाव में हम शीघ्र प्रकाशित न कर सके। हम तपस्वी श्री शेषमलजी सा. पण्डया, मंत्री सघ, सादड़ी के अत्यन्त आभारी है जिन्होने रु. २०००) की नकले खरीद कर राशि अग्रिम देकर इस आवृत्ति को प्रकाशित करने मे हमे प्रोत्साहित किया। धर्मप्राण श्री पण्डयाजी का साहित्य प्रेम श्लाघनीय एव अनुकरणीय है। शासन देव से प्रार्थना है कि वे उन्हे दीर्घायु करे।

चाँदमल सीपाणी

मत्री

दिसम्बर १६७४. श्री जिनदत्त सूरि मण्डल,

दादावाड़ी, अजमेर

नमस्कार चिंतामणि

प्रस्तावना

प्रभु शासन प्राप्त भव्यात्माओं का महामंत्र श्री नवकार के प्रति स्वाभाविक रूप से आकर्षण देखा जाता है। यहां कदाचित् ऐसा प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि आकर्षित होने का क्या कारण है? इसका संक्षेप में यही उत्तर है कि जैन शासन को प्राप्त पुण्यवान् आत्माओं को नवकार अपना प्राण है। प्राण के बिना फिर भी काम चलाया जा सकता है परन्तु महामंत्र श्री नवकार के बिना काम नहीं चल सकता, ऐसी दृढ़ श्रद्धा जैन कुल मे उत्पन्न होने वालों को जन्म सिद्ध अधिकार के रूप में मिली हुई होती है। जन्मते, मरते, उठते, बैठते, सोते, जागते, खाते-पीते, सुख मे, दुःख मे, त्याग मे, या भोग में प्रत्येक सम्यग् दृष्टि जीव को श्री नवकार महामत्र की जरूरत होती है। वह भी चित्त-समाधि के लिये। चित्त की समाधि यह सम्यग्दृष्टि के लिये सबसे बड़ा धन है। महामत्र के स्मरण बिना उसे बेचैनी का अनुभव होता है। बिना मां के बालक की तरह उसे अनाथपन का अनुभव होता है। नवकार सम्यग्दृष्टि जीव को माता है, पिता है, बंधु है, मित्र है, स्वामी है, गुरु है। लौकिक हितकारी माता-पिता का सयोग भी उसी के प्रभाव से है ऐसा वह मानता है। जन्मांतरों मे उसे वह एक साथी है, सहचारी है, ऐसी श्रद्धा उसे होती है। किसलिये? कारण कि उसे बारम्बार सुनने को मिलता है कि नवकार द्वादशांगी का सार है, चौदह पूर्व का उद्धार है, चौदह पूर्वियों को भी अन्त समय मे उसी का एक परम आधार है। ऐसा कहने वाले पुरुष उसके मन श्रद्धेय हैं, आराध्य हैं। क्योंकि उनका वचन अविसंवादी, सफल प्रवृत्तिजनक और स्वयं के अनुभव से कहा हुआ होता

है। वे मानते हैं कि महामंत्र के प्रत्येक पद और वर्ण पवित्र है। क्योंकि वे पवित्र पुरुषों के द्वारा कहे गये हैं, स्मरण करनेवाले को पवित्र करनेवाले हैं और पवित्रतम ऐसे परमपद मोक्ष को देनेवाले हैं। वे पद सब लक्षणों से युक्त हैं और लक्षणों से युक्त वस्तुओं का देवता सन्निधान करते हैं। इसलिये इस महामंत्र का प्रत्येक वर्ण श्रेष्ठ-प्रवचन-देवताओं से अधिष्ठित हैं। इसके अतिरिक्त वे जानते है कि मन्त्र के अक्षरों का उनके वाच्य परमेष्ठियो के साथ अनादि सिद्ध सम्बन्ध है। मन्त्र पदों का स्मरण करने से परमेष्ठि भगवन्तों का स्मरण होता है। मन्त्र के अक्षर-मात्र अक्षर ही नही हैं, परन्तु वाच्य वाचक सम्बन्ध से सिद्ध स्वयं परमेष्ठि ही हैं। इन अक्षरों का एकाग्रचित्त से स्मरण करने से परमेष्ठि भगवंत सन्मुख ही आते हों, अथवा हृदय में प्रवेश ही करते हों, अथवा अपने साथ मधुर सम्भाषण ही करते हों, अथवा अंगोअंग मे आकर मिलते या तन्मयी-भाव को प्राप्त होते हो, ऐसा अनुभव होता है।

ऐसा अनुभव केवल योगी पुरुषो को ही होता हो और दूसरों को न होता हो ऐसी बात नही है। कोई भी श्रद्धालु आत्मा जब महामंत्र के स्मरण मे तल्लीन होता है, तब उसे ऐसा अनुभव आंशिक रूप मे होने लगता है। इसका मुख्य कारण महामंत्र की शाश्वतता है। सब तीर्थंकर, गणधर उस भव मे या पूर्व भवो मे इस महामंत्र की साधना किए हुए होते हैं, और उसका फल साक्षात् अनुभव कर उपदेश देने वाले होते हैं। उनकी संकल्प शक्ति भी महामंत्र को प्रभाव-शाली बनाने मे सहायक होती है। उनके वचन-प्रामाण्य से तीनो लोक मे रहे हुए सर्व सम्यग्दृष्टि जीव इस महामंत्र का सतत आराधन करते रहते हैं और उनके द्वारा परमेष्ठियो

के साथ तन्मय भाव को प्राप्त करते रहते है। इन सबो का लाभ महामन्त्र का स्मरण करने वालों को अदृश्य और अगम्य रूप से मिलता रहता है।

दूसरे मन्त्रों की तरह महामंत्र की साधना की भी एक विधि है। साधक कैसा होना चाहिये, साध्य का स्वरूप क्या है, साधना की विधि क्या है और उसका अनन्तर व परम्पर फल क्या है, वह सब समझकर यदि साधना की जाय तो वह शीघ्र फल देता है। नमस्कार चिंतामणि नामक इस पुस्तक मे ये बाते यथाशक्ति, यथामति बतलाई गई हैं। वाचक उसकी साधना मे शीघ्र प्रगति कर सके इसके लिये जरूरी अनेक बाते इस पुस्तक मे संगृहीत की गई हैं। प्रत्येक प्रकरण में कही गई बातो को लेखक ने समझ, विचार और यथाशक्ति जीवन मे अनुभव कर लिखी हैं जिससे पढने वालो पर उसका सीधा प्रभाव पड़ता है।

पुस्तक पूरी पढने के बाद पढने वाले को ऐसा आभास होता है कि जब तक इस महामन्त्र और उसकी साधना विद्यमान है, तब तक जैन सब को अपना अभ्युदय करने मे, एक क्षण भी विलम्ब हो ऐसा नही है। सिर्फ साधक को योग्य और अधिकारी बनना चाहिये। साधक की योग्यता और अधिकारिता के लिये मुख्यतः दो बातों पर प्रधान लक्ष रखना आवश्यक है एक मन और दूसरी इन्द्रिया। मन को सब जीवो के साथ मैत्री आदि भावो से भावित-वासित करना चाहिये और इंद्रियो को विषयो की विपाक-विरसता का विचार कर संयमी बनाना चाहिये। ये दोनो बाते मिलकर उपकार करती हैं। इन्द्रियो के संयम से मन शुद्ध होता है और मन की शुद्धि से इंद्रियां निर्विकार बनती हैं। अत

नियमो का आग्रहपूर्वक पालन भी इंद्रियो के संयम मे सहायता करता है और देव, गुरु, संघ, साधर्मिक की सेवा-भक्ति भी मन की शुद्धि मे बल प्रदान करती है। जैन शासन मे देव की पूजा, गुरु की सेवा, संघ की भक्ति और साधर्मिक का वात्सल्य, भावधर्म की वृद्धि करने वाले हैं, ऐसा कहा गया है। भावधर्म की वृद्धि से दान, शील, तप आदि धर्म के प्रकार और दूसरे शुद्ध आचारों की भी वृद्धि होती है। बाह्य शुद्ध आचरण भी फिर से भाव धर्म की वृद्धि करते हैं और इस तरह उत्तरोत्तर दोनो धर्मो की वृद्धि होने से घाति कर्मों का क्षय और अन्त मे केवलज्ञान और मुक्ति सुख की प्राप्ति होती है।

अधिकारिता प्राप्त कर महामन्त्र नवकार की आराधना करने से जैसे शीघ्र फल प्राप्ति सम्भव है, वैसे नये धर्मी को महामन्त्र की आराधना स्वय भी अधिकारिता प्राप्त कराने मे सहायक होती है, शास्त्रो में इष्ट देवता के स्मरण को आदि धार्मिक पुरुष का प्रधान लक्षण कहा है जिससे श्री जिनेश्वरदेव के शासन मे इस महामन्त्र की आराधना करने के लिये आबाल वृद्ध सब ही जीवो को एक अपेक्षा से समान अधिकारी माना है। इस तरह सब प्रकार के अधिकारी को उपकारी होने से महामत्र की आराधना मे उपयोगी ऐसे विषयो वाली यह पुस्तक सब आत्मार्थी जीवो को प्रिय लगे, इसमें कोई आश्चर्य नही।

सब इस पुस्तक से यथाशक्ति लाभ उठा कर महामत्र के उच्च कोटि के आराधक बने, यही कामना है।

पं० भद्रंकरविजय गणी

श्रीशंखेश्वर पार्श्वनाथाय नमः ॥

दो शब्द

मानव जीवन मे मत्र का स्थान बहुत महत्त्व का है। आध्यात्मिक, आधिभौतिक, तथा आधिदैविक ऐसे तीन प्रकार के दुःखो में से किसी भी दुःख से जगत् के प्राणी हमेशा विविध प्रकार के दुःखो का अनुभव करते रहते हैं। इन दुःखों से बचाने की ऐसी अद्भुत दिव्य शक्ति मंत्राक्षरों मे भरी हुई है जिसकी कल्पना नही की जा सकती। इसीलिये परम पुरुषार्थ स्वरूप मोक्ष के उपायो मे मंत्रयोग बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

"मननात् त्रायते यस्मात्, तस्मान्मन्त्रः प्रकीर्तितः।"

अर्थ—मनन करने से जो अक्षर अपनी रक्षा करते हैं, उन अक्षरो को इस कारण से मन्त्र कहा जाता है।

अपनी स्थूल बुद्धि से साधारण मालूम होने वाली उन विशिष्ट वनस्पतियों मे भयकर से भयंकर अनेक व्याधियों का नाश करने की तथा शारीरिक और मानसिक पुष्टि तथा तुष्टि करने की प्रबल सामर्थ्य होती है। आयुर्वेद के सारे शास्त्र वनस्पतियो की सामर्थ्य पर ही बने हुए है और शारीरिक तथा मानसिक सुख के लिये असंख्य मनुष्य इसका आश्रय लेते आये हैं। उसी तरह अपनी बुद्धि से सामान्य लगने वाले ऐसे कितने ही अक्षर हैं जिनमे विविध कार्य कराने की अगाध सामर्थ्य गुप्त

रीति से होती है। योगी पुरुष अपनी दिव्य योग दृष्टि से इस सामर्थ्य का साक्षात्कार कर विविध कार्यों के लिये विविध अक्षरों की योजना करते हैं वे मन्त्राक्षरों के नाम से पहिचाने जाते हैं।

जिस प्रकार औषधियां भिन्न भिन्न अनुपात के साथ लेने से तथा भिन्न भिन्न प्रकार के मिश्रण करने से विविध सामर्थ्य देनेवाली होती हैं, उसी प्रकार मंत्राक्षर भी विविध मुद्रा, न्यास, मण्डल तथा वर्ण (रंग) आदि प्रयोग से तथा विविध रीति से संयोजन करने से अनेक प्रकार के अद्‌भुत चमत्कारी कार्य कर सकते है। इसी दृष्टिकोण से मन्त्र के विवि विधान तथा आम्नायो के अनेक ग्रन्थ रचे गये हैं।

ऐसे मत्राक्षरो मे पंच परमेष्ठि नमस्कार मन्त्र सब से श्रेष्ठ मंत्र है। भगवान् महावीर देव से लेकर आज तक के रचित विपुल साहित्य में नमस्कार महामन्त्र की अचित्य और अपार महिमा का जगह-जगह वर्णन किया गया है। जैनो के सब विभागो मे इस मन्त्र की महिमा सब से श्रेष्ठ मानी गई है। यह मन्त्र जैनो के घर-घर में प्रसिद्ध है। जैन धर्म के किसी भी शास्त्र का ज्ञान नही रखने वाला भी प्रत्येक जैनी कम से कम 'नमस्कार महामन्त्र' का ज्ञान तो अवश्य ही रखता है और सुख-दुःख आदि सब अवसरों पर इस मन्त्र का स्मरण करता है। इस मन्त्र का स्मरण परम लाभदायक है ऐसा सब ही जैनी परापूर्व से मानते आये हैं और मान रहे हैं।

नमस्कार महामन्त्र को इतनी बड़ी उत्कृष्ट प्रतिष्ठा किस

कारण से है ? इसका विचार करने पर इसके दो कारण मुख्यतः मालूम होते है प्रथम तो इसकी शब्द योजना ही ऐसी है कि जो परम कल्याण और अभ्युदय को साधती है। दूसरे उसके अर्थरूप वाच्य, जो पच परमेष्ठी हैं वे जगत् में श्रेष्ठतम आत्माए हैं। उनसे अधिक उत्तम दूसरी आत्माए विश्व मे नही है।

जैन प्रवचन के समग्र श्रुतज्ञान का भण्डार द्वादशागी माना जाता है। जिस तरह गृहस्थ के घर मे सारभूत रत्नादि वस्तुएं तिजोरी मे भरी रहती है उसी तरह द्वादशागी, गणधर भगवतो की सदूक है जिसमे जगत् की सारभूत तमाम विद्याए भरी हुई है। इसलिए द्वादशागी को 'गणिपिटक' भी कहा जाता है। चौदह पूर्व बारहवे अग का ही एक विभाग है। इस चौदह पूर्व मे जगत् की इतनी सारी विद्याए समा जाती हैं कि चौदह पूर्वधरो को श्रुत केवली भी कहते है, श्रुतज्ञान के बल से जगत् के अतीन्द्रिय भावो को जानने की उनमे इतनी अधिक अलौकिक सामर्थ्य होती है कि हमे तो वे केवल ज्ञानी–सर्वज्ञ भगवत जैसे लगते हैं। इन [1]महापुरुषो ने भी नमस्कार मन्त्र को चौदह पूर्व का सार कहा है और मृत्यु आदि प्रसग पर इसका ही स्मरण करने का विधान बताया है। इसके अक्षर चाहे थोड़े है परन्तु

१. चौदह पूर्वधर भगवान् श्री भद्रबाहुस्वामी ने आवश्यक सूत्रो पर निर्युक्ति की रचना की है। उसमे नमस्कार माहात्म्य का प्रतिपादन करने वाला विस्तृत विभाग है, कि जो नमस्कार निर्युक्ति के नाम से जाना जाता है, इसमे नमस्कार का माहात्म्य उन्होने विस्तार से बतलाया है। देखो आवश्यक निर्युक्ति गाथा ८८७ से १०२६। इस निर्युक्ति पर भाष्य, चूर्णि, वृत्ति आदि अनेक व्याख्याओं की भी रचना हुई है।

बारह अग के सारभूत अर्थ का उसमे संग्रह आ जाने से चौदह पूर्वधर श्रुतकेवली भगवान् श्री भद्रबाहुस्वामी ने भी इसे 'महान् अर्थवाला' बताया है और इसकी अपार महिमा का वर्णन किया है, श्रुत ज्ञान के पारगामी और शब्द शक्ति के समग्र रहस्य को जानने वाले महापुरुष स्वयं ही नमस्कार मन्त्र को जो इतना बड़ा महत्त्व देते हैं, इससे यह सिद्ध होता है कि नमस्कार मन्त्र के अक्षरो का संकलना दूसरे मंत्राक्षरों की तुलना में ऐसा विशिष्ट प्रकार की है कि जिससे इसको महामन्त्र का स्थान प्राप्त हुआ है।

एसो पंचनमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥

पच परमेष्ठी को किया गया यह नमस्कार सर्व पापो का मूल से नाश कर देता है और सब मगल-हितकर वस्तुओं में यह उत्कृष्ट मगल है। यह चूलिका नमस्कार मन्त्र के सम्पूर्ण सामर्थ्य को सक्षेप में स्पष्टरूप से बताती है।

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हैमचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज जैसे समर्थ विद्वान ने भी अपनी माता पाहिनी, जिसने दीक्षा ली

२ महार्थता चास्याल्पाक्षरत्वेऽपि द्वादशाङ्गसंग्राहित्वात्। कथं पुनरेतदेवमित्याह—यो नमस्कारो 'मरणे' प्राणोपरमक्षणे 'उपाग्रे' समीपे भूते 'अभीक्ष्णम्' अनवरते क्रियते 'बहुश.' अनेकशः। ततो महत्यामापदि द्वादशाङ्गं मुक्त्वा तत्स्थानेनुस्मरणाद् महार्थ.। इयं मंत्र भावना-मरणकाले द्वादशाङ्ग परावर्तनाशक्तो तत्स्थाने तत्कार्यकारित्वात् सर्वैरपि महर्षिभिरेष स्मर्यत इति द्वादशाङ्गसङ्ग्राहिता, तद्भावाच्च महार्थ इति।
आवश्यकनिर्युक्ति मलयागिरीयावृत्ति पृ० ५११।

थी, को मृत्यु के समय[1] इस प्रकार पुण्य कहा था "तुम्हारे पुण्य निमित्त मैं करोड़ वार नमस्कार मंत्र का जाप करूंगा"—ऐसे महाज्ञानी पुरुष भी नमस्कार मंत्र का आश्रय लेते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि इसकी अक्षर सकलना में ऐसी कोई अचित्य सामर्थ्य है कि आत्मा को अनादि काल से लगे अनत पापो के स्तरो को और पाप वासनाओं को नमस्कार मत्र जड़ मूल से नष्ट कर देता है। इस लोक के सुख, परलोक के सुख तथा मोक्ष का शाश्वत सुख भी यह देता है।

इस मत्र की अर्थ सकलना भी ऐसी उत्तम है कि जगत् को सर्व कालीन सर्व श्रेष्ठ आत्माएं इसकी वाच्य रूप है। इसके अर्थ का हम विचार करते रहे तो भी परमेष्ठियो के गुणों के स्मरण और चितन के प्रभाव से तन्मय होकर हम परमात्मा बन सकते हैं। आध्यात्मिक शास्त्रो का नियम है कि "जो मनुष्य जिसका अहर्निश चितन करता है वह तद्रूप बन जाता है"। परमात्मा का सतत स्मरण और ध्यान करने से परमात्मा के साथ अपनी आत्मा का अनुसधान होता है। और इससे अपनी आत्मा मे परमात्मा की तमाम शक्तियाँ प्रगट होने से हम परमात्मा हो सकते हैं। इस प्रकार शब्द तथा अर्थ दोनो दृष्टि से विचार करने से नमस्कार मत्र की महानता सहज ही समझी जा सकती है।

१. अथान्यदा श्रीहेमसूरिमाता पाहिणीदेवी प्रव्रजिता। कालान्तरे कृतानशना नमस्कारकोटिपुण्ये दत्ते सति श्रीपत्तने पुण्यवरे 'त्रिपाष्ठि-शलाकापुरुषचरित्रादिर्लक्षग्रन्थो नवीनः कार्यं इति प्रोक्ते सति सूरिणा मृता कुमारपाल बोध प्रबन्धः पृ० ५९

ऐसे प्रभावशाली महामंत्र को जपने का सद्भाग्य प्राप्त करना यही मानव जीवन मे प्राप्त करने लायक एक श्रेष्ठ कर्त्तव्य है। मानव जीवन का यह बड़ा से बड़ा फल है। ऐसा मानकर नमस्कार के साधकों को नमस्कार की उपासना में ही तल्लीन हो जाना चाहिये।

कारण कि जगत् में प्रभु के नाम स्मरण के समान दूसरा कोई भी बड़ा कार्य नही है। जिसे प्रभु स्मरण का रस लगा है उसे दूसरी कोई बात अच्छी नही लगती। 'मनुष्य नमस्कार मत्र को गिनता है' ऐसा कहने के बजाय नमस्कार मत्र को गिनने के बिना उससे रहा ही नही जा सकता, कहना अधिक सही है। ऐसी स्थिति प्राप्त करना यह साधक के लिए खास जरूरी है। भक्त भक्ति मे भी मुक्ति का ही आनन्द अनुभव करते है।

मत्र की उपासना मे निष्ठा की खास जरूरत है। कारण कि 'जप व्यक्तायां वाचि मानसे च' इस धातु पर से 'जाप' शब्द बना है। यह एक शास्त्र सिद्ध और विज्ञान सिद्ध बात है कि हम जिन शब्दो का उच्चारण करते हैं वे शब्द समग्र जगत् मे व्याप्त हो जाते हैं। जैसे शात सरोवर मे पत्थर फेंकने से पानी मे लहरे प्रगट होती है और वह जोर से फेंका हो तो कुंडालो मे से दूसरे अनेक कुंडाले उत्पन्न होकर एक किनारे से दूसरे किनारे तक व्याप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार शब्दों के उच्चारण से भी आदोलन प्रगट होते है और वे सारे विश्व में व्याप्त हो जाते हैं। यदि वे आंदोलन निर्बल हों तो विशेष कुछ नही कर सकते, परन्तु प्रबल हो और व्यवस्थित रीति से फैले तो वे आदोलन जगत् के द्रव्यो और वातावरण मे प्रवेश कर बिलकुल कल्पनातीत और चमत्कारी परिवर्तन कर सकते हैं।

इसलिये साधक को मंत्राक्षर के जाप मे इस प्रकार तन्मय हो जाना चाहिये कि जैसे समुद्र, मे मछली को दशो दिशाओ मे पानी का ही अनुभव होता रहता है। उसी तरह जाप करते समय मत्राक्षरो के आदोलन अपने चारो ओर व्याप्त हो जाय और स्वय मत्राक्षरो की ध्वनि के महासागर मे डूब गया हो ऐसा उसे अनुभव होना चाहिये। इस प्रकार जाप होगा तब उसके दिव्य चमत्कारों का साधकों को अपने आप अनुभव होने लगेगा।

नमस्कार मंत्र यह सिर्फ पौद्गलिक अक्षर रूप है, ऐसा नही मानना चाहिये क्योकि इसमें तो [1]अक्षर रूप में वास्तव में परमेष्ठी रहे हुए है। जिससे "जाप करते समय परमेष्ठी के सांनिध्य का अपने को अनुभव होता है' ऐसी भावना से जाप करना चाहिये। मंत्र स्वयं ही अक्षरात्मक देव है, और मंत्र के स्वयं भी अनेक अधिष्ठायक देव होते हैं। इसलिये मंत्र के भक्ति पूर्वक किये हुए व्यवस्थित जाप से मंत्र के अधिष्ठायक देवों तक ये आन्दोलन पहुँचते हैं और वे देव साधक को अनेक तरह से सहायता करते हैं। इसलिये मंत्राक्षरों को भी साक्षात देव और देवाधिष्ठित मानकर ही उपासना करनी चाहिये। परन्तु मंत्राक्षरों मे ऐसा दैवत (प्रभाव) तब ही प्राप्त होता है, जब

१ मंत्रमूर्ति समादाय, देवदेवः स्वयं जिन।
सर्वज्ञः सर्वगः शान्तः सोऽयं साक्षाद् व्यवस्थितः ॥
(ज्ञानार्णव पृ ३९०)

प्रकारान्तरेण पदमयी देवतां प्रस्तौति :-
तथा पुण्यतमं मन्त्रं, जगत्त्रितयपावनम्।
योगी पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारं विचिन्तयेत्। ३२।
श्री हेमचन्द्राचार्य प्रणीत योग शास्त्र (सटीक) अष्टम प्रकाश

कि खासकर गुरु के मुंह से अपने को वह मंत्र मिले। इस कारण जिस सद्गुरु के दर्शन से अपने को परम आनन्द प्राप्त होता हो, जिस पर अपनी खास भक्ति हो, ऐसे गुरुदेव के पास से मंत्राक्षरो का पाठ लेना चाहिये। ऐसा करने से मत्र में चैतन्य प्रगट होता है, इस उद्देश्य से ही नमस्कार मत्र आदि पढ़ने के लिये शास्त्रों मे उपधान आदि की विधि बतलाई गई है। कहा है कि

'भवेद् वीर्यवती विद्या, गुरु वक्त्र-समुद्भवा।'

"गुरु मुख से जो विद्या प्राप्त हुई हो तो वह विद्या वीर्य-वाली—विशेषतया फल देने वाली होती है।"

इसलिये नमस्कार मत्र के साधकों को विधि पूर्वक गुरु प्रणिपात कर अत्यन्त बहुमान पूर्वक गुरु के पास से नमस्कार का पाठ लेना चाहिये। इस विधि से मत्र मे चैतन्य प्रगट होता है और अमुक सख्या मे जाप करने के बाद उसका अनुभव भी होने लगता है।

इतनी बात सर्वथा निश्चित है कि

जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्न संशयः ॥

जप से सिद्धि होती है, जप से सिद्धि होती है, जप से सिद्धि होती है, इसमे जरा भी सशय नही है, ऐसा समझकर जो साधक नमस्कार मत्र के जाप को बराबर करता रहेगा उसे अन्त मे सिद्धि-मोक्ष को देने वाली अपूर्व और अकल्पित मानसिक शुद्धि का अवश्य ही अनुभव होगा।

पूज्यपाद गुरुदेव मुनिराज
श्री भुवनविजयान्तेवासी
मुनि जम्बूविजय

नमो अरिहंताणं ॥

प्रवेश

श्री नवकार यह सब मन्त्रो मे शिरोमणिभूत महामन्त्र है और उत्तम सामग्रीवाला मानव जन्म सब जन्मो मे सब से श्रेष्ठतम जन्म है। श्रेष्ठ के साथ जब श्रेष्ठ का सुयोग प्राप्त हो, तब उसमे से महान् फल उत्पन्न होता है यह निर्विवाद है।

श्री नमस्कार महामन्त्र मे विराजमान पाचो परमेष्ठी परम-पद पर पहुँचे हुए और पहुँचने के लिये प्रयत्नशील जगत की पाँच महाविभूतिया है और अपनी आत्मा बहुत ही नीची भूमिका मे रही हुई है, अनेक अशुद्धियों से भरी हुई है, अति पामर दशा का अनुभव कर रही है, यह एक अनुभव सिद्ध बात है; इतना होने पर योग्य आलवन के बल से नीचे रही हुई आत्मा भी उच्च दशा को प्राप्त कर सकती है।

जीव का आज तक मोक्ष नही हुआ, इसका मुख्य कारण दूसरा कोई नही, परन्तु यह है कि जीव ने पूर्व मे कभी भी अपनी अशुद्धियो को दूर नही किया। दूसरी तरह कहना हो तो अशुद्धियाँ जिनसे दूर हो, उन उपायो का सच्चा आलवन उसने कभी लिया ही नही है।

यह नवकार मन्त्र महामन्त्र की उपमा के लायक इसलिये है कि जीव विशुद्धि के लिये वह एक मुख्य और अजोड़ साधन

है। दूसरे सब साधनों के मूल में भी वह नवकार मन्त्र हो, तब ही वे सफल होते है, अन्यथा नही।

यह नवकार जीव की अशुद्धियाँ किस तरह दूर करता है ? जीव की मूलभूत अशुद्धिया कौनसी है ? और विशुद्धि किस तरह प्रगट हो सकती है ? इसका ज्ञान स्पष्ट कर लेना यह महामंत्र के साधक के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

महामन्त्र की महामन्त्रता समझने के लिये नवकार के अन्दर प्रवेश करना होगा। हालांकि यह महामंत्र अनंत गम-पर्याय और अर्थ का प्रसाधक तथा सब महामन्त्रो का और प्रवर विद्याओ का उत्कृष्ट बीज स्वरूप हैं।[1] इसलिये इसकी थाह पाना दुष्कर है। परन्तु इसकी चार बाते महामन्त्र की साधना की प्रगति के लिये अत्यन्त प्रेरणादायक होने से उन्हे समझ लेना जरूरी है। ये चार बातें निम्न लिखित है

(१) श्री नवकार कृतज्ञता गुण का प्रतीक है।

(२) श्री नवकार परोपकार गुण का आदर्श है।

(३) श्री नवकार सर्व जीवों के प्रति आत्मसमदर्शित्व भाव को लाने वाला है।

(४) श्री नवकार परमात्मसमदर्शित्वभाव का उद्‌बोधक है।

*अणंतगमपज्जवत्थपसाहग, सव्वमहामंतपवरविज्जाणं परमबीय-भूयम्।

....श्री महानिशीथ सूत्र

इसलिये-श्रीनमस्कार महामन्त्र की साधना करने से जीव की शुद्धि मे अनन्य कारणभूत कृतज्ञता, परोपकारिता, आत्म-समदर्शित्व और परमात्मसमदर्शित्व आदि भाव साधक में भी उत्पन्न होते हैं।

श्री नमस्कार महामन्त्र में ये चार वाते सहज भाव से हैं। श्रीपरमेष्ठि भगवत इन चारो भावो से परिपूर्ण हैं। इसलिये उनका आलवन लेने वाले मे भी ये भाव क्रमशः सहज ही प्रगट होते है।

उपर्युक्त चारो वातो की प्रतिपक्षी वाते, कृतघ्नता, स्वार्थ रसिकता, अनात्मसमदर्शिता और अपरमात्मदर्शिता है, ये ही चार जीव की मूलभूत अशुद्धियाँ हैं। दूसरी तमाम अशुद्धियो का वीज इन चारो मे हैं, जवकि कृतज्ञता आदि चारो भाव जीवन के लिए सर्वशुद्धिकारक परम वीजभूत हैं।

श्री नवकार मे विराजमान श्री अरिहत आदि परमेष्ठी कृतज्ञता गुण के स्वामी हैं। उनकी तमाम प्रवृत्तियाँ परोपकार प्रधान है। आत्मसमदर्शित्व उनका प्राण है और परमात्म-समदर्शित्व उनका सर्वस्व है।

महामन्त्र के सच्चे साधक वनने के लिये उसके साधक को परमेष्ठियो के इन गुणों का लक्ष्य रखने की अति आवश्यकता है। साधना मे अति प्रयोजनभूत इन चार वातो पर यहाँ क्रमशः विचार करेंगे।

कृतज्ञता महामन्त्र की साधाना के लिए साधक को प्रथम योग्यता कृतज्ञता है। अपने पर किये गये दूसरो के उपकार को कभी भी नही भूलना इसका नाम कृतज्ञता है। उपकारियो

को नमस्कार करना इसी में मनुष्यत्व की शुरूआत है। जो नमस्कार करने योग्य है, उन्हे नमस्कार नही करना, यह बहुत बड़ा अपराध है। इसका दण्ड भी बड़ा है। श्री अरिहंत आदि पंच-परमेष्ठी नमस्कार के पात्र हैं; क्योंकि वे परम उपकारी हैं। उनकी करुणा से हम यहाँ तक की इतनी ऊँची दशा को प्राप्त कर सके है।[1] जिनके कारण हम ऊँचे उठे उन हमारे परम उपकारियों के प्रति हम नम्रता के भाव न रखे तो हमारे कृतज्ञता गुण का नाश होता है।

नमस्कार करने योग्य उपकारी को जो नमस्कार नही करते वे कृतघ्न होते हैं, कृतघ्नता बहुत बड़ा पाप है। सब पापों के प्रायश्चित्त है, परन्तु कृतघ्न के लिए कोई प्रायश्चित्त नही।[2] कृतघ्नता का त्याग कर जब जीव कृतज्ञ बनता है, तब ही उसका छुटकारा होता है।

श्री पचपरमेष्ठि भगवतो के प्रति कृतज्ञ हुआ आत्मा एक ऐसी निर्मल दृष्टि को प्राप्त करता है कि उस दृष्टि का जैसे जैसे विकास होता जाता है, वैसे वैसे उसमे नम्रता का भाव अधिक से अधिक विकसित होता है। योग्य के प्रति सच्चा नम्र

१ "भवत्प्रसादेनैवाहमियतीं प्रापितो भुवम्"।

श्री वीतराग स्तोत्रम्

'इतनी भूमि प्रभु तुमही आन्यो,
परि परि बहुत बढाइ माम'

पू. उपाध्याय यशोविजयजी महाराज

२ कृतघ्नस्य नास्ति निष्कृतिः।

श्री योग शास्त्र टीका.

भाव रखना यही भावनमस्कार का स्वरूप है। नम्रता के वल से सर्वोत्कृष्ट व्यापक दृष्टि वाला आत्म जगत् के तमाम पदार्थों को अपने उपकारी के रूप में देख तथा जान सकता है, और इससे मरणांत उपसर्ग करने वाले को भी अपकारी रूप में नहीं, परन्तु अपने को परम समाधि भाव की प्राप्ति में निमित्तभूत वनकर अन्त मे कर्मक्षय मे सहाय करने वाले परम वांधव से भी अधिक उपकारी के रूप मे देख सकता है।

ऐसे कृतज्ञ जीव में जगत् के जीवों के प्रति उसके स्वयं के किये अपराध रूपी ऋण से मुक्त होने के लिये तत्परता स्वाभाविकतया वढती है। कृतज्ञता की वुद्धि से उत्पन्न हुए ऋण मुक्ति के विचारो में से जो परोपकार की प्रवृत्ति होती है वही सच्चा परमार्थ-परोपकार भाव है। क्योंकि इसमे अहकार को स्थान नही और मैं दूसरो की भलाई करता हूं ऐसी वृत्ति भी नही 'मैं सारे विश्व का देनदार हूँ।' अनादिकाल से अनेक जीवों के दु.खो मे मैं निमित्त वना हूँ, अनेक जीवो ने अनेक वार मेरा भला किया है, इसलिये इस ऋण से मुक्त होने के लिये मुझे सर्व की भलाई की कामना करना ही चाहिये यह मेरा कर्तव्य है, ऐसा वह समझता है, कृतज्ञता गुण की यह पराकाष्ठा है, परन्तु इसकी शुरूआत तो परम उपकारी श्री अरिहंत आदि पांचों परमेष्ठियो को भावपूर्वक नमस्कार करने से होती है। विशुद्ध धर्म की शुरूआत भी जीव की कृतज्ञ वुद्धि से उपकारी को किये गये नमस्कार से होती है। इस कृतज्ञता गुण के द्वारा किये गये नमस्कार का प्रभाव ऐसा अचिन्त्य है कि वह अपने तमाम अन्तरायो को दूर कर अपनी सव इच्छाओं की पूर्ति कराता है।

परोपकारिता श्री नवकार महामंत्र की साधना के लिये

साधक की दूसरी योग्यता परोपकारभाव है। मन, वचन, काया और दूसरी भी प्राप्त सामग्री से दूसरों का हित हो इस प्रकार योजना करना इसका नाम परोपकार है। मनुष्यों को सुखी करने के लिये जगत् मे अनेक प्रकार के वाद चलते है, परन्तु नम्रता से दूसरो की शक्य भलाई करना, अर्थात् दूसरों की भलाई चाहे विना, अथवा दूसरों की शक्य भलाई किये बिना अपना भला कदापि नही होता, इस प्रकार भलाईवाद के पास अन्य सव ही वाद लूले बन जाते है। समग्र द्वादशागी का सार व चौदह पूर्व का सम्यग् उद्धार स्वरूप महामंत्र श्री नवकार है और इस नवकार का प्रथम पद "नमो अरिहताणं" है, यह नमो अरिहताणं पद परोपकार गुण की ही प्रतिष्ठा है। सर्व कर्मों से रहित सिद्ध भगवतो को छोडकर श्री अरिहत भगवंतो को महामत्र के प्रथम पद मे विराजमान किये गये हैं, इसका मूल रहस्य उनकी परोपकारिता है। विश्व मे श्री अरिहत सबसे अधिक परोपकारी हैं, विश्व के तमाम जीव उनके ऋण से दवे हुए हैं। क्योकि उन्होने सम्पूर्ण विश्व के समस्त जीवों के समग्र दुखो के नाश की और उनको अनन्त सुख की प्राप्ति हो इसकी तीव्र भावना से उनके लिए सतत पुरुषार्थ किया है।

उनकी यह उदात्त भावना और उत्तम अवस्था का वर्णन शास्त्रो मे निम्न प्रकार किया गया है।

श्री तीर्थङ्करो की पूर्व भवों की भावना

"अहो ! खेद की वात है कि श्री सर्वज्ञ प्रणीत धर्म रूपी उद्योत विश्व मे विद्यमान होते हुए भी मोहाधकार से दुखित प्राणी ससार मे परिभ्रमण करते हैं। वरबोधि को प्राप्त हुआ मैं भीषण भव भ्रमण से पीड़ित इन प्राणियो को किसी भी तरह

सर्वज्ञ भगवंत के धर्मरूपी उद्योत से दुःखमय संसार से पार उतारूं" इस भावना से अनुकम्पा और आस्तिक्य आदि गुण से युक्त परोपकार व्यसनी, नये नये गुणो का उदय प्रतिक्षण जिनमें हो रहा है, ऐसे बुद्धिमान् श्री तीर्थंकर परमात्माओं की आत्माएँ प्राणियों पर की करुणा से प्रेरित होकर उनका उद्धार करने में रत बनती है, और कल्याणकारी व्यापारो के द्वारा भव्य प्राणियों के परमार्थ को करते हुए विश्व के सब जीवो को हितकारी ऐसे तीर्थंकर नाम कर्म की निकाचना करते है।[1]

इस प्रकार नमस्कार महामंत्र मे सारभूत अरिहन्त पद स्वयं ही परोपकार भाव से भरपूर है और वह अरिहत पद अपनी समग्र आराधना का केन्द्र रूप है। श्री अरिहतो को आदर्श रूप बनाये बिना कोई भी साधक आराधना मे आगे नही बढ सकता, इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि परोपकार भाव को आदर्श रूप बनाये बिना आराधना मे आगे नही बढा जा सकता।

नवकार मे विराजमान पाचो परमेष्ठि भगवंत विश्व की भलाई करने की भावना से भरपूर है, इसलिए उनके नमस्कार

१ मोहान्धकार—गहने, संसारे दुःखिता बत।
सत्त्वाः परिभ्रमन्त्युच्चै., सत्यस्मिन् धर्मतेजसि ॥१॥
अहमेतानतः कृच्छ्राद्, यथायोगं कथंचन।
अनेनोत्तारयामीति, वरबोधि—समन्वितः ॥२॥
करुणादि गुणोपेतः परार्थव्यसनी सदा।
तथैव चेष्टते धीमान्, वर्धमानमहोदयः ॥३॥
तत्तत्कल्याणयोगेन, कुर्वन् सत्त्वार्थमेव च।
तीर्थंकृत्वमवाप्नोति, परँ सत्त्वार्थं साधनम् ॥४॥

स्वरूप महामंत्र में विश्व-हित की ही भावना-भरी है, ऐसा कहा जा सकता है, तो फिर आराधना करने वाले सच्चे साधक में भी वह भाव प्रगट हुए बिना कैसे रह सकता है? परहित कि जो स्वहित से अभिन्न है, उसका भाव जहा तक आदर्श न बने वहां तक साधक मे महामंत्र की साधना में वेग भी कैसे आ सकता है? इसलिये जीवन मे परोपकार भाव को भी आदर्श बनाने की अत्यन्त आवश्यकता है। सक्षेप में धर्म का स्वरूप, बिल्कुल स्पष्ट है और वह मैत्री भाव का विकास, परोपकार का निर्माण और उसके द्वारा शमवृत्ति की उपासना है।[1]

परोपकार का प्राधान्य

परोपकार भाव की महत्ता को सब ही समर्थ ज्ञानी पुरुषों ने एक समान रूप से स्वीकार किया है और इसलिये शास्त्रो में अनेक स्थान पर परोपकार भाव का प्राधान्य बताया गया है। गृहस्थ के सामान्य धर्मरूप मार्गानुसारिता के गुणों मे पू. आचार्य श्रीहेमचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज ने "परोपकृति-कर्मठ"। —अर्थात् मार्गानुसारी जीव परोपकार के कार्य करने मे शूरवीर होते है, इस प्रकार योगशास्त्र मे वर्णन किया है। इसके विवेचन मे स्पष्ट करते हुए उन्होंने बतलाया है कि परोपकारपरायण मनुष्य ही सब लोगो के नेत्रो को अमृत के अंजन के समान आनन्ददायक बनता है।[2]

धर्मरत्न प्रकरण मे धर्म की प्राप्ति के मूल के २१ गुणो में भी "परहियत्थकारी च" अर्थात् दूसरो की भलाई करने वाला जीव धर्मरत्न के योग्य बनता है। वहां स्वोपज्ञ विवरण में स्पष्ट

१. तत्त्वं धर्मस्य सुस्पष्टं, मैत्रीभावविकासनम्।
परोपकारनिर्माणं, शमवृत्त्युपासनम् ॥१॥

२. परोपकारपरो हि पुमान् सर्वस्य नेत्रामृताञ्जनम्। योग शास्त्र टीका

करते हुए बतलाया है कि "स्वभाव से ही जो आत्मा दूसरों का हित करने मे निरन्तर रत रहता है, वह धन्यवाद का पात्र है। ऐसा जीव धर्मरत्न की प्राप्ति करने के योग्य बनता है।"*

अनादि स्वार्थ परायणता के योग से स्वार्थभाव तो प्रत्येक को सहज भाव से सम्भवित है। इसमे कोई विशेषता नही। परन्तु परार्थ का भाव पैदा करना और उसी मे आनन्द मानना मनुष्य की सच्ची महत्ता है। मनुष्यो के सत्व की सच्ची कसोटी उसके परोपकार भाव मे है।**

* यो हि प्रकृत्येव परेषां हितकरणे निरन्तरं रतो भवति स धन्यो धर्मधनार्हत्वात्। (धर्मरत्न प्रकरण टीका)

** परोपकारैकरतिर्निरीहता, विनीतता सत्यमतुच्छचित्तता।
विद्या-विनोदोऽनुदिनं न दीनता, गुणा इमे सत्ववतां भवन्ति ॥

धर्मरत्न प्रकरण टीका

अर्थ- परोपकार मे एकनिष्ठ भाव से रति, निस्पृहता, विनीतपन, सत्य वचन, आशय की उदारता, प्रतिदिन ज्ञान प्राप्ति मे आनन्द, अदीनता, आदि गुण सत्वशाली जीवो मे ही होते हैं। यहा "परोपकारैकरति" अर्थात् परोपकार मे एक रति इस विशेषण को सबसे प्रथम रखा है यह परोपकार गुण की महत्ता बताता है। दूसरे गुणो का मूल भी परोपकार ही है। यदि मूल मे यह हो तो निरीहता, विनीतता आदि अन्य गुण सरलता से सिद्ध हो सकते हैं। स्वार्थ प्रधानता हो वहा तक सच्ची निरीहता या सच्ची विनीतता भी सम्भव नही है। इसलिये परोपकार भाव सब गुणो मे मुख्य स्थान पर है।

किसी भी धर्मानुष्ठान के मूल में परहित की भावना आवश्यक है। धर्मानुष्ठान का लक्षण बताते हुए पू० श्री हरिभद्र-सूरीश्वरजी महाराज ने धर्मबिन्दु नाम के ग्रन्थरत्न में "मैत्र्यादिभावसंयुक्तं तद्धर्म इति कीर्त्यते" अर्थात् मैत्री आदि भाव से युक्त जो शास्त्रोक्त उचित अनुष्ठान किया जाता है उसे धर्म कहा जाता है। इस मैत्री भाव की व्याख्या उन्होंने षोड़शक ग्रन्थ मे "परहितचिन्ता मैत्री" अर्थात् अन्य जीवों के हित की चिन्ता करना यह भी की है।

इस बात को लक्ष्य में रखकर धर्मसंग्रह ग्रन्थ में (जिस ग्रन्थ का संशोधन पू० उ० श्री यशोविजयजी महाराज श्री ने किया है) मैत्री आदि भावों को अवश्य मोक्षफल की प्राप्ति कराने वाले धर्म कल्पवृक्ष के मूलरूप मे बताया है।[1]

सम्पूर्ण दश पूर्वधर को निरपेक्ष यतिधर्म स्वीकार करने को जैन आगम मे निषेध किया है। धर्मविन्दु ग्रन्थ में कहा है[2] कि दशपूर्वधर मे परोपकार सम्पादन करने को योग्यता है।[3] कदाचित कोई यह कहे कि उनमें परोपकार सम्पादन करने की योग्यता है, इससे क्या हुआ? वे गच्छ से निरपेक्ष होकर अपना

१. मैत्र्यादिभावानां निश्रेयसाभ्युदयसकलधर्मकल्पद्रुममूलत्वेन शास्त्रान्तरेषु प्रतिपादनात्।

धर्मसंग्रह टीका

२. संपूर्णदशपूर्वविदो निरपेक्षधर्मप्रतिपत्तिनिषेधात्।

धर्मविन्दु ६-४

३. परार्थसंपादनोपपत्तेः।

धर्मविन्दु ६-४

आत्म कल्याण क्यों नही करते ? इसके उत्तर में उसके बाद सूत्र मे बताया गया है कि परोपकार करना, यही सर्वधर्म अनुष्ठानों में श्रेष्ठ है ।[1]

इस प्रकार मार्गानुसारिता की भूमिका से लेकर ज्ञान की श्रेष्ठ भूमि प्राप्त किये हुए महापुरुषो तक सर्वत्र परोपकार भाव को प्रधानता दी गई है ।

जीव जब तक स्वार्थ भावरूपी अशुद्धि के लेप से लिपटा हुआ है और अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये दूसरो को पीडा देने रूप पापाचरण से युक्त है; तब तक उसे पापमल के लेप से शुद्ध करने वाले-पवित्र करने वाले प्रतिपक्षी वस्तु की अति आवश्यकता है और उसी का नाम परोपकार भाव है । अपने आचरण से दूसरों को दुख देना यह पाप के लिये है, इससे जीव अपवित्र बनता है, जब कि पाप भाव से जीव को छुड़ाने वाला और पवित्र करने वाला परोपकार भाव है ।[2]

परोपकार और कृतज्ञता गुण की प्रधानता को बताने के लिये अन्य जगह भी कहा है कि

१. तस्यैव च गुरुत्वात्

धर्मबिन्दु ६–६

परार्थसंपादनस्य एव सर्वधर्मानुष्ठानेभ्य उत्तमत्वात् ।

धर्मबिन्दु टीका पृष्ठ ७६

२ परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम् ।

सूक्त मुक्तावली

"परोपकार में जिसकी बुद्धि है और किये उपकार को जो नही भूलता है, ऐसे सिर्फ दो ही पुरुषो को पृथ्वी धारण करे ! अथवा ऐसे दो पुरुषों से ही यह पृथ्वी टिकी हुई है। यहाँ "दो पुरुष से ही" ऐसा कहा है, वह जाति में एक वचन है। अर्थात् परोपकार वृत्ति वाला और कृतज्ञ इस तरह दो जाति के मनुष्य दुनिया मे रहते हैं, उसी से यह पृथ्वी टिकी हुई है। जिस दिन सब ही स्वार्थपरायण और कृतघ्न बन जायेगे, उस दिन पृथ्वी पर सत्‌तत्त्व जीवित नही रहेगा। सत्‌तत्त्व का नाश होना यही परमार्थ से सर्वनाश है। इसलिये सत्‌तत्त्व को-धर्मतत्त्व को टिकाने में प्रधान भाग कृतज्ञभाव और परोपकारवृत्ति का है।

शक्य परोपकार किये बिना मुक्ति साधक योगों को परम्परा भी अविच्छिन्न नही बन सकती। जो दूसरों को देता है, उसे ही भविष्य मे मिलता है ऐसा नियम है। जो दूसरों को नही देता, उसे जन्मान्तर मे उत्तम सामग्री नही मिलती। इससे वस्तुतः दूसरों का हित करने वाला ही तत्त्व से अपना सच्चा हित कर सकता है।[2]

इस तरह महामन्त्र नवकार मुमुक्षु जीवो मे परोपकार भाव उत्पन्न करने के लिए एक सुन्दर पदार्थ पाठ पूरा करता है।

---

१. दो पुरिसे धरउ धरा, अहवा दोहिंपि धारिया धरणी।
उवयारे जस्स मई, उवयरिअं जो न पम्हुसइ ॥११॥

धर्मरत्न प्रकरण–टीका

२. परोपकारः सततं विधेयः।
न स्वोपकाराच्च स भिद्यते।

उपदेश रत्नाकर

आत्मसमदर्शित्वः महामन्त्र की साधना के लिए साधक की तीसरी योग्यता सब जीवो के साथ आत्मसमदर्शित्व भाव को प्रगटाना है। आत्मसमदर्शित्व अर्थात् जगत् की तमाम आत्मा मेरी आत्मा के समान है ऐसा भाव।*

मेरी आत्मा के समान अर्थात् मुझे जैसे सुख इष्ट है और दुःख अनिष्ट है, उसी तरह जगत् के तमाम जीवो को सुख इष्ट है और दु.ख अनिष्ट है। जो वस्तु अपने को अनिष्ट हो, वह दूसरे के लिए न चाहना, न आचरना और सबके लिये शुभ की इच्छा करना, यह न्याय बुद्धि का लक्षण है, धर्म का यह सक्षिप्त सार है।

अनादिकाल से जीव को सहज भाव से जड़ पदार्थों के साथ प्रीतिभाव और जगत् के जीवो के साथ अप्रीतिभाव है। यह भाव अति मलिन है; क्योकि इसमे चैतन्य का अपमान है। जो तत्त्व महिमावन्त हो उसका सन्मान करना चाहिए। तमाम ज्ञानी पुरुषों ने चैतन्य का बहुमान किया है। चैतन्य मात्र का बहुमान करने के लिए शास्त्रो मे भी जहाँ तहाँ 'सर्व' शब्द का प्रयोग किया गया है। जैसे:

"खामेमि सव्वजीवे। सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ति मे सव्वभुएसु।" "सव्वस्स जीवरासिस्स।"
"सव्वं खमावइत्ता।" "खमिअ सव्वजीवनिकाय।"
"सव्वे जीवा कम्मवस।" "सव्व खमाविआ।"

* सव्वभूयप्पभूयस्स, सम्मं भूयाइ पासओ।
श्री दशवैकालिक सूत्र

"शिवमस्तु सर्वजगतः ।" "सर्वकल्याण कारणम् ।"
"इत्यां भवस्थिति स्येच्छा, सर्वजीवेषु चिन्तयन् ।"
"सव्वभूयप्पभूयस्स ।" "सर्वत्र सर्वे सुखिनो भवंतु ।"
"सव्वपाणभूअजीवसत्ताणं आसायणाए ।"
"समस्तसत्वविषयकस्नेहपरिणामो मैत्री ।"

इत्यादि ।

इस 'सर्व' शब्द के प्रयोग के पीछे यह रहस्य है कि चैतन्य वाले एक भी जीव को अलग नहीं किया जा सकता । एक जीव की उपेक्षा से सर्व की उपेक्षा हो जाती है । । क्योंकि कर्म की परतन्त्रता से जीव चाहे आज अलग अलग विषम अवस्थाएँ धारण करता हो और अलग अलग तरह से पहिचाना जाता हो, परन्तु चैतन्य की अपेक्षा से जगत् मे तमाम जीव समान हैं । इस प्रकार अपनी आत्मा से अभिन्न रूप से, अर्थात् जगत् के तमाम जीवों को अपनी आत्मा के समान 'आत्मसमदर्शित्व' भाव से देखनें वाला ऐसा समदृष्टि जीव मोक्ष को प्राप्त करने वाला होता है,* क्योंकि उसका जीवमात्र पर समान भाव है । जीवों का निरुपाधिक स्वरूप शुद्ध है । उसे लक्ष मे रखकर जीव-मात्र पर वह समान भाववाला बनता है इसी से वह सच्चा दृष्टा है, ऐसी अपूर्व दृष्टि सम्यग्दर्शन से प्राप्त होती है ।

* अनिच्छन् कर्मवैषम्यँ, ब्रह्मांशेन समँ जगत् ।
आत्माभेदेन यः पश्येन्दसौ मोक्षँगमी शमी ॥१॥

ज्ञानसार ६—२

आत्मसमदर्शित्वभाव प्रकट हुए बिना क्षमादि धर्म, या वास्तविक मैत्री आदि भाव भी प्रकट नही हो सकते। जीव में मैत्री आदि भाव तो भरे हुए ही हैं। परन्तु मोह के कारण वह मात्र अपने तक ही मर्यादित है, क्रूर से क्रूर माने जाने वाले और जहरीले माने जाने वाले प्राणियो मे भी अपने तक तो मैत्री भाव बराबर होता ही है। क्रोध मे अन्धे बनकर चण्ड-कौशिक सर्प ने जब भगवान् महावीर के चरणों को डस लिया, तब उसने सोचा कि 'मेरे विष से आक्रांत होकर अभी ही यह व्यक्ति नीचे गिर जायगा, परन्तु वह मेरे पर न गिर पड़े और मैं इससे दब न जाऊँ इसलिये मुझे दूर हो जाना चाहिये ऐसा सोचकर वह दूर हो गया। तात्पर्य यह है कि मैत्री आदि भाव अपने लिये तो सब मे होते हैं, इसलिये यह मैत्री आदि भाव नये प्रगटाने नही हैं परन्तु उनको स्व मे से अर्थात् मात्र अपने ही स्वार्थभाव मे से निकालकर सब तरफ फैलाना है। मैत्री आदि भावों को टाला नही जा सकता, परन्तु उन्हे जरूर योग्य दिशा में लेजाया जा सकता है, भगवान् ने यह भाव सब जीवों तक फैलाया था। एक भी जीव को उसमे से बाकी नही रखा, इसी से डसनेवाले चण्डकौशिक पर भी भगवान् अपना मैत्री भाव करुणाभाव अखण्ड रूप से टिका सके। महावीर भगवान् की आत्मा मे जगत् के तमाम जीवों के प्रति आत्मसमदर्शित्व का भाव पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ था, जिससे उनके आत्म-समदर्शित्व भाव ने चण्डकौशिक सर्प जैसे घोरातिघोर अपराधी के हृदय मे भी जादू का सा असर किया। क्रोधी सर्प मे से भी स्वार्थभाव विलीन हो गया। प्रभु की करुणापूर्ण दृष्टि ने उसमे परहित चिन्ता का भाव ऐसा जाग्रत कर दिया कि प्राणांत होने तक भी सर्प का वह भाव नष्ट नही हुआ। मैत्री आदि भाव

जहां तक अपने तक मर्यादित रहते हैं, अथवा स्वार्थ दृष्टि से जहां जहां अपनापन माना हो उतने पूरते ही मर्यादित रहते हैं, तब तक उनमे स्वार्थ भाव मुख्य होने से वह जहर स्वरूप बनते हैं और वे ही भाव निष्काम भाव से जब सब तरफ फैलते है, तब जीव का अजरामर स्वरूप बनाने वाले वे अमृततुल्य बन जाते हैं। जगत् के जीवों के साथ निःस्वार्थ आत्मीयभाव जितने प्रमाण में विस्तार पाते हैं, उतने प्रमाण में ये मैत्री आदि भाव अपने आप विस्तार पाते हैं। अर्थात् मैत्री आदि भावों को विकसित करने का भी वास्तविक उपाय निःस्वार्थ आत्मीयभाव का विस्तार करना है, यह आत्मीयभाव जब पराकाष्ठा को पहुँचता हैं, तब जगत् के तमाम जीवों के साथ 'आत्मसमदर्शित्व' सहज हो जाता है।

गुणस्थानक की दृष्टि से विचार करें तो संयतादि गुणस्थान मे ऐसा भाव तात्त्विक रीति से प्रकट होता है अर्थात् वहां आचरण पूर्वक का यह भाव होता है। अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान पर तात्त्विक रीति से आत्मसमदर्शित्व भाव की प्राप्ति के लिए तीव्र अभिलाषा होती है। और अपुनर्बंधक अवस्था में रहे हुए जीवों में यह भाव बीज रूप मे होता है।

श्री पंच परमेष्ठियों में यह भाव सम्पूर्ण रूप से प्रगट हो चुका है। उनको नमस्कार करने से, उनकी कृपा से अपने में भी यह भाव प्रगट होता है और स्थिर होता है। इस प्रकार श्री पंच परमेष्ठि भगवन्तों को नमस्कार करने में अपना मुख्य ध्येय अपनी आत्मा मे आत्मसमदर्शित्व का भाव प्रगटाने का होना चाहिये। जैसे-प्रज्वलित दीपक अपने आलम्बन से दूसरे अप्रज्वलित दीपक को भी जलाता है, उसी तरह परमेष्ठियों के

आलम्बन से अपने में यह भाव प्रगट होता है। इसलिये यह भाव प्रगटाने के लिये जब हम परमेष्ठियों को नमस्कार करते हैं तब अपना नमस्कार वास्तविक लक्ष्ययुक्त बनता है और यही सच्चा भाव नमस्कार है। यह नमस्कार मोक्ष का अवंध्य बीज है। अपनी आत्मा मे उससे अवश्य मोक्ष का बीजारोपण होता है।

शुद्ध अन्तःकरण से सबके हित की इच्छा करना, सबके सुख की इच्छा करना, सबको क्षमा करना, सबसे क्षमा मांगना, सबको परम मित्र मानना, सबके दुख नाश हो ऐसी इच्छा करना, ये सब आत्मसमदर्शित्व का भाव विकसित करने के लिये जरूरी है।

अनादि असमदर्शित्व भाव को बदलने के लिए एकाग्रता और उपयोग पूर्वक पुरुषार्थ करके आत्मसमदर्शित्व का भाव विकसित करने की जरूरत है। मानव जीवन मे यह सबसे श्रेष्ठ पुरुषार्थ है। श्री अरिहन्त परमात्मा की यह भाव भक्ति है। सबों को भलाई की इच्छा करना, यह परमात्मा को सबसे इष्ट वस्तु थी। सब भगवन्तों का यह मुख्य आशय था। परमात्मा के इस आशय का अनुशरण करना यही भगवान् की भक्ति का उत्तमोतम प्रकार है। अधिकार भेद से सेवित भक्ति के दूसरे तमाम तरीके भी इसी की सिद्धि के लिये हैं।

सारे जगत् के समस्त जीवो के साथ जहां तक समदर्शिपन नही आता, तब तक जीव मोक्ष का सच्चा अधिकारी नही बन सकता। मोक्ष मे अनन्त जीवों के साथ मिल जाना है। संसारी अवस्था मे साधक को उसकी तालीम लेना है। अर्थात् जो अपने मन मे जगत् के तमाम जीवो को समा सकता है, उसी को

मोक्ष का अधिकार मिलता है। मुमुक्षु आत्माओं के लिए यह अन्तिम परीक्षा है। इसमे उत्तीर्ण होने वाले को मोक्ष प्राप्तिरूप सर्वश्रेष्ठ इनाम मिलता है।

इस प्रकार महामन्त्र श्रीनवकार मे से अपने को मोक्ष के अनन्यकारणभूत अपने श्रेष्ठ कर्त्तव्यो की प्रेरणा मिलती है। यह महामन्त्र तो सनातन सत्यो का भण्डार है। उन सत्यो को समझने का सद्भाग्य भी गुरु कृपा से ही प्राप्त होता है।

परमात्मसमदर्शित्व महामन्त्र की साधना के लिये साधक-की चौथी योग्यता परमात्मसमदर्शितत्वभाव है। परमात्म-समदर्शित्वभाव अर्थात् मेरी आत्मा परमात्मा के समान है ऐसा भाव। सिद्ध का जो स्वभाव है, वही साधक की योग्यता है।* जैसे बीज के बिना वृक्ष नही होता, वैसे ही योग्यता बिना कोई भी प्रवृत्ति का फल नही मिल सकता।

"मेरी आत्मा परमात्मा के समान है" यह शुद्ध निश्चयनय की भावना है और "जगत् के तमाम जीव मेरी आत्मा के समान हैं, इसलिए उन्हें पीड़ा न हो ऐसा योग्य व्यवहार मुझे करना चाहिये।" यह शुद्ध व्यवहारनय की भावना है। निश्चय के लक्ष्यपूर्वक का शुद्ध व्यवहार जीव को मोक्षनगर मे ले जाता है। अकेला व्यवहार या अकेला निश्चय मोक्ष साधन नही बन सकता। शुद्ध व्यवहार के पालन सिवाय सच्चा निश्चय कभी भी प्रगट नही हो सकता। इसलिये मोक्ष मार्ग मे शुद्ध व्यवहार के

* सिद्धस्य हि स्वभावो यः सैव साधकयोग्यता।

अध्यात्मसार

पालन की प्रथम जरूरत रहती है। यह शुद्ध व्यवहार निश्चय का परिशोधक है।

जगत् के समस्त जीव मेरी आत्मा के समान हैं, ऐसा आत्मसमदर्शित्वभाव आये बिना ही मेरी आत्मा परमात्मा के समान है ऐसा मानने मात्र से परमात्मापद की प्राप्ति नही होती, यह सच्चा परमात्मसमदर्शित्व भी नही है, किन्तु वह एक प्रकार की भ्रमणा है, कारण बिना ही कार्य सिद्धि मान लेना जैसी अज्ञान चेष्टा है। इसलिये परमात्मसमदर्सित्व का भाव आत्मा में प्रगटाने के लिए प्रथम तो जगत् के तमाम जीव के साथ आत्मसमदर्शित्वभाव प्रगटाने की खास जरूरत है। परमात्मसमदर्शित्वभाव प्रगटाने का यह सच्चा उपाय है।

महामन्त्र नवकार मे आत्मसमदर्शित्व और परमात्मसमदर्शित्व इन दोनों भावो का सुमेल सम्मिलित है। इसे समझे बिना और जीवन में उतारे बिना नवकार की साधना अधूरी रहती है। इसलिये ज्ञानियों की दृष्टि से नवकार साधना का अन्तिम ध्येय इन दोनों भावो को जीवन में उतारना यह है। जब ये दोनो भाव जीवन में उतरते हैं तब महामन्त्र की साधना सम्पूर्ण होती है। महामन्त्र नवकार की साधना से किस तरह ये दोनों भाव जीवन मे उतरते है, उस पर अब यहां विचार करते है।

नवकार की चूलिका मे बताये अनुसार नवकार का मुख्य प्रयोजन पापो को अटकाने का और मंगल की प्राप्ति कराने का है, परन्तु आत्मसमदर्शित्व आये बिना पाप रुकते नही और

परमात्मसमदर्शित्व का भाव प्रगटे बिना आत्मलाभरूप मुख्य मंगल की प्राप्ति नही हो सकती। सब पापो का मूल आत्म-असमदर्शित्व है, सर्व अमंगलों का मूल परमात्म-असमदर्शित्व और सर्व मंगलों का मूल परमात्मसमदर्शित्व है। इससे नवकार की आराधना में मुख्य उद्देश्य 'आत्मसमदर्शित्व' और 'परमात्म-समदर्शित्व' के भाव को प्राप्त करना होना चाहिये। इसके परिणाम स्वरूप उभय लोक के सुख का लाभ होना यह महामन्त्र की साधना का फल है। इस प्रकार प्रयोजन और फल के बीच के अन्तर को ढूँढने से समझ मे आयेगा कि नवकार गिनते समय पापनाश और मंगल का आगमन प्रयोजन रूप रहना चाहिये। इन दोनों को लक्ष्य मे रखकर नवकार गिनना गिनाना चाहिये।

पापनाश का अर्थ यहां पाप बीज का नाश समझना है। पाप का बीज मतलब अनात्मसमदर्शित्व। मंगल का आगमन मतलब परमात्मपद की प्राप्ति। इसका बीज परमात्मसमदर्शित्व का भाव है। अंश से भी यह दोनों प्रकार का भाव यदि नवकार की आराधना से विकसित न हो, तो नवकार निष्फल है। प्रयोजन विना मन्दबुद्धि भी प्रवृत्ति नहीं करता। इसलिये नवकार के दोनों प्रयोजन निश्चित करके उसकी आराधना हो, तब ही उस प्रवृत्ति मे वेग आता है और उसके फल का सच्चा अधिकारी बना जा सकता है, अर्थात् इस तरह समझकर विधि-पूर्वक आराधना किया गया महामन्त्र अवश्य मोक्ष सुख का हेतु बनता है और जब तक मोक्ष नही मिलता तब तक भी इस लोक मे सर्वत्र प्रशस्त अर्थ, काम, आरोग्य और अभिरति (आनन्द मगल) होती है। परलोक मे भी देव अथवा मनुष्य की उत्तम

गति, सुकुल और बोधि वगैरह को प्राप्त कराकर अन्त में सिद्धि के अनन्त सुख को देने वाला होता है।*

"नमस्कार चिन्तामणि" नाम के पुस्तक मे प्रवेश करने के लिये यहां इतनी ही बात पर्याप्त है। साधना के लिये दूसरी विशेष समझ अलग अलग स्थान पर इस पुस्तक में दी गई है। ये सम्पूर्ण बाते मात्र ऊपर ऊपर से पढने के लिये ही नही है, परन्तु महामन्त्र की साधना अपने जीवन में जब तक सुदृढ नही बने तब तक नियमित इसका बार बार वाचन तथा मनन और परिशीलन द्वारा इसका अभ्यास करना भी जरूरी है।

मेरे परमोपकारी परमकृपालु पू० गुरु महाराज पंन्यासजी प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर श्री के परम आशीर्वाद से और उन श्री की परम कृपा से यह कार्य निर्विघ्न पूरा हुआ है। इसमे जो कुछ अच्छा है वह सब उन्ही से मिला हुआ है उनकी कृपा का फल है। उपरान्त इस पुस्तक मे दूसरे भी अनेक ग्रन्थों व लेखको के वचनो का आधार लिया गया है। जिन जिन ग्रन्थो व लेखको के वचनो का आधार लेने मे आया है, उन समस्त महानुभावो के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

जिन महापुरुषों ने इस महामन्त्र को अर्थरूप से प्रकाशित किया, जिन्होने इस महामन्त्र को सूत्ररूप मे गूंथा, जिन्होने

* इहलोए अत्थकामा, आरुग्गमभिरई अ निप्फुत्ती।
सिद्धि अ सग्गसुकुलपच्चायाइ य परलोए ॥१॥

(श्री नमस्कार निर्युक्तिः)

इस महामन्त्र को जीवन में उतारा, प्रचार किया और जिन्होंने अविच्छिन्न परम्परा से यहाँ तक पहुँचाया, उन तमाम महानुभावों को अनन्तशः वन्दना !

इस पुस्तक में तथा प्रवेश नाम के प्रस्तुत लेख में मतिमन्दतादि के कारण कुछ भी जिनाज्ञा विरुद्ध लिखा गया हो तो इसके लिये मिच्छमि दुक्कडं देता हूँ।

अन्त में सब नवकार के सच्चे आराधक बनें, महामन्त्र की साधना में एक तार होकर स्व-पर का परम कल्याण साधनें वाले बनें, यही शुभेच्छा।

मुनि कुन्दकुन्द विजय

|| ॐ अर्हम् नमः ||

श्री नमस्कार महामन्त्र

योगशास्त्र मे श्रावक की दिनचर्या मे सबसे पहला कर्त्तव्य श्री नमस्कार महामन्त्र को स्मरण करने का बतलाया है :

ब्राह्मे मुहूर्त उत्तिष्ठेत्, परमेष्ठिस्तुतिं पठन् ।

अर्थात् प्रातः ब्राह्म मुहूर्त मे उठकर निद्रा का त्याग कर परम मंगल के लिये श्री नवकार मन्त्र का स्मरण करे ।

अन्य जगह भी कहा है कि "निद्रा के बाद जागृत आत्मा मन मे नवकार गिनते शय्या को छोड़े । भूमि पर खड़ा रह कर अथवा सुखासन से बैठा जाय ऐसे आसन से बैठकर पूर्व, उत्तर अथवा जिस दिशा मे जिन प्रतिमा हो, उस दिशा की तरफ मुंह करके और चित्त की एकाग्रता के लिये कमल बंध से अथवा हस्तजापादि से नवकार मंत्र को गिने ।"

जागृत होने के बाद सबसे प्रथम श्री नवकार मन्त्र को स्मरण करने का विधान यह बताता है कि श्री नवकार मन्त्र की आराधना श्रेष्ठ ऐसे मानव जीवन मे हरेक से बन सके ऐसी एक मुख्य और अत्यन्त महत्व की क्रिया है । यहाँ सबसे प्रथम महामन्त्र बता कर पीछे उस सम्बन्धी प्रयोजनभूत उपयोगी हकीकत बतायेंगे ।

શ્રી પંચ-પરમેષ્ઠિ-નમસ્કાર-મહામંત્ર

નમો અરિહંતાણં ॥૧॥

નમો સિદ્ધાણં ॥૨॥

નમો આયરિયાણં ॥૩॥

નમો ઉવજ્ઝાયાણં ॥૪॥

નમો લોએ સવ્વસાહૂણં ॥૫॥

એસો પંચનમુક્કારો ॥૬॥

સવ્વપાવપ્પણાસણો ॥૭॥

મંગલાણં ચ સવ્વેસિં ॥૮॥

પઢમં હવઇ મંગળં ॥૯॥

श्री नवकार मन्त्र के जाप की पूर्व भूमिका

मकान की नीव मजबूत हो तब ही मकान टिक सकता है और उसमे रहने वाले मनुष्य निर्भयता से रह सकते है। उसी प्रकार श्री नमस्कार महामन्त्र के जाप मे चित्त को स्थिर करने के लिए उसके पाये को-उपयोगी प्रयोजनभूत गुणो को बराबर दृढ बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। अर्थात् उन गुणो को समझ कर, विचार कर उन्हे जीवन मे उतारने के लिये रात दिन प्रयत्न करना जरूरी है, यदि इस प्रकार विधि पूर्वक महामन्त्र का जाप किया जाय तो महामन्त्र के जाप की महिमा शास्त्रों मे जिस प्रकार वर्णित की गई है, उसका साधक को क्रमशः अनुभव हुए बिना नही रहेगा। अब यहाँ पर जाप के पहले पूर्व सेवा के रूप मे कितनी ही आवश्यक बातो का सक्षेप मे विचार करेंगे।

वस्त्र पर रंग चढाने के लिए प्रथम वस्त्र को धोकर स्वच्छ करना जरूरी होता है, उसी तरह महामन्त्र का रग अपनी आत्मा पर चढाने के लिए हृदय की शुद्धि और उसके लिए कितने ही योग्य बाह्य नियम खास जरूरी हैं। श्री नमस्कार महामन्त्र के जाप के प्रिय अर्थी साधक की साधना मे अति उपयोगी हकीकत यहाँ बतलाई जाती है।

प्रतिदिन साधना शुरू करने से पहले साधक को श्री नमस्कार महामन्त्र के महिमा वाले थोडे मन पसन्द श्लोकों द्वारा श्री नमस्कार महामत्र की महिमा हृदय मे स्थापित करना चाहिए। किस प्रकार के श्लोक बोलना चाहिए इसे दृष्टि में रख कर थोड़े श्लोक यहाँ दिये जाते है। साधक को इनमे से अथवा श्री नमस्कार महामन्त्र के महिमा वाले दूसरे स्तोत्रों मे से अपनी रुचि के अनुसार पसन्द कर उन्हें कण्ठाग्र कर लेना चाहिए। उनके अर्थ को भी समझ कर जाप की शुरुआत करने से पहले शुभ भावना पूर्वक शान्त चित्त से अर्थ को ध्यान में रखकर उन श्लोको को बोले। उदाहरण के लिए थोड़े पद्य यहाँ दिये जाते है।

धन्नोहं जेण मए, अणोरपारम्मि भवसमुद्दम्मि।
पंचण्ह नमुक्कारो, अचिंतचिंतामणी पत्तो ॥१॥

मैं धन्य हूँ कि मुझे अनादि अनन्त भवसमुद्र मे अचिन्त्य चिंतामणि ऐसा पच परमेष्ठियो का नमस्कार प्राप्त हुआ।

जिणसासणस्स सारो, चउदसपुव्वाण जो समुद्धारो।
जस्स मणे नवकारो, संसारो तस्स किं कुणइ ॥२॥

श्री नवकार जिन शासन का सार है, चौदह पूर्व का सम्यग् उद्धार है, नवकार जिसके मन मे स्थिर है, ससार उसका क्या कर सकता है? अर्थात् कुछ भी अनिष्ट करने मे समर्थ नही है।

सेयाणं परं सेयं, मंगल्लाणं च परममंगल्लं।
पुन्नाणं परमपुन्नं, फलं फलाणं परमरम्मं ॥३॥

नमस्कार सर्व श्रेयस्कर पदार्थो मे परम श्रेयस्कर है, सर्व मांगलिको मे परम मांगलिक है, सर्व पुण्यो मे परम पुण्य है, और सर्व फलो मे परम सुन्दर फल है।

थंभेइ जलं जलणं, चिंतियमित्तोवि पंचनवकारो।
अरिमारिचोरराउलघोरुवसग्गं पणासेइ ॥४॥

पच नवकार गिनने मात्र से ही वह जल और अग्नि को थंभा देता है, तथा अरि, मारि, चोर और राजाओ के घोर उपसर्गो का पूरी तरह नाश करता है।

हरइ दुहं कुणइ सुहं, जणइ जसं सोसए भवसमुद्दं।
इहलोयपारलोइय-सुहाण मूलं नमुक्कारो ॥५॥

श्री नमस्कार महामन्त्र दुःख को हरता है, सुख को देता है, यश की प्राप्ति कराता है, भवसमुद्र का शोषण करता है, तथा इस लोक और परलोक के सब ही प्रकार के सुखो का दाता है।

नवकार एक अक्खर, पावं फेडेइ सत्तअयराणं।
पन्नासं च पएणं, सागर पणसय समग्गेणं ॥६॥

श्री नवकार मंत्र का एक अक्षर सात सागरोपम के पाप का नाश करता है, श्री नवकार मंत्र के एक पद से पचास सागरोपम के पाप का नाश होता है और पूरे नवकार से पांच सौ सागरोपम के पाप का नाश होता है।

जो गुणइ लक्खमेगं, पूएइ विहीइ जिणनमुक्कारं।
तित्थयरनामगोअं, सो बंधइ नत्थि संदेहो ॥७॥

जो नवकार को विधिपूर्वक एक लाख बार गिनता है,

वह तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन करता है इसमे किंचित भी सदेह नही है।

इक्कोवि नमुक्कारो, परमेट्ठीणं पगिट्ठभावाओ।
सयलं किलेसजालं, जलं व पवणो पणुल्लेइ ॥८॥

उत्कृष्ट भाव से परमेष्ठियो को किया गया एक नमस्कार, जिस तरह पवन जल का शोषण कर लेता है, उसी प्रकार सब क्लेश जाल को दूर कर देता है।

पंचनमुक्कारेण समं, अंते वच्चंति जस्स दस पाणा।
सो जइ न जाइ मुक्खं, अवस्स वेमाणिओ होइ ॥९॥

अंत समय मे जिसके दश प्राण पंच नमस्कार के साथ जाते हैं वह मोक्ष को प्राप्त करता है। यदि अन्य कारणो की न्यूनता से कदाचित् मोक्ष को प्राप्त न कर सके, तब भी वह वैमानिक देव अवश्य होता है अर्थात् विमानाधिपति देव होता है।

जे केइ गया मुक्खं, गच्छंति य केवि कम्मामलमुक्का।
ते सव्वे विजय जाणसु, जिण-नवकारप्पभावेणं ॥१०॥

कर्मफल रहित होकर जो कोई आज तक मोक्ष गये हैं और जा रहे है वे सभी श्री नवकार के प्रभाव से ही जाते हैं, ऐसा समझना।

पणव हरिया रिहा, इह मंतह बीआणि सप्पहावाणि।
सव्वेसि तेसिं मूलो, इक्को नवकारवरमंतो ॥११॥

प्रणव अर्थात् ॐकार, माया अर्थात् ह्रींकार और अर्हम्

आदि जो प्रभावशाली वीजमंत्र हैं उन सब के मूल मे एक प्रवर नवकार मत्र है अर्थात् ॐ ह्री अर्हम् वगैरह वीज मन्त्रों के मूल मे श्री नवकार मत्र ही है।

ऐसो मंगलनिलओ भवविलओ सयलसंघ सुहजणओ।
नवकार परममंतो चिंतियमित्तो सुहं देइ ॥१२॥

परममन्त्र रूप यह नवकार मगल का घर है, यह राग, द्वेष रूप ससार को विलय करने वाला है, सकल सघ को सुख उपजाने वाला है, चितन करने मात्र से सुख को देने वाला है।

ताव न जायइ चित्तेण, चिंतियं पत्थिअं च वायाए।
काएण समाढत्तं, जाव न सरिओ नमुक्कारो ॥१३॥

चित्त से चितवन किया गया, वचन से प्रार्थना किया गया और शरीर से प्रारम्भ किया गया काम तब तक सिद्ध नही होता जब तक कि श्री पच परमेष्ठी नमस्कार का स्मरण नही किया जाता।

भोअणसमए सयणे, विबोहणे पवेसणे भए वसणे।
पंचनमुक्कारं खलु, समरिज्जा सव्वकालम्मि ॥१४॥

भोजन के समय, शयन के समय, उठने के समय, प्रवेश के समय, भय के समय, कष्ट के समय, इस तरह सब समय अवश्य पच नमस्कार का स्मरण करना चाहिए।

जं किंचि परमतत्तं, परमप्पयकारणं च जं किंचि।
तत्थ वि सो नवकारो, झाइज्जइ परमजोगीहिं ॥१५॥

यदि कोई परम तत्व है और कोई परमपद का कारण है तो उसमे भी परम योगियो द्वारा इस नवकार का ही ध्यान किया जाता है।

एनमेव महामन्त्रं समाराध्येह योगिनः।
त्रिलोक्यापि महीयन्ते-ऽधिगताः परमां श्रियम् ॥१६॥

योगी पुरुष इसी नवकार मन्त्र की सम्यग् रीति से आराधना कर परम आत्म लक्ष्मी अर्थात् केवलज्ञानादि को प्राप्त कर तीनो लोक मे पूजे जाते हैं।

कृत्वा पापसहस्राणि, हत्वा जंतुशतानि च।
अमुं मंत्रं समाराध्य, तिर्यञ्चोपि दिवं गताः ॥१७॥

हजारो पाप करने वाले तथा सैकड़ो जन्तुओ की हत्या करने वाले तिर्यंच भी इस मन्त्र की विधिवत् आराधना कर स्वर्ग गये है।

अहो पंच नमस्कारः, कोप्युदारो जगत्सु यः।
संपदोऽष्टौ स्वयं धत्ते, दत्तेऽनन्तास्तु ताः सताम् ॥१८॥

अहो! इस जगत् मे पंच नमस्कार कितना विशिष्ट और उदार है कि वह स्वयं आठ सम्पदा को धारण करने वाला है फिर भी सत्पुरुषो को अनन्त सम्पदाओं को देता है।

त्वं मे माता पिता नेता, देवो धर्मो गुरुः परः।
प्राणाः स्वर्गोऽपवर्गश्च, सत्त्वं तत्त्वं मतिर्गतिः ॥१९॥

तू मेरे लिये उत्कृष्ट माता है, पिता है, नेता है, देव है, धर्म है, गुरु है, प्राण है, स्वर्ग है, अपवर्ग है, सत्व है, तत्व है, मति है और गति है।

मन्त्रं संसारसारं, त्रिजगदनुपमं सर्वपापारिमंत्रं,
संसारोच्छेदमन्त्रं, विषमविषहरं कर्मनिर्मूलमंत्रम् ।
मंत्रं सिद्धिप्रदानं, शिवसुखजननं, केवलज्ञानमंत्रं,
मंत्रंश्रीजैन-मंत्रं,जप जपजपितं,जन्मनिर्वाण मंत्रम्॥२०॥

संसार मे महामन्त्र श्री नवकार सारभूत मन्त्र है, तीनों जगत् मे अनुपम है, सब पापो का नाश करने वाला है, राग द्वेष रूप ससार का उच्छेद करने वाला है, विषम प्रकार के विष को हरने वाला है, कर्मो को निर्मूल करने वाला है, सिद्धि को देने वाला है, शिवसुख का कारण है, केवल ज्ञान की प्राप्ति कराने वाला है । अतः हे भव्यो ! इस प्रकार की अद्भुत् सामर्थ्य वाले परमेष्ठी मंत्र का बारम्बार जाप करो । यह नमस्कार महामन्त्र जन्म मरण के जजाल से जीवों को छुडाने वाला है ।

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः, सिद्धाश्च सिद्धिस्थिताः ।
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः, पूज्या उपाध्यायकाः ।
श्रीसिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा, रत्नत्रयाराधकाः
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥२१॥

इंद्रों द्वारा पूज्य ऐसे अरिहंत भगवंत, सिद्धि स्थान मे रहने वाले सिद्ध भगवंत, जिन शासन की उन्नति करने वाले पूज्य आचार्य भगवंत, श्री सिद्धान्तो का भली प्रकार अभ्यास कराने वाले उपाध्याय भगवन्त और रत्नत्रय को धारण कराने वाले मुनिवृन्द, ये पाँचों परमेष्ठी भगवंत प्रतिदिन तुम्हारा कल्याण करे ।

नमस्कार अरिहंतनें, वासित जेहनुं चित्त ।
धन्य तेह कृतपुण्य ते, जीवित तास पवित्त ।
आर्तध्यान तस नवि हुए, नवि हुए दुरगतिवास ।।
भवक्षय करतां रे समरतां, लहीए सुकृत अभ्यास ।।२२।।

(इसी प्रकार "नमस्कार ते सिद्ध ने" आदि पद जोड कर यह २२ वा काव्य पाचो परमेष्ठियो के लिए बोला जा सकता है)

पंच नमस्कार ए सुप्रकाश ।
एहथी होये सवि पाप नाश ।।
सर्व मंगल तणूँ एह मूल ।
सुजश विद्या विवेकानुकूल ।।२३।।
अरिहंतादि सुनवह पद, निज मन धरे जो कोई ।
निश्चय तसु नरसेहरह, मनवांछिय फल होइ ।।२४।।
अशुभ करमके हरणकुं, मंत्र बड़ो नवकार ।
वाणी द्वादश अंग में, देख लीयो तत्त्व सार ।।२५।।
शुभ मानस-मानस करो, ध्यान अमृत रस रेलि ।
नवदल श्री नवकार पय, करो कमलासन केलि ।।२६।।
पातक पंक पखालीने, करी संवरनो पाल ।
परमहंस पदवी भजो, छोड़ी सकल जंजाल ।।२७।।
रात्रि तणी सुख निद्रा त्यागी, जेवुं मनडुँ जागे ।।
ध्यान धरो अरिहंततणुं सौं, तन मन ने शुभ लागे ।।२८।।
नमस्कार महामन्त्रने रटतां, आतम-शुभ उर जागे ।
दिनभरनी शुभ करणीमांहे, जय सुख डंका वागे ।।२९।।

श्री नवकार के प्रति प्रेम जागृत करने वाले काव्य यहाँ उद्धृत किये गये है। नवकार के प्रति अपने भाव जागृत करने के कई तरीके हैं, उनमे से यह भी एक है।

जिनको सस्कृत और प्राकृत भाषा का ज्ञान नही है वे भी प्रतिदिन भावना रूप मे अपने अन्तर मे श्री नवकार के प्रति अपनी प्रीति जागृत कर सके, उन भाग्यशालियो के लिए अव यहाँ सरल भाषा मे श्री नवकार की भावना प्रस्तुत की जाती है। श्री नवकार महामन्त्र गिनने वालो को अपने हृदय मे कैसी भावना रखनी चाहिए वह इससे मालूम हो सकेगा।

श्री नमस्कार भावना

अहो ! आज मेरे रोम-रोम मे अमृत सिंचित हुआ है। आज मेरा महान् पुण्य जागृत हुआ है कि जिसके कारण यह पच परमेष्ठी नमस्कार मन्त्र गिनने का मुझे भावोल्लास हुआ है। आज मैं भवसमुद्र को पार करने योग्य हुआ हूँ। अन्यथा कहाँ मैं, कहाँ यह नवकार और कहाँ मेरा उसके साथ समागम !

अनादिकाल से मेरी आत्मा अज्ञानता आदि के कारण ससार मे भ्रमण कर रही है। आज मुझे परम शरण की प्राप्ति हुई है, क्योकि पच परमेष्ठियो को किया हुआ नमस्कार ही ससार मे भटकती हुई मेरी आत्मा के लिए शरण रूप है। अहो ! आज मुझे दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति हुई है। अहो ! मुझे प्रिय वस्तु का समागम हुआ है। अहो ! मुझे तत्त्व का प्रकाश हुआ है, आज मेरे कष्टो का अन्त हुआ है, मेरे पापो का नाश हुआ है। श्री नवकार मन्त्र की प्राप्ति से आज मेरा प्रशमरस, देवगुरु की आज्ञा का पालन, नियम और तप ये सव सफल हुए है।

अहो ! क्या यह नवकार महा रत्न है ? अथवा चिंतामणि रत्न के समान है ? अथवा कल्पवृक्ष के समान है ? नहीं-नही ! नवकार तो इन सब से भी अधिक बडा है। कारण कि चिंतामणि वगैरह तो एक जन्म मे ही सुख देने वाले है, जबकि नवकार स्वर्ग और अपवर्ग को देने वाला है, मुक्ति प्राप्त न हो तब तक भव-भव मे सुख देने वाला है।

हे आत्मा ! पहाड को जड़ से उखाड़ना भी कठिन नही, देवलोक के सुख प्राप्त करना भी कठिन नही, कठिन तो भावपूर्वक नमस्कार की प्राप्ति है; क्योंकि मद पुण्यवाले जीवों को संसार मे कभी भी नवकार की प्राप्ति नही होती। यह भाव नमस्कार असख्य दु.खों का नाश करने वाला है। इस लोक और परलोक के सुखों के लिए कामधेनु गाय के समान है। इसलिए हे आत्मा ! तू आदरपूर्वक इस मंत्र का जाप कर !

हे मित्र मन ! सरल भाव से बारंबार तुझे प्रार्थना करता हूँ कि संसार समुद्र को पार करने के लिए जहाज समान इस नमस्कार मत्र को गिनने मे जरा भी प्रमाद मत कर। यह भाव-नमस्कार उत्कृष्ट सर्वोत्तम तेज है, स्वर्ग व मोक्ष का सच्चा मार्ग है, तथा दुर्गति का नाश करने में प्रलय काल के पवन के समान है। तीनों लोक की लक्ष्मी सुलभ है, अष्ट सिद्धिया सुलभ है; परन्तु महामंत्र नवकार को प्राप्ति दुर्लभ है। इसलिए हे आत्मा ! इस नवकार को परम शरण रूप मान कर उस पर अत्यन्त आदर और बहुमान रख कर तथा उसमे तन्मय होकर उसका स्मरण कर।

मैत्री आदि भावना गर्भित श्लोक

श्री नमस्कार महिमागर्भित काव्यों आदि से परिपूर्ण होने के बाद मैत्री आदि भावना युक्त होना चाहिए। इसके लिये श्री नवकार मंत्र के साधक को उपयोगी ऐसे मैत्री आदि भावना गर्भित श्लोक यहां प्रस्तुत किये जाते है। इनमे से अपनी रुचि के अनुसार श्लोकों को पसन्द कर उन्हे कंठाग्र कर लेना चाहिए। उनके अर्थ भी समझ लेना चाहिए। जाप का प्रारम्भ करने से पहले अर्थ को ध्यान मे रखकर उन्हे मधुर-वाणी से बोलना चाहिए।

खामेमि सव्वजीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झ न केणइ ॥१॥

जगत् के सब जीवों को मैं क्षमाता हूँ अर्थात् उनसे मैं अपने अपराधों की माफी मागता हूँ। वे सब जीव मुझे क्षमा करें, यही प्रार्थना है। मेरा सब जीवो के साथ मैत्री भाव है, किसी के साथ मेरा वैर-विरोध नही है।१।

शिवमस्तु सर्व-जगतः, परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः।
दोषाः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥२॥

जगत् के सब जीवो का कल्याण हो, ससार के प्राणी समूह परहित मे निरत हों, सब के सत्र दोषों का नाश हो और सर्वत्र सब लोग सुखी हो।२।

परहित चिंता मैत्री, परदुःखविनाशिनी तथा करुणा।
परसुखतुष्टिर्मुदिता, परदोषोपेक्षणमुपेक्षा ॥३॥

दूसरों के हित की चिंता करना यह मैत्री भावना है, दूसरे के दुःखों को दूर करने की भावना करुणा भावना है, दूसरे जीव सुखी हो, इसमे संतोप हो यह प्रमोद भावना है और दूसरो के असाध्य दोषो की उपेक्षा करना यह माध्यस्थ्य भावना है।३।

सर्वोऽपि सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥४॥

विश्व के सव ही प्राणी सुखी रहे, सव ही निरोगी रहे, सव ही प्राणियो का कल्याण हो, किसी को दुःख न हो।४।

मा कार्षीत् कोऽपि पापानि, मा च भूत् कोऽपि दुःखितः।
मुच्यतां जगदप्येषा, मतिर्मैत्री निगद्यते ॥५॥

कोई प्राणी पाप न करे, कोई जीव दुखी न हो, सम्पूर्ण ससार कर्म वन्धन से मुक्त हो अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने वाला हो, ऐसी वुद्धि को मैत्री भावना कहते हैं।५।

अपास्ताशेषदोषाणां, वस्तुतत्त्वावलोकिनाम्।
गुणेषु पक्षपातो यः, स प्रमोदः प्रकीर्तितः ॥६॥

जिसने सव दोषो को दूर किया है और जो वस्तु तत्त्व को वास्तविक रूप मे देख रहा है, उसके गुणो के प्रति पक्षपात-स्वाभाविक आकर्षण होना प्रमोद भावना कहलाती है।६।

दीनेष्वार्तेषु भीतेषु, याचमानेषु जीवितम्।
प्रतिकारपरा वुद्धिः, कारुण्यमभिधीयते ॥७॥

दीन दुखी, भय से आकुल व्याकुल और जीवितव्य को याचने वाले प्राणियो के दुखो को दूर करने वाली बुद्धि करुणा भावना है । ७ ।

क्रूरकर्मसु निःशंकं, देवतागुरुनिन्दिषु ।
आत्मशंसिषु योपेक्षा, तन्माध्यस्थ्यमुदीरितम् ॥८॥

नि.शक भाव से क्रूर कर्म करने वाले, देव और गुरु की निदा करने वाले और अपनी स्वय की प्रशसा करने वाले प्राणियो की तरफ उपेक्षा बुद्धि, माध्यस्थ्य भावना कहलाती है । ८ ।

मैत्रीपवित्रपात्राय, मुदितामोदशालिने ।
कृपोपेक्षाप्रतीक्षाय, तुभ्यं योगात्मने नमः ॥६॥

मैत्री के परम भाजनभूत, मुदिता से प्राप्त हुए सदानद से शोभायमान, और करुणा तथा माध्यस्थ्य भावना से जगत् पूज्य बने हुए योगस्वरूप हे वीतराग ! आपको मेरा नमस्कार हो । ६ ।

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम् ।
मध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ,सदा ममात्मा विदधातु देव ।१०।

हे देव ! मेरी आत्मा सदैव जगत् के सर्व जीवो के प्रति मैत्री भावना, गुणवान आत्माओ के प्रति प्रमोद भावना, दुखी जीवो के प्रति करुणा भावना और पापी जीवो के प्रति मध्यस्थ भावना रखे, ऐसी मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ । १० ।

दुःस्थां भवस्थितिं स्थेम्ना, सर्वजीवेषु चिन्तयन् ।
निसर्गसुखसर्गं तेष्वपवर्गं विमार्गयेत् ॥११॥

यह भव स्थिति अत्यत दु खदायक है, इसलिए साधना करते

समय उपासक सर्व जीवों के प्रति यही विचार करे कि जहाँ स्वाभाविक सुख की सृष्टि है, ऐसा मोक्ष सबको मिले।११।

विश्वजन्तुषु यदि क्षणमेकं, साम्यतो भजसि मानसमैत्रीम्।
तत्सुखं परममत्र परात्रा-प्यश्नुषे न यदभूत्तव जातु॥१२॥

हे मन ! यदि तू सर्व प्राणियों पर समतापूर्वक एक क्षण भी परहित चिन्ता रूपी मैत्री भावना भावेगा, तो तुझे इस भव और परभव दोनों में ऐसा सुख प्राप्त होगा, जिसका तूने कभी अनुभव भी नहीं किया होगा।१२।

नन्दन्तु सर्वभूतानि, स्निह्यन्तु विजनेष्वपि।
स्वस्त्यस्तु सर्वभूतेषु, निरातंकानि सन्तु च॥१३॥

प्रत्येक प्राणी आनन्दित हो ! दुश्मन पर भी स्नेह भाव हो ! सब जीवों का कल्याण हो ! सब निरोगी रहे।१३।

मा व्याधिरस्तु भूताना-माधयो न भवन्तु च।
मैत्रीमशेष-भूतानि, पुष्यन्तु सकले जने॥१४॥

किसी प्राणी को दु:ख न हो ! किसी को मानसिक चिन्ता न हो ! सब जीव-प्राणी मात्र के साथ मैत्री भाव पुष्ट करे।१४।

यो मेऽद्य स्निह्यते तस्य, शिवमस्तु सदा भुवि।
यश्च मां द्वेष्टि लोकेऽस्मिन् सोऽपि भद्राणि पश्यतु॥१५॥

जो मेरे पर स्नेह करते हैं, उनका हमेशा कल्याण हो ! परन्तु जो मेरे साथ द्वेष रखते है उनका भी कल्याण हो।१५।

एकेन्द्रियाद्या अपि हन्त जीवाः, पञ्चेन्द्रियत्वाद्यधिगत्य सम्यक्।
बोधिं समाराध्य कदा लभन्ते, भूयो भवभ्रांतिभियां विरामम्॥१६॥

एकेन्द्रिय आदि जीव भी कब पचेन्द्रिय जीव का रूप धारण कर अच्छी तरह बोधि-बीज की आराधना कर (प्रभु शासन की बराबर आराधना कर) कब भव भ्रमण से छुटकारा पावेंगे ! ।१६।

या रागरोषादिरुजो जनानां,शाम्यन्तु वाक्कायमनोद्रुहस्ताः
सर्वेप्युदासीन-रसं रसन्तुः सर्वत्रः सर्वे सुखिनो भवन्तु ॥१७॥

जगत् के सब प्राणियों को रागद्वेषादि से उत्पन्न मन, वचन और काया की पीड़ा शान्त हो ! सब मध्यस्थ भावना के आनन्द को प्राप्त करें ! सब जगह के सब जीव सुखी हों ।१७।

तत्वं धर्मस्य सुस्पष्टं, मैत्रीभावविकासनम् ।
परोपकारनिर्माणं, शमवृत्तेरुपासनम् ॥१८॥

मैत्री भाव का विकास करना, परोपकार का निर्माण और उपशम भाव की उपासना करना यही संक्षेप मे धर्म का अति स्पष्ट तत्व है ।१८।

मैत्र्यादिभावयोगेन, शुभध्यानप्रभावतः ।
सुखंसुखेन प्राप्नोति, जीवो मोक्षं न संशयः ॥१९॥

मैत्री आदि भावनाओ से तथा शुभ ध्यान के प्रभाव से जीव अत्यन्त सुखपूर्वक मोक्ष को प्राप्त करता है, इसमे जरा भी सन्देह नही ।१९।

धर्मस्य विजयो भूयाद्, अधर्मस्य पराभवः ।
सद्भावना प्राणभृतां, भूयाद् विश्वस्य मंगलम् ॥२०॥

धर्म की विजय हो, अधर्म को पराजय हो, सब प्राणी शुभ भावना वाले बनें और सारे विश्व का कल्याण हो।२०।

खमावुं बधा जीवने आज प्रीते,
खमो ते बधा मुजने सर्व रीते;

बधा जीवमां मित्रताने प्रसारूं,
नथी कोई साथे हवे वेर मारूं ॥२१॥

बधा विश्वनुं थाव कल्याण आजे,
बनो सज्ज सौ पारका हित काजे;

बधा दूषणो सर्वथा नाश पामो,
जनो सर्व रीते सुखो मांहि जामो ॥२२॥

सौ प्राणी आ संसारना, सन्मित्र मुज व्हाला हजो;
सद्गुणमां आनन्द मानुं, मित्र के वैरी हजो;
दुखिया प्रति करुणा अने, दुश्मन प्रति मध्यस्थता;
शुभ भावना प्रभु चार आ, पामो हृदयमां स्थिरता।२३।

गुणीजनों को वन्दना, अवगुण देख मध्यस्थ,
दुःखी देखी करुणा करो, मैत्री भाव समस्त।२४।

ऊपर जो काव्य बताये है उनमे से रुचि के अनुसार, श्लोकों को पसन्द कर थोड़ी देर-उनका चिन्तन कर मैत्री आदि भावना से ओत प्रोत होवे। बाद मे वज्र पंजर स्तोत्र से आत्म रक्षा करना।

श्री आत्मरक्षाकरं वज्रपंजराख्यं महास्तोत्रम्

(श्री नमस्कार महामन्त्र का विधि पूर्वक जाप करने वाले महानुभाव पुण्यात्मा जाप के प्रारम्भ मे इस स्तोत्र द्वारा मुद्राओं सहित स्व शरीर की रक्षा करें। मुद्राये गुरुगम से सीखे। आत्मरक्षा पूर्वक जाप करने से अनेक लाभ होते है)

ॐ परमेष्ठिनमस्कारं, सारं नवपदात्मकम् ।
आत्मरक्षाकरं-वज्र-पञ्जराभं स्मराम्यहम् ॥१॥
ॐ नमो अरिहंताणं, शिरस्कं शिरसि स्थितम् ।
ॐ नमो सव्वसिद्धाणं, मुखे मुखपटं वरम् ॥२॥
ॐ नमो आयरियाणं, अंगरक्षातिशायिनी ।
ॐ नमो उवज्झायाणं, आयुधं हस्तयोर्दृढम् ॥३॥
ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं, मोचके पादयोः शुभे ।
एसो पंचनमुक्कारो, शिला वज्रमयी तले ॥४॥
सव्वपावप्पणासणो, वप्रो वज्रमयो बहिः ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, खादिरांगारखातिका ॥५॥
स्वाहान्तं च पदं ज्ञेयं, पढमं हवइ मंगलं ।
वप्रोपरि वज्रमयं, पिधानं देहरक्षणे ॥६॥
महाप्रभावा रक्षेयं, क्षुद्रोपद्रवनाशिनी ।
परमेष्ठिपदोद्भूता, कथिता पूर्वसूरिभिः ॥७॥

यश्चैवं कुरुते रक्षां, परमेष्ठिपदैः सदा ।
तस्य न स्याद् भयं व्याधि-राधिश्चापि कदाचन ॥८॥

भावार्थ नवपद स्वरूप और जगत् का सारभूत यह परमेष्ठि नमस्कार, आत्मरक्षा के लिए वज्रपिंजर के समान है. उसका मैं स्मरण करता हूं ॥१॥

ॐ नमो अरिहंताणं । यह मन्त्र मुकुट के रूप में मस्तक पर रहा हुआ है, ऐसा समझना (बोलते समय मस्तक को हाथ से स्पर्श करना) और **ॐ नमो सव्वसिद्धाणं** यह मन्त्र मुंह पर श्रेष्ठ वस्त्र के रूप मे रहा हुआ है, ऐसा समझना । (बोलते समय मुख को हाथ से स्पर्श करना) ॥२॥

ॐ नमो आयरियाणं । इस मन्त्र को अतिशायी अंगरक्षक की तरह समझना । (बोलते समय शरीर को हाथ से स्पर्श करना) और **ॐ नमो उवज्झायाणं** । इस मन्त्र को दोनो हाथ मे रहे हुए मजबूत शस्त्र की तरह समझना । (बोलते समय दोनो हाथ मे शस्त्र पकडने की चेष्टा करना) ॥३॥

ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं । इस मन्त्र को पैर के मंगलकारी पावपोश समझना (बोलते समय दोनो पैरो के नीचे भाग को स्पर्श करना) और **एसो पंचनमुक्कारो** । इस मन्त्र को आसन के नीचे की वज्रशिला के समान समझना । (बोलते समय जिस आसन पर बैठे हो उसे दोनो हाथ से स्पर्श करना और मन मे यह सोचना कि मैं वज्रशिला पर बैठा हूँ जिससे जमीन मे से अथवा पाताल लोक मे से मुझको किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित न हो) ।४।

सव्व-पावप्पणासणो । इस मन्त्र को चारो दिशाओ मे

वज्रमय किले की तरह समझना। (बोलते समय यह सोचे कि मेरे चारो तरफ वज्र का किला है। दोनो हाथ से चारो तरफ कल्पना करते हुए अगुली घुमाना) मंगलाण च सव्वेसिं। इस मन्त्र को खेर की लकडो के अगारे की खाई समझना। (बोलते समय यह सोचना कि किले के बाहर चारो तरफ खेर की लकड़ो के अगारे से खाई भरी हुई है) ।५।

पढम हवई मगल। इस मन्त्र को किले के ऊपर वज्रमय ढक्कन समझना। (बोलते समय हाथ को मस्तक पर रख कर विचार करना कि वज्रमय किले के ऊपर आत्मरक्षा के लिए वज्रमय ढक्कन है) (इस पद के अन्त मे स्वाहा मन्त्र भी समझ लेना चाहिये) ।६।

परमेष्ठी पदो से प्रगट हुई महाप्रभावशाली यह रक्षा सब उपद्रवो का नाश करने वाली है, ऐसा पूर्वाचार्यो ने कहा है ।७।

परमेष्ठी पदो के द्वारा इस प्रकार जो निरन्तर आत्मरक्षा करते है, उन्हे किसी भी प्रकार का भय, शारीरिक व्याधि और मानसिक पीड़ा कभी नही होती। यह मन्त्र सर्व उपद्रवो का नाश करने वाला है ।८।

तत्पश्चात् पापप्रतिघात और गुणबीजाधान नाम के (पच सूत्र मे से) *प्रथम सूत्र प्रणिधान पूर्वक गिनना। यदि यह नही आता हो तो ★अमृतवेली की सज्झाय अथवा निम्नाकित महामगलकारी सूत्र मे आत्मा को ओत-प्रोत करना।

* यह सूत्र इस पुस्तक मे आगे के प्रकरण मे दिया गया है।

★ यह सज्झाय भी आगे के प्रकरण मे दी गई है।

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं,
सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगलं ।

चार पदार्थ मंगल अर्थात् कल्याणकारी हैं अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म ।

चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा,
सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा,
केवलिपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

चार पदार्थ लोक में उत्तम हैं अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म ।

चत्तारि सरणं पवज्जामि,
अरिहंते सरणं पवज्जामि,
सिद्धे सरणं पवज्जामि,
साहू सरणं पवज्जामि,
केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि ।

चार वस्तुएं शरण रूप हैं। भय से बचने के लिए मैं चार की शरण लेता हूं अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म ।

बाद में नीचे की गाथा स्थिर मन से पढ़ना ।

अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ।
जिणपन्नत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहीअं ॥

प्रत्येक भव मे अरिहंत परमात्मा मेरे देव हों, साधु भगवत मेरे गुरु हो। सभी प्रकार सव जीवो का हित हो यही तत्व है जिसमे ऐसा श्री जिनेश्वर भगवान् द्वारा प्ररूपित धर्म हैं उसी को मैं तत्व मानता हूँ, इस प्रकार के सम्यक्त्व को मैंने अगीकार किया है।

साधक को साधना की शुरूआत मे तीनो काल और तीनों जगत् के श्री नवकार साधक सभी भव्यात्माओ की साधना की भूरी २ अनुमोदना करनी चाहिए।

इस प्रकार जाप शुरू करने से पहले नवकार मन्त्र के महिमा गर्भित श्लोक, मैत्री आदि भावनाये, श्री वज्रपजर स्तोत्र से आत्मरक्षा, पचसूत्र अथवा अमृतवेली की सज्झाय, अथवा 'चत्तारिमगल' का पाठ आदि मे से अनुकूलता और अवकाश के अनुसार थोडी देर वोलना।

उपर्युक्त तमाम वाते अतकरण मे भाव जागृत करनें के उपाय रूप है, जिससे जिस प्रकार के भाव हृदय मे उत्पन्न हो उन पदो का आलवन लेकर हृदय को सिंचित करना। इसका तात्पर्य यह है कि प्राथमिक भूमिका मे भाव वृद्धि करने के लिए प्रारम्भ मे इस प्रकार का स्वाध्याय आवश्यक है।

इतना करने के वाद समग्र शब्द ब्रह्म की उत्पत्ति के कारण स्वरूप तथा पचपरमेष्ठी पद-वाचक प्रणव ॐकार का नीचे के श्लोक द्वारा स्मरण करना।

ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ॐकाराय नमो नमः॥

इसके पश्चात् सब विघ्नों को दूर करने वाले और सब ही प्रकार के मनोवांछित पूर्ण करने वाले श्री गखेश्वर पार्श्वनाथ भगवान् का स्मरण करना। इसके लिए "ॐ नमः पार्श्वनाथाय, विश्वचिंतामणीयते"* ।

का पूरा काव्य, अथवा निम्नांक काव्य बोलना।

नमोऽस्तु पार्श्वनाथाय, विघ्नविच्छेदकारिणे ।
नागेन्द्रकृतच्छत्राय, सर्वादेयाय ॐ नमः ॥

पीछे निम्न श्लोक द्वारा चरम शासनपति, आसन्न उपकारी, श्री महावीर स्वामी का भावपूर्वक स्मरण करना।

कल्याणपादपारामं, श्रुतगंगाहिमाचलम् ।
विश्वाम्भोजरविं देवं, वन्दे श्रीज्ञातनन्दनम् ॥

बाद में निम्न श्लोक द्वारा अनंत लब्धिनिधान श्री गौतम गणधर का स्मरण करना।

सर्वारिष्टप्रणाशाय, सर्वाभीष्टार्थदायिने ।
सर्वलब्धिनिधानाय, गौतमस्वामिने नमः

इसके बाद नीचे के श्लोक द्वारा परम उपकारी गुरु महाराज का कृतज्ञता की बुद्धि से विनम्र भाव से स्मरण करना।

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
नेत्रमुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
श्री तीर्थंकरगणधरप्रसादात् सिद्ध्यतु मम एष योगः ।

* यह स्तोत्र आगे दिया गया है।

जाप की शुरुआत के पहले उपर्युक्त वर्णित श्लोको का मनन, चिंतन करने से मन, वचन, काया की चंचलता दूर होती है। योग शास्त्र मे इसके लिए कहा है कि

वचनमनःकायानां क्षोभं यत्नेन वर्जयेच्छान्तः ।

रसभाण्डमिवात्मानं, सुनिश्चलं धारयेन्नित्यम् ॥

साधक को पहले मन, वचन और काया की चंचलता को प्रयत्न पूर्वक त्याग कर और रस से भरे हुए बरतन की तरह अपनी आत्मा को शान्त तथा निश्चल भाव मे धारण करना चाहिए।

जाप पूर्ण होने के बाद भी मैत्री आदि भावनाओं का फिर से मनन करना चाहिए। शुभध्यान की स्थिरता और वृद्धि के लिए ये भावनाये रसायन का काम करती है। इससे चित्त प्रसन्न और प्रफुल्लित होता है और दिल मे सद्भाव की वृद्धि होती है।

अब जाप किस तरह करना यह बतलाना है, परन्तु उससे पहले जिसका जाप करना है उस श्री नमस्कार महामन्त्र का बाह्य और आभ्यन्तर स्वरूप, परमेष्ठी नमस्कार का परिचय, महामन्त्र की सर्वश्रेष्ठता, जाप की सिद्धि के लिए प्रयोजन भूत ज्ञान, जाप की प्रगति के लिए आवश्यक नियम, तथा महामत्र की साधना से होने वाले लाभ आदि प्रयोजन भूत बातो की जानकारी आवश्यक है। इनके द्वारा महामत्र की श्रेष्ठता का परिचय होने से महामत्र के जाप आदि मे एकाग्रता आदि गुणो की सिद्धि सरलता से होती है। इसलिये ये बाते छोटे २ प्रकरणो द्वारा यहा क्रम से बताई जाती है।

श्री नमस्कार महामंत्र का बाह्य स्वरूप

किसी भी क्रिया का सम्पूर्ण फल प्राप्त करना हो तो उसकी विधि पूर्वक आराधना जरूरी है। किसान यदि विधि पूर्वक बीज बोता है तब ही धान्य रूपी फल प्राप्त कर सकता है। विधिपूवक क्रिया करने के लिए जिसकी आराधना करना है, उस वस्तु के स्वरूप का ज्ञान आवश्यक है। नवकार मंत्र बराबर पढाजाय-गिनाजाय उसके लिए उसके बाह्य और आन्तरिक स्वरूप को समझ लेना जरूरी है।

बाह्य स्वरूप अर्थात् मन्त्र का अक्षर देह, जो बराबर कायम रहना चाहिए। श्री नवकार मन्त्र मे पद ९ है, सम्पदा ८ हैं और अक्षर ६८ है। इन ६८ अक्षरो मे गुरु अर्थात् संयुक्ताक्षर ७ हैं और लघु याने सादे अक्षर ६१ हैं।

नव पदों की गणना।

श्री नवकार मंत्र के नौ पदो की गणना इस प्रकार है।

(१)	नमो अरिहंताणं।	यह पहला पद
(२)	नमो सिद्धाणं।	यह दूसरा पद
(३)	नमो आयरियाणं।	यह तीसरा पद
(४)	नमो उवज्झायाणं।	यह चौथा पद
(५)	नमो लोए सव्वसाहूणं।	यह पाचवा पद
(६)	एसो पंचनमुक्कारो।	यह छटा पद
(७)	सव्वपावप्पणासणो।	यह सातवा पद
(८)	मंगलाणं च सव्वेसिं।	यह आठवा पद
(९)	पढमं हवइ मंगलं।	यह नवा पद

आठ सम्पदा

सम्पदा अर्थात् अर्थ का विश्राम स्थान। शास्त्र मे उसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है सांगत्येन पद्यते-परिच्छिद्यतेऽर्थो याभिरिति सपद जिससे अच्छी तरह अर्थ समझ मे आ जाय उसे सम्पदा कहते है। ऐसी सम्पदा नवकार मे आठ है। प्रथम सात पद की सात और आठवे व नवे पद की एक, इस प्रकार कुल आठ।

गुरु लघु अक्षर

अक्षरो की गिनती मे गुरु को एक ही गिनना है। इस प्रकार नवकार मन्त्र के ६८ अक्षर होते है।

पहले पद **'नमो अरिहंताणं'** मे सात अक्षर है और वे सातो लघु है।

दूसरे पद **'नमो सिद्धाणं'** मे पाच अक्षर है, उनमे से चार लघु और एक गुरु है। (सिद्धाणं मे 'द्धा' अक्षर गुरु है)

तीसरे पद **'नमो आयरियाणं'** मे सात अक्षर है और वे सातो लघु हैं।

चौथे पद **'नमो उवज्झायाणं'** मे सात अक्षर है, उनमे से छ लघु है और एक गुरु है। (उवज्झायाण मे 'ज्झा' अक्षर गुरु है।)

पाँचव पद **'नमो लोए सव्वसाहूणं'** मे नौ अक्षर है उनमे से आठ लघु व एक गुरु है। (सव्वसाहूणं मे 'व्व' अक्षर गुरु है।)

इस प्रकार पाँच पदो मे ३५ अक्षर है, उनमे से ३२ लघु और ३ गुरु है।

छठे पद 'एसो पंचनमुक्कारो' मे आठ अक्षर हैं, उनमें से सात लघु और एक गुरु है। (नमुक्कारो मे 'क्का' अक्षर गुरु है)।

सातवाँ पद 'सव्वपावप्पणासणो' में आठ अक्षर हैं, उनमे छः लघु और दो गुरु है। (सव्वपावप्पणासणो मे 'व्व' और 'प्प' अक्षर गुरु हैं)।

आठवे पद 'मंगलाणं च सव्वेसिं' मे आठ अक्षर है, उनमें से सात लघु और एक गुरु है। (सव्वेसि मे 'व्वे' अक्षर गुरु है)।

नवे पद 'पढमं हवइ मंगलं' मे नौ अक्षर है और वे सब लघु है।

इस प्रकार नवकार मन्त्र के पिछले चार पदो मे जो चूलिका कहलाती है उसमे कुल ३३ अक्षर है उनमे से ४ गुरु और २९ लघु है।

श्री महानिशीथ सूत्र मे नवकार को पाँच अध्ययन और एक चूलिकावाला कहा है, और उसमे अक्षरो की संख्या ऊपर बताये अनुसार प्रथम पाँच पदो की ३५ व पिछले चार पदो की ३३ है।

उपदेश तरंगिणी मे कहा है कि

पंचादौ यत्पदानि त्रिभुवनपतिभिर्व्याहृता पंचतीर्थी।
तीर्थान्येवाष्टषष्टि-र्जिनसमयरहस्यानि यस्याक्षराणि।
यस्याष्टौ सपदश्चानुपमतममहासिद्धयोऽष्टैतराशि
र्जीयाद् लोकद्वयस्याभिलषितफलदः श्रीनमस्कारमंत्रः।

अर्थ: इस लोक और परलोक दोनों में मन वांछित फल देने वाला, अद्वितीय शक्ति स्वरूप, श्री नमस्कार मन्त्र जयवन्त होवे, जिसके पाँच पदों को त्रैलोक्यपति श्री तीर्थंकरों ने *पंच तीर्थी कहा है। श्री जिनागम के रहस्यभूत ऐसे जिसके ६८ अक्षरों को अड़सठ तीर्थों की तरह बताया है और जिसको आठ संपदाओं की गणना अनुपम श्रेष्ठ आठ महासिद्धियों को तरह की गई है।

* श्री अरिहंत का आद्य अक्षर 'अ' अष्टापद तीर्थ का सूचक है, श्री सिद्ध का आद्य अक्षर 'सि' सिद्धाचलजी का सूचक है, आचार्य के आद्य अक्षर 'आ' आबूजी का सूचक है, उपाध्यायजी का आद्य अक्षर 'उ' उज्जयन्त अर्थात् गिरनारजी का सूचक है और साधु के आद्य अक्षर 'स' सम्मेतशिखरजी का सूचक है।

o

तीनों जगत् के सर्व मगल श्री नवकार के अधीन हैं। परमज्ञानी भगवतो द्वारा कहे गये सूत्र के रहस्य को समझने मे जो भव्यात्मा भाग्यशाली होता है, वह कालान्तर मे भी दूसरे किसी आलम्बन का आग्रही नही बनता, क्योंकि श्री नवकार से बाहर कोई वस्तु नही। जगत् मे जो कोई सार रूप है, वह सब नवकार मे ही है। ऐसे नवकार मे दूर रहने वाले से मुक्ति सदा दूर रहती है और सासारिक स्वर्गादि सुख भी उससे विमुख रहते हैं।

श्री नवकार का आंतरिक स्वरूप

नवकार का आंतरिक स्वरूप अर्थात् नवकार का अर्थ देह। नवकार से परिचित होने के लिए उसके प्रत्येक शब्द का अर्थ जानना चाहिए।

प्रथम 'नवकार' शब्द का अर्थ जानना चाहिए। संस्कृत 'नमस्कार' शब्द के प्राकृत में दो रूप होते हैं, एक 'नमुक्कार' और दूसरा 'नमोक्कार'। प्राकृत व्याकरण के नियमानुसार आदि के शब्द 'न' का विकल्प 'ण' होता है अर्थात् 'णमुक्कार' और 'णमोक्कार' ये रूप भी नवकार के हो सकते है। परन्तु इन रूपो मे से अपना सम्बन्ध 'नमुक्कार' पद के साथ है। 'नमुक्कार' मे से 'म्' का लोप होने पर 'नउक्कार' शब्द बनता है और उसमे से 'नवक्कार' और अन्त मे 'नवकार' शब्द बनता है।

अब महामन्त्र के अलग-अलग पदो के अर्थ पर विचार करेगे।

नमो अरिहंताणं अर्थात् अरिहतो को मेरा नमस्कार हो।
नमो सिद्धाणं अर्थात् सिद्धो को मेरा नमस्कार हो।
नमो आयरियाणं अर्थात् आचार्यो को मेरा नमस्कार हो।
नमो उवज्झायाणं अर्थात् उपाध्यायो को मेरा नमस्कार हो।
नमो लोए सव्वसाहूणं अर्थात् लोक मे सर्व साधुओ को मेरा नमस्कार हो।
एसो पंच नमुक्कारो अर्थात् इन पाँचो को किया गया नमस्कार।

सवपावप्पणासणो अर्थात् सव पापों का प्रणाशक है ।
मंगलाणं च सव्वेसि अर्थात् और सव मगलो मे ।
पढम हवइ मंगलं अर्थात् प्रथम मगल रूप है अर्थात् श्रेष्ठ मगल है ।

श्री नवकार मन्त्र का यह सामान्य शब्दार्थ है । अब थोडा इसके भावार्थ पर विचार करेंगे । नवकार मे सब से प्रथम 'नमो' पद आता है, इसलिए पहले उस पर विचार करेगे ।

'नमो' पद की विचारणा

'नमो' यह नैपातिक पद हैं । यह एक प्रकार का अव्यय है । यह द्रव्य और भाव दोनो प्रकार के नमस्कार का सूचन करता है । द्रव्य-नमस्कार अर्थात् हाथ जोडना, मस्तक झुकाना, घुटने टेकना आदि । भाव नमस्कार अर्थात् जिनको नमस्कार करना है उनके प्रति विनय रखना, भक्ति रखना, व उत्कृष्ट सम्मान रखना, जिन्हे मै नमस्कार करता हूँ वे वडे है मैं छोटा हूँ, यह भावना रखना, कारण कि ऐसी भावना हुए विना भाव नमस्कार नही हो सकता ।

'नमो' पद मे नमस्कार की भावना है, और वह धर्म का वीज है । इसलिए नमस्कार से अपने अंतःकरण मे धर्म के वीज का वपन होता है अर्थात् धर्म का वीज बोया जाता है । परम पू० आचार्य भगवत श्री हरिभद्रसूरिजी महाराज ने ललितविस्तरा नामक चैत्यवदन सूत्र की वृत्ति मे कहा है कि **'धर्म प्रति मूलभूता वंदना'** अर्थात् धर्म के प्रति ले जाने वाली मूलभूत वस्तु वदना है नमस्कार है, क्योकि उससे उत्पन्न हुआ भावोल्लास आत्म क्षेत्र मे धर्म प्रशसा धर्म के वहुमान रूपी वीज को बोता है, धर्म-चिन्तादि रूप अकुर प्रकट

करता है, धर्म श्रवण और धर्म आचार रूप शाखा-प्रशाखाओं का विस्तार करता है तथा स्वर्ग और मोक्ष के सुखों की प्राप्ति रूप फूल और फल देता है।

श्री नमस्कार महामन्त्र की शुरुआत 'नमो' पद से होती है। यही इसकी महान् विशेषता है। यह 'नमो' पद धर्म शास्त्र, मन्त्र शास्त्र और तन्त्र शास्त्र तीनों की दृष्टि से रहस्यमय है।

धर्म शास्त्र की दृष्टि से यह विनय का बीज है, जिसका परम्पर फल मोक्ष है। वाचक शेखर पू० श्री उमास्वाति महाराज ने प्रशमरति प्रकरण में कहा है कि "विनय का फल गुरु की सेवा है, गुरु सेवा का फल श्रुतज्ञान की प्राप्ति है, श्रुतज्ञान की प्राप्ति का फल आस्रव का निरोध है, आस्रव निरोध का फल संवर की प्राप्ति है, संवर की प्राप्ति का फल तप है, तप का फल कर्म निर्जरा है, कर्म निर्जरा का फल क्रिया निवृत्ति है, क्रिया निवृत्ति का फल योग का निरोध है, योग निरोध का फल भव परम्परा का क्षय है और भव परम्परा के क्षय का फल मोक्ष है। इस तरह विनय सर्व कल्याण का मूल कारण है।"

मन्त्र शास्त्र की दृष्टि से 'नमो' शब्द शोधन बीज है अर्थात् शरीर, मन और आत्मा की शुद्धि करने में वह अत्यन्त उपयोगी है।

तन्त्र शास्त्र की दृष्टि से 'नमो' शब्द शान्तिक और पौष्टिक कर्म को सिद्ध करने वाला पद है, इसलिए 'नमो' पद से प्रयोजित सूत्र शान्ति और पुष्टि को देने वाला है।

इसके अतिरिक्त नवकार की आदि में रखे हुए इस 'नमो' पद में 'ओम्' भी छिपा हुआ है। वह इस तरह समझना, जैसे 'नमो' पद में 'न्+अ+म्+ओ' में चार वर्ण हैं। अब यदि इन

वर्णों को उलटा किया जाय तो 'ओ+म्+अ+न' ऐसा क्रम होगा। इस क्रम के प्रथम दो वर्णों के संयोजन से 'ओम्' शब्द की उत्पत्ति होती है।

संस्कृत शब्द 'मनः' पद के 'म' और 'न' अक्षरों का यदि विपर्यय किया जाय तो 'नमः' पद बनता है इसका अर्थ यह है कि अपना बहिर्मुख मन अन्तर्मुख होगा अर्थात् बाह्य संसार की तरफ दौडता मन आन्तर सन्मुख होगा, तब यह 'नमो' पद प्रकट होगा।

नमस्कार महामन्त्र मे इस 'नमो' पद का छः बार स्मरण कराया है। इस 'नमो' पद मे बहुत गम्भीर भाव छिपे हुए हैं, जैसे 'नमो' अर्थात् विशुद्ध मन का नियोग, मन का शुद्ध प्रणिधान, विषय-कषाय से निवृत्त होना, सासारिक भावो मे दौडते मन को रोकना।

उपरान्त यह 'नमो' पद सन्मान, श्रद्धा, भक्ति और आंतरिक बहुमान सूचक भी है और इससे भी विशेष परिचय मे 'नमो' सर्व समर्पण भाव का सूचक है, इससे भी आगे बढ़कर कहे, तो 'नमो' बिना शर्त सर्व समर्पण भाव का सूचक है।

'नमो' पद मे पंच परमेष्ठियो के प्रति प्रमोद भाव रहा हुआ है। जहाँ प्रमोद भाव है, वहाँ अनुमोदना के बीज मे से सर्व समर्पण भाव का वृक्ष खडा होता है। जिस तरह प्रमोद भाव का नमस्कार के साथ सम्बन्ध है, उसी तरह समर्पण भाव का भी नमस्कार के साथ सम्बन्ध है।

जब पच परमेष्ठी के प्रति बिना शर्त सर्व समर्पण भाव प्रकट होता है, तब अपने मे रहे हुए पशुत्व रूपी दुर्भावो के प्रति अधोमुखी चैतन्य सिद्धत्व की तरफ-उर्ध्वोमुख सद्‌भाव के प्रति बहता है। अपने नीचे की ओर जाते भाव प्रवाह को ऊपर की

और आकर्षक कराने वाला जबरदस्त बल श्री पच परमेष्ठियों मे है, परन्तु इस बल मे काम करने वाली 'नमो' पद की आकर्षण शक्ति मुख्य कारण है।

नमस्कार महामन्त्र मे अनुमोदना पच परमेष्ठियो की है। इस अनुमोदना का बहुत महत्त्व है। तीनो काल की सर्व श्रेष्ठ महाविभूतियो की ओर अनुमोदना प्रकटाने की चावी 'नमो' पद मे है। 'नमो' पद से पच परमेष्ठियो के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित होता है। अनुमोदना का सम्बन्ध बाह्य के बजाय आभ्यंतर मन के साथ विशेष है, जिससे अनुमोदना का बल बहुत है।

अनुमोदना नमस्कार की प्राथमिक भूमिका है, जबकि सर्व समर्पण भाव नमस्कार की पराकाष्ठा है। इस तरह 'नमो' पद मे अचित्य सामर्थ्य है। इसमे रमण करने से आराधना के अन्तिम ध्येय तक पहुचा जा सकता है।

पंच परमेष्ठियो के महाविद्युत् का प्रवाह तो बह ही रहा है सिर्फ अपनी आत्मा मे प्रकाश करने के लिए 'नमो' पद का बटन खोलना चाहिए।

पच परमेष्ठियो का बहुत महत्त्व है, परन्तु उनके महत्त्व का लाभ अपने को देने की सामर्थ्य 'नमो पद मे है। इसलिए साधको के लिए 'नमो' पद का विशेष महत्त्व है।

सक्षेप मे यह 'नमो' पद मोक्ष की कुञ्जी है।

अरिहंत पद की विचारणा

'अरिहंत' अर्थात् 'अर्हत्'। यह 'अर्हत्' शब्द अर्ह धातु से बना ह जो कि योग्य होने का अर्थ बतलाता है, अर्थात् जो महापुरुष सुरासुरेद्र की पूजा के योग्य हो, वह 'अर्हत्' कहलाता है।

श्री भद्रबाहु स्वामी ने आवश्यक निर्युक्ति मे कहा है कि :

अरिहंति वंदण-नमंसणाइ, अरिहंति पूयसक्कारं ।
सिद्धिगमणं च अरिहा, अरहंता तेण वुच्चंति ॥

जो वदन-नमस्कार के योग्य है, जो पूजा सत्कार के योग्य है, और जो सिद्धिगमन के योग्य है, वे अरिहत अर्थात् अर्हत् कहलाते हैं ।

अर्हत्, अरहत और अरिहत ये सब समान अर्थ वाले हैं । इनमे अर्हत् संस्कृत का शब्द है, बाकी के सब प्राकृत के रूपान्तर है ।

'अरहंत' तथा **'अरुहंत'** अरिहत शब्द के पाठान्तर है । तीनो के अलग अलग अर्थ हो सकते है । अरिहत अर्थात् कर्म या मोह रूपी शत्रु को नाश करने वाला । अरहत अर्थात् तीनो लोक मे पूजा के योग्य । अरुहत अर्थात् पुन· पैदा न होने वाला अर्थात् ससार मे पुनः नही आने वाला ।

नवकार मे **'अरिहंताण'** पद बहुवचन है । पाचवे पद मे रहे हुए **'लोए'** तथा **'सव्व'** पद यहाँ जोड़ने से **'नमो अरिहताणं'** पद का अर्थ **"सब लोक के सब अरिहंतों को मेरा नमस्कार हो"** ऐसा होता है । यहाँ सर्व शब्द का अर्थ सर्वकालीन करे, तो यह नमस्कार केवल वर्तमानकाल के अरिहतो को ही नही, वरन् तीनो काल के अरिहतो को होता है । लोक और काल के लिए प्रत्येक पद मे इसी प्रकार समझ लेना चाहिए ।

अरिहत धर्म-तीर्थ की स्थापना करने वाले होने से धर्म 'तीर्थंकर' या तीर्थंकर कहलाते है । राग द्वेष को पूरी तरह जीतने वाले होने के कारण 'जिन' कहलाते है और सब पुरुषो

मे उत्तम होने से "पुरुषोत्तम" कहलाते हैं। इस प्रकार वे दूसरे अनेक नामो से पहिचाने पाते है।

अरिहत को देवाधिदेव कहा जाता है; क्योकि वे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग और सर्वशक्तिमान् होते है। उनमे दानांतराय, लाभातराय, भोगातराय, उपभोगातराय, वीर्यांतराय, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, काम, मिथ्यात्व, अज्ञान, निद्रा, अविरति, राग और द्वेष ये अठारह दोष नही होते।

अरिहंत के बारह गुण

श्री अरिहत परमात्मा अनन्त गुणो के भण्डार हैं। उनके सम्पूर्ण गुणो को कौन गिन सकता है? जिस तरह समुद्र के जल विन्दुओ को, पृथ्वी के समस्त रेत के कणो को तथा आकाश के तारो को सामान्य मनुष्य नही गिन सकते, उसी तरह अरिहत के अनन्त गुणो को मनुष्य नही गिन सकता। इतने पर भी उनकी विशेपता को ध्यान में रखने के लिये उनके गुणो को बारह सख्या मे सगृहीत कर लिया गया है इसलिये वे नीचे लिखे बारह गुणो से युक्त होते हैं।

वे जहाँ विराजमान होते है वहा उनके देहमान से बारह गुणा ऊचे अशोक वृक्ष की रचना होती है, दिव्य पुष्पों की वर्पा होती है, दिव्य ध्वनि सुनाई देती है, चँवर ढुलते हैं, स्वर्णमय सिंहासन की रचना होती है, जगमगाता भामण्डल रहता है, देव दुन्दुभि वजती हैं, और मस्तक पर तीन छत्र रहते हैं। इन आठ गुणो को आठ प्रातिहार्य कहते है, क्योंकि वे प्रतिहारी की तरह सदैव साथ ही रहते है। इसके अलावा

वे अपायापगमातिशय, पूजातिशय, ज्ञानातिशय, और वचनातिशय वाले होते है ।

श्री अरिहंतों की कल्याणकारी साधना

श्री अरिहत परमात्मा की आत्मा अपने पूर्व के तीसरे भव मे श्री जिन नामकर्म की निकाचना करते समय **'सवि जीव करू शासन रसी'** की भावना से बीस स्थानक आदि तपश्चरण की कल्याणकारी साधना करती है । उसके प्रभाव से चरम भव मे उनमे जन्म से चार अतिशय और केवलज्ञान के बाद देवकृत उन्नीस अतिशय, कर्मक्षय से ग्यारह अतिशय, इस प्रकार अनुक्रम से चौंतीस अतिशय उत्पन्न होते है । उपर्युक्त बारह गुणो मे उप-लक्षण से चौंतीस अतिशय का समावेश हो जाता है ।*

श्री अरिहत परमात्मा के नाम, स्थापना, द्रव्य, उनकी पैंतीस गुणयुक्त वाणी, उनके अतिशय, उनके तीर्थ आदि वस्तुओ मे जो अचित्य सामर्थ्य उत्पन्न होती है, उसका मुख्य कारण उनकी तीसरे भव मे सर्व जगत् के कल्याण के आशय वाली उत्तम भावना से की गई कल्याणकारी आराधना है ।

अरिहत साकार ईश्वर हैं और सिद्ध निराकार ईश्वर-स्वरूप है । उपासना का क्रम ऐसा है कि प्रथम साकार की उपासना और पीछे निराकार की उपासना करना, इसलिये वही क्रम यहा मान्य रखा गया है । साकार ईश्वर के द्वारा

*अरिहत परमात्मा मे रहे हुए चौंतीस अतिशय, वाणी के पैंतीस गुण, नाम स्थापनादि चार भेद पूर्वक की उपासना करने की पद्धति आदि विविध विषय की जानकारी के लिये देखो लेखक कृत "अरिहत भक्ति" नामक (५०० पृष्ठ का) ग्रथ ।

ही निराकार ईश्वर का बोध होता है इसलिये उसका उपकार इस ससार मे बहुत बडा है और इससे श्रीनवकार के प्रथम पद मे अरिहत का स्मरण किया गया है।

सिद्ध पद की विचारणा

सिद्ध अर्थात् सर्व कर्मो का क्षय करके शुद्ध हुई आत्मा। जिसे जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक कुछ भी नही होता। वे लोक के अग्र भाग मे सिद्धशिला पर विराज कर अक्षय, अनत, अव्याबाध सुख का निरन्तर उपभोग कर रहे हैं। भूतकाल मे ऐसे अनन्त सिद्ध हो गये है। आज वर्तमान मे भी अनेक आत्मा सिद्ध होते है और भविष्य मे भी अनन्त आत्मा सिद्ध होगे।

सिद्ध भगवान् आठ गुणो से युक्त होते है (१) अनन्त ज्ञान, (२) अनन्त दर्शन, (३) अनन्त अव्याबाध सुख, (४) अनन्त चारित्र, (५) अक्षय स्थिति (६) अरूपीपन (७) अगुरुलघुत्व अर्थात् न भारीपन और न हलकापन और (८) अनन्त वीर्य।

सिद्धो की आत्मा मे समस्त लोक को हिला सके ऐसी शक्ति होती है, परन्तु उन्हे इस शक्ति का उपयोग करने की जरूरत नही होती।★

आचार्य पद की विचारणा

आचार्य अर्थात् ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार, इन पाच आचारो का स्वय पालन करने

★इस सिद्धि गति की प्राप्ति मे प्रधान कारण अरिहत परमात्मा की आज्ञा का पालन है। इनका विशेष वर्णन और सिद्धि गति का विशेष वर्णन इस पुस्तक मे 'भव अटवी में सार्थवाह' प्रकरण मे दिया गया है।

वाले और दूसरों को पालन कराने वाले। वे गच्छ के नायक होते हैं और सारणादि द्वारा साधुओ की सार सम्हाल रखते हैं तथा परम करुणा रस से भरपूर परमात्मा के शासन की उन्नति के लिये प्रयत्नशील रहते है। वे छत्तीस गुणों से युक्त हैं होते। जैसे कि

पाचो इद्रियो के विषय पर काबू रखने वाले तथा नौ प्रकार की ब्रह्मचर्य की बाड को धारण करने वाले, चारो प्रकार के कषाय से मुक्त, पाच महाव्रत से युक्त, पाँच प्रकार के आचार का पालन करने मे समर्थ, पाच समिति और तीन गुप्ति से युक्त, इन छत्तीस गुणो से युक्त आचार्य होता है। आचार्य के छत्तीस गुणो की गणना दूसरी तरह से भी होती है।

उपाध्याय पद की विचारणा

उपाध्याय अर्थात् साधुओ को शास्त्रों का अभ्यास कराने वाले। उनकी व्याख्या शास्त्रकारो ने इस प्रकार की है, "उप-समीपे अधिवसनात् श्रुतस्य आयो-लाभो भवति येभ्यस्ते उपाध्याया" जिनके पास रहने से श्रुत का लाभ हो वे उपाध्याय कहलाते है।

उपाध्याय भगवन्त २५ गुणो से युक्त होते हैं, वे इस प्रकार ११ अग और १२ उपाग स्वय पढे और साधुओ को पढावे, तथा चरण सित्तरी और करण सित्तरी युक्त होते हैं।

साधु पद की विचारणा

साधु अर्थात् निर्वाण मार्ग को साधना करने वाले अथवा स्वहित और परहित इस प्रकार उभयहित को साधने वाले। वे निम्न सत्ताइस गुणो से युक्त होते है।

पांच व्रतों को पालने वाले	५
रात्रि भोजन का त्याग	१
छकाय जीव की रक्षा	६
पांच इंद्रियों पर संयम	५
तीन गुप्ति का पालन	३
लोभ से मुक्त	१
क्षमा धारण करने वाले	१
चित्त को निर्मल रखे	१
पडिलेहण करे	१
संयम मे रहे	१
परिषह सहन करे	१
उपसर्ग सहन करे	१
	२७

सब प्राणियो के हित का आशय साधुओं के दिल मे अंकित रहता है। साधु धर्म का लक्षण शास्त्रो मे निम्न प्रकार बतलाया है

"सामायिकादिगतविशुद्धक्रियाऽभिव्यङ्ग्यसकल-सत्वहिताशयामृतलक्षण-स्वपरिणामः एव साधुधर्मः।"

सामायिकादि विशुद्ध क्रियाओ द्वारा प्रगट हुआ सब प्राणियो के हित का आशयरूप अमृत लक्षण स्वपरिणाम यह साधु धर्म है।

इस प्रकार पंच परमेष्ठी के कुल १०८ (१२+८+३६+२५+२७) गुण है। परमेष्ठी के गुणो का वारम्वार चिन्तन करने से अपना मन नवकार मे एकाग्र होता जाता है।

नमस्कार के प्रथम पाच पदों से पाच परमेष्ठियो को नमस्कार होता है। इसलिये इसे परमेष्ठि नमस्कार, परमेष्ठि मंत्र, पच परमेष्ठि नमस्कार या पंच परमेष्ठि मन्त्र कहा जाता है।

नमस्कार चूलिका का विचार

पंच नमस्कार कैसा है? इसके लिये पीछे के चार पदो मे अर्थात् चूलिका मे वताया गया है कि इन पाँचों को किया गया नमस्कार सर्व पापो का प्रणाशक है। प्रणाशक अर्थात् जडमूल से पापों का नाश करने वाला। सामान्य तौर पर नाश हो, तो वह फिर उत्पन्न हो सकता है, परन्तु जडमूल से नाश हो, तो फिर कभी उत्पन्न नही होता।

मनुष्य को जो दु.ख, कष्ट और आपत्ति का अनुभव होता है, वह अशुभ कर्म के उदय से होता है, परन्तु इन अशुभ कर्मो का सम्पूर्ण नाश हो जाय, तो फिर दु.ख, कष्ट और आपत्ति का अनुभव होने का प्रसग ही नही आता। तात्पर्य यह है कि पच परमेष्ठि को किया गया नमस्कार सर्व पापो का और परिणाम मे सर्व दुखो का नाश करने वाला है।

नवकार के पिछले दो पदो मे वतलाया गया है कि यह नमस्कार सव मगलो मे प्रथम मगल रूप है। मगल शब्द की व्याख्या शास्त्रकारो ने अनेक प्रकार से की है, परन्तु उसकी मुख्य व्याख्या 'मंगति हितार्थं सर्पतीति मंगलम्'—जो प्राणियो के हित के लिये प्रवर्ते, वह मगल', यह व्याख्या यहां ग्रहण करने की है। प्राणियो के हित की प्रवृत्ति अनेक प्रकार से होती है, इसलिए मंगल भी अनेक प्रकार के है और इसलिए

यहां 'मंगलाणं च सव्वेसिं' शब्दों का प्रयोग किया गया है। मंगल के यदि द्रव्य मंगल और भाव मंगल ऐसे दो भेद करें, तो इस 'सव्वेसिं' शब्द से दोनों प्रकार के मंगल का ग्रहण होता है। द्रव्य मंगल अर्थात् शुभ पदार्थ जैसे कि स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त वर्धमानक, भद्रासन, कलश, मीनयुगल, दर्पण आदि। दधि, दूर्वा, स्वर्ण वगैरह की गिनती भी शुभ पदार्थों में होती है। भाव मंगल अर्थात् अहिंसा, संयम, तप, स्वाध्याय, ज्ञान आदि शुभ भाव।

प्रथम मंगल अर्थात् उत्तम-उत्कृष्ट मंगल। पंच नमस्कार सब मंगलों में उत्कृष्ट मंगल है। इसलिये मंगल रूप में यह अद्वितीय है। इसका स्थान अन्य कोई नहीं ले सकता। तात्पर्य यह है कि यह नमस्कार मंगल द्रव्य और भाव दोनों से प्राणी का अत्यन्त हित करने वाला है, इसलिये उसे किसी भी प्रकार का उपद्रव-दुःख नहीं हो सकता। भाव से पंच परमेष्ठि का स्मरण करने वाला भव्य आत्मा अशुभ विचार या परिणाम की 'धारा' पर नहीं चढ़ता।

संक्षेप में कहा जाय तो नवकार का स्मरण अर्थात् पंच परमेष्ठि का स्मरण, पंच परमेष्ठि का स्मरण अर्थात् आत्म शुद्धि का स्मरण, और आत्म शुद्धि का स्मरण अर्थात् मुक्ति मोक्ष या निर्वाण का स्मरण। इस प्रकार नमस्कार का स्मरण जीवन के अन्तिम ध्येय का स्मरण करा कर मनुष्य को अनन्त सुख की ओर ले आता है। इसलिये शास्त्रों में वह परम मन्त्र या प्रवर मन्त्र गिना जाता है।

o

श्री परमेष्ठि-नमस्कार का विशेष परिचय

जीयात् पुण्याङ्गजननी, पालनी शोधनी च मे ।
हंसविश्राम-कमल-श्रीः सदेष्टनमस्कृतिः ॥

जो (पंच परमेष्ठि-नमस्कृति) माता की तरह पुण्य रूपी शरीर को उत्पन्न करती है और जीव रूपी हंस को विश्राम लेने के लिये कमल की शोभा को धारण करती है, वह श्री पंच-परमेष्ठि नमस्कृति हमेशा जयवन्ती रहो ।

अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पांचों को जैन शासन में **'पंच परमेष्ठि'** की संज्ञा दी गई है । इष्ट नमस्कृति, परमेष्ठि-नमस्कार और नमस्कार महामन्त्र इसी के दूसरे नाम हैं । पंच परमेष्ठि के गुणों के विचार से उनके प्रति नम्रता पूर्वक सच्चा भक्ति भाव प्रकट होता है । इसलिये संक्षेप में उनका स्वरूप नीचे बताया जाता है ।

श्री अरिहन्तों का उपकार मार्गदर्शकता

श्री अरिहन्त परमात्मा मोक्षमार्ग के आद्य प्रकाशक होने से विश्व पर उनका महान् और अजोड़ उपकार है । मोक्ष का मार्ग चर्मचक्षु को अगोचर होता है । केवलज्ञान रूपी चक्षु के बिना वह साक्षात् नहीं जाना जा सकता । श्री अरिहन्त परमात्माओं की आत्मा सम्पूर्ण जगत् का कल्याण करने वाली सर्वहितकारिणी ऐसी प्रकृष्ट शुभ भावना सहित,

पूर्व भवो मे मोक्ष मार्ग की ऐसी सुन्दर आराधना करती है कि जिससे अरिहत परमात्मा चरम-भव मे तीन ज्ञान सहित जन्म लेते हैं, योग्य अवसर आने पर सयम अगीकार करते हैं, अप्रमत्त भाव से सयम का पालन करते है, घाती कर्मों का क्षय करते हैं और केवलज्ञान प्राप्त करते है। केवलज्ञान प्राप्त करने के बाद साक्षात् मोक्ष मार्ग को ज्ञान-चक्षु से देखकर उसे यथार्थ रूप मे जगत् के जीवो के सामने प्रकट करते है।

उनके द्वारा बताये मार्ग पर चल कर अनेक आत्मा शुद्ध पद प्राप्त करती है और अजरामर बनती है। भविष्य मे भी इस मोक्ष मार्ग का प्रवाह चालू रहे, इसके लिये श्री अरिहन्त परमात्मा धर्मतीर्थ की स्थापना करते है और उस तीर्थ के आलम्बन से अनेक भव्यात्मा मोक्ष पद को प्राप्त करते है। तीन काल मे मोक्ष मार्ग चालू रहता है, जिसमे मुख्य सहयोग श्री अरिहन्त परमात्माओ का होता है और इसीलिए उनका उपकार अजोड और महान् है। ऐसे उपकारी अरिहन्तो को नमस्कार करने से अपने अन्तःकरण मे कृतज्ञता नाम का गुण प्रकट होता है।

श्री सिद्धो का अविनाशीपन

सिद्ध परमात्माओ का मुख्य गुण अविनाशीपन है। श्री सिद्ध परमात्माओ का यह अविनाशीपन का गुण समस्त मुमुक्षु आत्माओं का लक्ष्यबिन्दु है। श्री अरिहन्त परमात्मा भी दीक्षा लेते समय सिद्धपद को नमस्कार करते हैं और जगत् को सिद्धपद के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते है। इसलिये ही अनुपम उपकारी के रूप मे उनकी गणना होती है। जगत् के तमाम पदार्थो पर काल का प्रभाव है। यही सिद्धपद एक ऐसा पद है कि जिस पर काल का कुछ भी प्रभाव नही है। इस पद को प्राप्त करने के बाद जीव कभी भी अपने स्वरूप को नही

छोड़ता है। इसीलिये सिद्धपद अविनाशी कहा जाता है। सिद्ध बनने की अचिंत्य प्रेरणा देता है, हिम्मत देता है, आश्वासन देता है और जीवन के छिपे हुए वीर्योल्लास मे अपूर्व वृद्धि कराता है। श्री सिद्ध परमात्माओ को भावपूर्वक नमस्कार करने से अपनी आत्मा मे सत्तागत (शक्ति रूप मे) रहा हुआ सिद्धपन क्रमश प्रकट होता है।

श्री आचार्यो का सदाचार

नमस्कार मे तीसरा पद आचार्य भगवन्तो का है। मुमुक्षुओं के लिए मोक्ष साध्य है और सदाचरण साधन है। कारण बिना कार्य की प्राप्ति नही होती। जिसको मोक्ष की इच्छा हो उसे मोक्ष के अनन्य साधनभूत सदाचार को भी जीवन मे अपनाना ही होगा। तीसरे पद मे रही हुई आत्मा स्वय पचाचार का पालन करती है और ससार को भी इस मार्ग पर चलने की सतत प्रेरणा अपने जीवन और उपदेश से देती है। पचाचार के पालन मे जगत् के समस्त सुन्दर आचारो का समावेश हो जाता है। पचाचार का पालन अथवा उसका प्रेम जीव मे मोक्ष-प्राप्ति की योग्यता प्राप्त कराता है। इसके बिना सद्गति मे गमन करने के लिए जीव असमर्थ बन जाता है। तीसरे पद को नमस्कार अर्थात् सदाचार की पूजा अथवा सदाचार पर प्रेम की अभिव्यक्ति। सच्चे भाव से सदाचार को अथवा सदाचारी को किया गया नमस्कार किसी भी समय निष्फल नही जाता है।

श्री उपाध्यायों का विनय

नमस्कार मे चौथा पद उपाध्याय भगवत का है। इनका मुख्य गुण विनय है। विनय गुण मोक्षमार्ग के लिए बहुत

उपयोगी है। इसके विना मोक्षमार्ग मे एक कदम भी आगे नही वढ़ा जा सकता। वास्तव मे विनय से ही मोक्षमार्ग का प्रारभ होता है। नमस्कार भी एक प्रकार का विनय ही है। विनय के विना उत्तम प्रकार की विद्या-अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने की विद्या प्राप्त नही होती। इस विद्या-विज्ञान के विना मोक्ष की प्राप्ति कभी भी नही होती। छोटे वड़े सव गुणो का मूल विनय है। इस चौथे पद मे रही हुई आत्मा विनय गुण का पालन करती है और दूसरो को भी विनय गुण की शिक्षा देती है। इस पद को नमस्कार अर्थात् विनय गुण को नमस्कार है। आत्मिक गुणो की प्राप्ति मे ऐसा नियम है कि जिस गुण को आत्मा हार्दिक इच्छा करता है और उसे प्राप्त करने के लिये सच्चे अन्त करण से प्रयास करता है, वह गुण उसमे प्रकट हुए विना नही रहता। गुण वाहर से नही आते, अन्दर से ही प्रकट होते है। इसके लिये हृदय की सच्चाई तथा तीव्र लगन की जरूरत है। इस पद को नमस्कार करने से विनय गुण की प्राप्ति होती है। विनय गुण यानि वाह्य-आभ्यतर सर्व प्रकार की ऋद्धि-सिद्धियो का उत्पत्ति स्थान। विनय गुण की प्राप्ति के लिये गुणी आत्माओं को भावपूर्वक नमस्कार करना चाहिये। भाव-नमस्कार अर्थात् इस गुण को प्राप्त करने की उत्कट इच्छा पूर्वक मन, वचन, काया की शुभ प्रवृत्ति।

श्री साधुओं की सहायवृत्ति

श्री नमस्कार मे पाचवा पद साधुओ का है। प्राप्त हुई शक्ति और सामग्री का यदि सदुपयोग नही किया जाय तो वह शक्ति दिन प्रतिदिन हीन-क्षीण होती जाती है और यदि उसका उचित सदुपयोग किया जाय तो वह शक्ति और

सामग्री उत्तरोत्तर अधिकाधिक तीव्र-तेजस्वी बनती जाती है। जिसमे किसी को सहयोग देने की वृत्ति नही, उसमे कभी भी साधुता नहीं आ सकती। इतना ही नही, परन्तु प्राप्त शक्ति का शक्य सदुपयोग न करने से जीव इस प्रकार का आवरण उपार्जन करता है कि जिसके कारण उसे भविष्य मे अधिक प्रकाश मिलना रुक जाता है और शक्तिको को पुन' प्राप्त करने की भूमिका भी नष्ट हो जाती है। इस प्रकार प्राप्त शक्ति का शक्य सदुपयोग न करना स्वय के लिये अहितकर है। साधु पद को प्राप्त हुआ विवेकी आत्मा प्रकृति के इस सनातन नियम का भली प्रकार जानकार होने से अपने को प्राप्त हुई तमाम शक्तियो को स्व-पर का अहित न हो, किन्तु हित हो, उसी प्रकार सत्कार्यो मे निरन्तर लगा देता है। दूसरो के हित-कार्य मे उसे कभी थकान नही लगती, कारण दूसरो के हित मे ही अपना हित उसने समझ रखा है।

अनादि काल से जीव अशुद्ध वृत्तियो से भरा हुआ है, जिससे उसमे स्वार्थवृत्ति सहज है। यह स्वार्थवृत्ति ही जीवन में पशुता का अग है। इसी के कारण जगत् मे अनेक प्रकार की कठिनाइया और सघर्ष खडे होते है, जबकि दूसरो का हित करने की वृत्ति दिव्यता का स्रोत है, भाव-ऐश्वर्य की सुवास है। यह सहायवृत्ति सहज नही है, वह अभ्यास द्वारा प्राप्त करने की वस्तु है, बहुत समय तक आदर और सत्कारपूर्वक किये गये संतत अभ्यास के बिना यह स्थिर नही होती। इस सहायवृत्ति को-दूसरो का सहायक बनाने की वृत्ति को जागृत करने का अमोघ उपाय साधुपद को भाव से नमस्कार करना है। यह सहायवृत्ति जागृत करने से स्वार्थवृत्ति विलुप्त होती है।

तात्पर्य यह है कि सेवा-गुण (सहायवृत्ति) के विकास के विना सच्चा विनय गुण प्रकट नही हो सकता। विनय गुण का स्वरूप ही ऐसा है कि उसमे बाह्य सेवा और हृदय का प्रेम ये दोनो वस्तुएँ चाहिये। ये दोनो हो, तव ही विनय गुण वास्तविक वन सकता है। विनय गुण के विकास विना सदाचार की विद्या अर्थात् मोक्ष मार्ग का सच्चा ज्ञान प्राप्त नही हो सकता और सदाचार की विद्या अर्थात् मोक्ष मार्ग का सच्चा ज्ञान प्राप्त किए विना सदाचार का पूर्ण पालन नही हो सकता। सदाचार के पूर्ण पालन विना सिद्ध पद की प्राप्ति नही हो सकती। सिद्ध पद की प्राप्ति की अभिलाषा अरिहत पद की आराधना के विना सम्भव नही। इस प्रकार एक अपेक्षा से पाचो पद कार्य-कारण-रूप होने से समान आदरणीय होते है। कार्य-सिद्धि की इच्छावाला कभी भी कारणो की उपेक्षा नही करता। इतना ही नही, वरन् वास्तविक कारणो के सेवन मे ही अपना तमाम पराक्रम खर्च करता है। क्योकि वास्तविक कारणों में लगा रहना ही कार्य सिद्धि का अमोघ मन्त्र है। हमेशा कारणों का सेवन करना चाहिये, कार्य तो योग्य अवसर पर उसके पास आकर अवश्य खडा रहेगा ही।

एक गाँव से दूसरे गाँव जाना हो, वहाँ वीच मे चलने की क्रिया गाँव प्राप्ति का कारण है। प्रयाण का काम चालू है, तो गाँव स्वय आकर खडा रहता है, उसी प्रकार निश्चय को लक्ष्य मे रख कर वास्तविक कारणो के सेवन मे लगे रहने से फलस्वरूप जो कार्य होता है वह उसके पास आकर खड़ा रहता ही है। इस प्रकार से कार्य-कारण की सनातन व्यवस्था है।

नमस्कार एक महान् शक्ति

पंचपरमेष्ठि को नमस्कार करने से जिस तरह सहायवृत्ति, विनय, सदाचार, अविनाशीपन और परोपकार आदि लोकोत्तर गुणो के प्रति प्रेम जागृत होता है, उसी तरह दूसरे भी अनेक लाभ होते हैं। वास्तव मे यह पच नमस्कार एक महान् शक्ति है अथवा शक्ति का पुञ्ज है। प्रतिपक्षी वस्तु को दूर करने के लिए हमेशा शक्ति की जरूरत होती है।

मोह ही जीव का वास्तविक शत्रु है

अनादिकाल से इस जीव के सच्चे प्रतिपक्षी शत्रु यदि कोई हैं तो आठ प्रकार के कर्म हैं। इन कर्मो मे भी मोहनीय कर्म मुख्य है, आठ कर्मो मे यह सर्वोपरि है, इस मोहनीय कर्म को जीतना कठिन है। मोहनीय कर्म दो प्रकार के है। एक दर्शन-मोहनीय और दूसरा चारित्र-मोहनीय। मोहनीय कर्म को जीतने से दूसरे सब कर्मो की शक्ति जर्जरित हो जाती है। परमेष्ठि-नमस्कार से मोहनीय कर्म का समूल नाश हो जाता है और मोह नाश से दूसरे कर्म अवश्य नाश होते है। इसलिए नवकार मे "सव्वपावप्पणासणो" यह पद कहा है।

मोह नाश का उपाय

अब यहाँ नमस्कार से मोहनीय कर्म किस तरह नाश होते हैं, इस पर विचार करेंगे। मोहनीय कर्म मे भी दर्शन-मोहनीय बलवान् है, नवकार के प्रथम पद "नमो अरिहन्ताणं" से दर्शन-मोहनीय कर्म जीता जाता है। दर्शन-मोहनीय अर्थात् उल्टी मान्यता। अरिहन्त को भाव से नमस्कार करने से जीव सम्यग् मान्यता मे आता है। जीव की उल्टी मान्यता

ही दर्शन मोह का बड़ा बल है। जो आत्मा शुद्ध भाव से अरिहन्त को नमस्कार करता है, उसकी उल्टी मान्यता दूर होती है। वास्तव मे तो जिसने अरिहन्त को नमन किया, उसने सन्मार्ग को नमन किया, जिससे उसकी उन्मार्ग की रुचि हटी और वह सन्मार्ग की रुचि वाला बना। इससे दर्शन-मोह के मर्मस्थान का भेदन होता है और तदनन्तर क्रमश वह सर्वथा नाश हो जाता है।

नमस्कार का अचिंत्य प्रभाव

सामान्यतया भी ससार मे प्राय: नमस्कार प्रशस्त गिना जाता है परन्तु जब वह नमस्कार अरिहन्त परमात्मा के प्रति होता है, तब तो उस नमस्कार की शक्ति अत्यन्त सामर्थ्यवाली बन जाती है। नमस्कार किया हो, परन्तु नमस्कार के विषयभूत अरिहन्त परमात्मा न हो, तो उतनी सामर्थ्य प्रकट नही होगी। इस तरह नमस्कार के विषयभूत अरिहत हो, परन्तु भाव नमस्कार न हो, तो भी उतनी सामर्थ्य प्रकट नही होगी। जब भाव नमस्कार और नमस्कार का विषयभूत अरिहत भगवन्त हो, तब अनादि काल से जो मिथ्यात्व दूर न हुआ हो, वह भी दूर हो जाता है। ऐसे बलवान् प्रतिपक्षी को सहज मे जीतनेवाला होने से नमस्कार एक महान् शक्ति, अथवा शक्ति-पुज है, यह कहना सर्वथा उचित है।

मोह का प्रथम भेद दर्शन-मोह है, उसी तरह दूसरा भेद चारित्र-मोह है। चारित्र-मोह के पच्चीस भेद हैं। उनमे भी क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार मुख्य हैं। अब यहाँ नमस्कार महामत्र के पवित्र पदो से ये चार कषाय किस तरह जीते जाते है, उसका भी पश्चादनुपूर्वी से विचार करेगे।

क्रोध को जीतने का उपाय (साधु पद)

"नमो लोए सव्वसाहूणं" इस पद से क्रोध को जीतने का बल प्रकट होता है, क्योंकि भाव साधुता को प्राप्त हुए मुनिवृन्द सतत रीति से क्षमा के सहारे क्रोध को जीतने के लिये कटिबद्ध हुए हैं, इस कारण साधुओं को 'क्षमाश्रमण' क्षमा प्रधान साधु की तरह संबोधित किया जाता है। उनके आश्रय में आनेवाले दूसरे भी क्रोध को जीतने में समर्थ होते हैं और उनमें भी क्षमा गुण का प्रादुर्भाव होता है।

मान को जीतने का उपाय (उपाध्याय पद)

"नमो उवज्झायाणं" इस पद को नमस्कार करने से मान नाम का कषाय दोष दूर होता है और नम्रता गुण प्रकट होता है। उपाध्याय स्वयं विनय गुण को धारण करने वाले होते हैं। जिसने जिस गुण को आत्मसात् कर लिया है, उसके साथ बैठने से अपने में भी वह गुण प्रकट होता है। जिस तरह तीर्थंकर भगवंत के समवसरण में जाति वैर भाव वाले प्राणी भी प्रभु के सानिध्य में वैर भाव भूल जाते हैं और शांत बन जाते हैं। उसी तरह जहां विनय-नम्रता हो, वहाँ मान-अभिमान नहीं टिक सकता।

माया को जीतने का उपाय (आचार्य पद)

"नमो आयरियाणं" इस पद से मायाचार दूर होता है। प्राप्त शक्ति को छिपाना, अर्थात् उसका सदुपयोग न करना मायाचार कहलाता है। सदाचार की क्रियाओं में संलग्न रहते हुए भावाचार्य अपना बल जरा भी नहीं छिपाते। आचार्य पद को नमस्कार करने से यथाशक्य शुभ क्रिया में पराक्रम प्रकट

होता है और उससे मायाचार अर्थात् माया नाम का दोष दूर होता है। जब माया हटती है तब सरलता नाम का गुण प्रकट होता है।

लोभ को जीतने का उपाय (सिद्ध पद)

"नमो सिद्धाणं" यह पद सासारिक लोभ को दूर करने वाला है। सिद्ध परमात्मा की अनन्त ऋद्धि का दर्शन होने के बाद सासारिक लोभ रह नही सकता। भ्रमर तभी तक गु जारव करता है जब तक उसे पुष्प का पराग नही मिलता। जीव को जगत् के पदार्थों का लोभ तभी तक रहता है, जब तक आत्मा की अनत ऋद्धि का दर्शन उसे नही होता। सिद्ध पद को नमस्कार करने से वास्तव मे अपनी आत्मा मे रही हुई अनन्त ऋद्धि का दर्शन होता है, जिससे सासारिक लोभ दूर हो जाते हैं और सतोपवृत्ति प्रकट होती है।

नमस्कार पुण्यरूपी शरीर को उत्पन्न करने वाली माता है।

इस तरह पचपरमेष्ठि-नमस्कार से मोहनीय कर्म के मुख्य भेद रूप दर्शन-मोहनीय और चारित्र-मोहनीय रूप क्रोध, मान, माया तथा लोभ आदि दोप दूर होते है। इसलिए यह क्रिया अचिन्त्य प्रभावशालिनी गिनी जाती है। अनुभवी पुरुषो ने इस नमस्कार की क्रिया का प्रभाव स्वय मे अनुभव किया है और केवल करुणा बुद्धि से ससार के सामने कई प्रकार से बताया भी है। अद्भुत सामर्थ्यवाली नमस्कार की क्रिया मे महाज्ञानी पुरुप भी मुग्ध बने है। उसके गुणानुवाद मे पीछे नही रहे हैं। इतना ही नही जिस प्रकार जगत् के जीवो को इस नमस्कार क्रिया के प्रति रुचि, प्रेम और आदर पैदा हो, उसी प्रकार उसकी महिमा दर्शाने का अथक प्रयत्न भी किया है।

श्री सिद्धसेनाचार्य रचित **"श्री नमस्कार माहात्म्य"** नामक ग्रंथ रत्न में **इस नमस्कार क्रिया को पुण्य रूपी शरीर को जन्म देनेवाली माता की उपमा दी गई है।** माता जिस तरह बाह्य शरीर को जन्म देती है उसी तरह नमस्कार रूपी माता पुण्य रूपी शरीर को उत्पन्न करती है। बाह्य शरीर को जन्म देने वाली माता है, यह बात जगत् प्रसिद्ध है, नमस्कार माता है यह बात सत्य होने पर भी जगत् के जीवो की कल्पना के बाहर है, उसे लक्ष्य मे लाने के लिये नमस्कार को पुण्य रूपी शरीर को उत्पन्न करनेवाली माता की उपमा दी है। नमस्कार की क्रिया के बिना पुण्यरूपी शरीर उत्पन्न नही हो सकता और पुण्यरूपी शरीर की प्राप्ति के बिना बाह्य शरीर को, या अन्य किसी भी तरह की कोई भी सामग्री की सफलता सम्भव नही हो सकती, अर्थात् बाह्य शरीर आदि साधन लाभदायक नही होते, बल्कि कई तरह से हानिप्रद बनते है।

इसके सिवाय बाह्य शरीर मे भी नीरोगता, दीर्घायुता, सुन्दरता, निर्दोषता, आदेयता, श्लाघनीयता, सहृदयता, सौम्यता, आदि गुणो का समूह अन्दर के पुण्य रूपी शरीर के बिना नही प्रकट होते। शरीर की निर्दोषता, स्वभाव की सुन्दरता और बाह्य ऐश्वर्य आदि ये सब पुण्यरूपी आन्तरिक शरीर के मूर्त प्रतीक है। एक कारण है तो दूसरा कार्य है। एक ही समय में उत्पन्न हुए दो बालको मे स्वभाव, बल, बुद्धि, वैभव, आरोग्य और अभिरुचि आदि मे फर्क होता है, इसका वास्तव मे कोई आंतरिक कारण होना चाहिये और वह पुण्य रूपी शरीर है। जिसका पुण्य रूपी आंतरिक शरीर पुष्ट होता है, उसे उत्तम वस्तुएँ स्वयं प्राप्त हो जाती है।

यहा पुण्यरूपी शरीर का मतलब-पुण्यानुबन्धी पुण्य

समझना चाहिए। जीव जब एक गति से दूसरी गति मे जाता है, तब उसके साथ दो शरीर होते हैं। एक कार्मण और दूसरा तेजस। ये दो शरीर जीव के साथ अनादि काल से होते हैं और ससार पर्यन्त रहते है। उनमे से कार्मण शरीर अर्थात् आत्मा को लगे हुए कर्मो का समूह है। जीव जिस प्रकार का कार्मण शरीर लेकर आता है, उसी प्रकार का बाह्य (तीसरा) शरीर और वैभव आदि सामग्री उसे प्राप्त होती है। यदि उसमे पुण्य की प्रवलता होती है तो वह पुण्यानुवन्धी पुण्य कहलाता है। यह पुण्यानुवन्धी पुण्य उत्तम वस्तुओ मे उत्तम रुचि पैदा करता है, जिससे वह प्रशसनीय गिना जाता है, और मोक्ष के अनुकूल उत्तमोत्तम प्रकार की सामग्री प्राप्त कराने मे अग्रगण्य रहता है।

कर्म की परतन्त्र दशा मे रहा हुआ जीव अनादि अभ्यास के योग से सहज भाव से अशुभ मे तन्मय हो जाता है। जीव की यह अशुभ दशा शुभ आलम्बन के विना दूर नही हो सकती और शुभ आलम्बनो की प्राप्ति पुण्यानुवन्धी पुण्य विना सुलभ नही।

'जीव को वनना है सर्व कर्म से रहित', आराधक मात्र का यही अन्तिम ध्येय होता है। परन्तु यह दशा प्राप्त होने से पूर्व बीच मे एक अवस्था मे से अवश्य गुजरना पडता है। इस अवस्था का नाम 'पुण्यानुवन्धी पुण्य है जिसका काम पवित्र कर्तव्यों मे आत्मा को ओत प्रोत वना देना है।' यह बात उदाहरण से समझावेंगे।

पुण्यानुबन्धी पुण्य की उपादेयता

किसी आदमी को दीवाल पर एक सुन्दर चित्र बनाने की इच्छा हुई। इस कार्य के लिये पहले दीवाल को ठीक करना होता है, अर्थात् उसमे के खड्डे आदि दूर कर, जमीन को

समतल, कोमल और स्वच्छ बनानी होती है। अपना बनाया चित्र उसमे झलक उठे, इसके लिये तमाम आवश्यक प्रयत्न करने होते हैं। सब कुछ होने के बाद ही वहाँ चित्र सुन्दर बन पाता है। यहाँ तीन अवस्थाएँ हुईं। प्रथम दीवाल चित्र के लिये अयोग्य थी, यह पहली अवस्था उसे उपाय द्वारा योग्य बनाई यह दूसरी अवस्था, और उसके योग्य होने के बाद उस पर चित्र बना, यह तीसरी अवस्था। यदि बीच मे योग्य उपायो द्वारा दीवाल को योग्य बनाने का काम न किया गया होता तो वहा चित्र कभी अच्छा नही बन सकता था। उसी प्रकार यहाँ भी जीव अनादि काल से अशुभ भाव मे रमण करता है, उसे पहले पुण्यानुबन्धी पुण्य से उत्पन्न होने वाले उत्तमोत्तम निमित्तो के बल से शुभ भाव मे लाना पडता है और इस तरह जीव मे शुभ की प्रतिष्ठा होने के बाद, अर्थात् अणु अणु मे शुभ भाव की एकमेकता होने के बाद ही जीव रूपी दीवाल पर शुद्धि का रंग चढ सकता है। यहाँ भी तीन अवस्थाएँ हुईं। प्रथम अशुभ, उसे उपायो द्वारा शुभ बनाना दूसरी, और शुभ बनने के बाद उसके ऊपर शुद्ध दशा रूपी रग का चढना तीसरी। यह क्रम अनादि काल से है। जिन-जिन ने भी शुद्ध दशा प्राप्त की है, उन सभी ने इसी प्रकार क्रमश विकास करके ही की है। अशुभ की रुचि जहाँ तक है, वहाँ तक शुभ आलम्बन की बहुत ही आवश्यकता है। शुभ के बल से अशुभ का राग दूर होने पर शुभ स्वय अपने आप पलायन कर जाता है; क्योकि वह सज्जन मित्र के समान है। जरूरत हो तब तक सहायता के लिये उपस्थित रहता है और आवश्यकता पूरी हो जाने पर स्वय चला जाता है। इसका मुख्य काम अशुभ को दूर हटाने का है। जिस प्रकार अरडी का तेल पेट के पुराने मल को निकाल कर खुद भी निकल जाता है, उसी प्रकार पुण्यानुबन्धी पुण्य अशुभ की रुचि को दूर हटाकर

मोक्ष के अनुकूल उत्तम वस्तुओ मे उत्तम रुचि उत्पन्न कर, सन्मार्ग मे स्थिर कर, जरूरत हो, तब तक उपस्थित रह कर, अनेक प्रकार से सहायता करता है, और आवश्यकता न होने पर स्वय भी चला जाता है। नमस्कार महामन्त्र ऐसे पुण्यानुबन्धी पुण्य को उत्पन्न कराने वाला होने से इसे पुण्य रूपी शरीर को उत्पन्न करने वाली माता की उपमा दी गई है, वह यथार्थ है। वास्तव मे तो नमस्कार का फल मोक्ष प्राप्ति ही है। परन्तु यहाँ साध्यदशा को गौण रख साधन दशा को मुख्य बताकर यह फल बताया है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि साध्य से साधन का महत्त्व जरा भी कम नही है। कार्य सिद्धि के इच्छुक को जितनी कीमत कार्य की होती है, उतनी ही अथवा उससे ज्यादा कीमत उसके साधन की होती है। दरअसल कारण बिना कार्य नही होता, इसलिये कारण की उपेक्षा करना कार्य की उपेक्षा करने के बराबर है और कारण का आदर करना कार्य का आदर करने के बराबर है।

जमीन मे पानी प्रकट करना, यह कार्य है और कुआ खोदने की क्रिया कारण है। जो मनुष्य वास्तविक कारणो मे लगा रहता है, उसका कार्य अवश्य सिद्ध होता है और जो कारणो का अनादर कर उनमे लगा नही रहता, उसे कभी भी कार्य-सिद्धि नही होती। योग्य भूमि मे कुआ खोदने पर पानी का स्रोत स्वयं निकलता है, उसी तरह शुभ अनुष्ठानो मे रमे रहने से आत्मा की शुद्धिरूपी कार्य भी अपने आप प्रकट होता है। वस्त्र की उज्ज्वलता करना कार्य है। वस्त्र को धोने की क्रिया से जैसे उसमें उज्ज्वलता अपने आप प्रकट होती है, उसी तरह शुभ अनुष्ठानो मे सलग्न रहने से आत्मारूपी वस्त्र मे भी उज्ज्वलता अपने आप प्रकट होती है। इन सब कामो मे साधन का ही

महत्त्व है। इस प्रकार साधन का आदर कार्य का ही आदर है। इसके विपरीत साधन का अनादर, साधन की उपेक्षा या साधन में मध्यस्थता, वह कार्य के प्रति अनादर, उपेक्षा और मध्यस्थता ही है।

मुमुक्षुओं के लिये मोक्ष साध्य है, यह बात जितनी निश्चित है, उतनी ही यह बात भी निश्चित है कि मोक्ष पुण्यानुबन्धी पुण्य की पुष्टि के बिना कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता। यह पुण्यानुबन्धी पुण्य की प्राप्ति भी परमेष्ठि-नमस्कार बिना नहीं होती, यह भी निश्चित है। इसलिये यहाँ परमेष्ठि-नमस्कार को मोक्ष के अनन्य कारणभूत पुण्यानुबन्धी पुण्य की जननी कहा है।

पुण्यरूपी अंग का पालन करने वाला नमस्कार है

पुत्र को जन्म देने मात्र से माता का कार्य पूरा नहीं हो जाता। जन्म देने से भी पालन पोषण करने का उत्तरदायित्व और अधिक है। यह उत्तरदायित्व माता बराबर पूरा करती है। जगत् में पाल्य-पालक सम्बन्ध अनेक प्रकार के है। राजा प्रजा का पालन करता है, पति पत्नी का पालन करता है, सेठ नौकर का पालन करता है, परन्तु इन सब पालन में कोई भी पालक अपना स्वत्व देकर अपने आश्रित का पालन नहीं करता, जबकि माता अपना स्वत्व देकर अपने सुख, सुविधा, शांति और सर्वस्व का भोग देकर पुत्र का पालन करती है। मात्र पालन ही करती है यही नहीं, वरन् अपने जीवन में सुन्दर संस्कारों का सिंचन कर पुत्र में भी उनको उतारती है। बालक पर हजारों उपदेशों का जितना असर नहीं होता उतना असर माता के आचरण का होता है। बालक की अव्यक्त अवस्था में उपदेश फलीभूत नहीं होता। परन्तु माता के प्रकृतिगत सुन्दर संस्कारों का असर उसके जीवन पर होता है। अधिकतर उस

वक्ता के अच्छे-बुरे संस्कारों के अनुसार बालक का जीवन बनता है। अहिंसा प्रेमी माता का बालक स्वाभाविक रूप से दयालु बनता है। स्वयं के उत्तम हुए बिना उत्तमता के संस्कार दिये नहीं जा सकते। आज तक जगत् को जितने महापुरुषों की भेंट मिली है, उसके वास्तविक कारण का यदि पता लगाया जाय, तो मालूम होगा कि उत्तम नर-रत्न निर्माण करने में मुख्य भाग त्याग और वात्सल्य की मूर्ति माता का अथवा माता जैसी हृदयवाली पवित्र आत्मा के अतिरिक्त और किसी का नहीं है। अपने सर्वस्व का त्याग कर माता पुत्र का पालन करती है, इसके अलावा उसमें दूसरी एक विशेषता यह है कि उसे कभी यह विचार नहीं आता कि मैं कोई उपकार करती हूँ। कदाचित् पुत्र अयोग्य निकल जाय, तब भी माता अपने हृदय में पुत्र के अवगुण को स्थान नहीं देती, बल्कि उसकी उन्नति कैसे हो, इसकी रात दिन चिन्ता करती है। यह हृदय माता को ही मिला है और इसीलिये मार्गानुसारी के ३५ गुणों में बड़ों की गिनती में माता का नाम सब से पहले लिया जाता है। माता की ये सब विशेषताएँ जगत् को मान्य है, इसलिये जिसके दिल में जिस वस्तु की महत्ता घर कर गई है उसे उसी प्रसिद्ध दृष्टांत द्वारा उपदेश देने से अल्प प्रयास द्वारा अप्रसिद्ध वस्तु भी समझाई जा सकती है, अतः यहां नमस्कार को माता कहने में पूर्व पुरुषों ने इस रीति को स्वीकार किया है। यहां नमस्कार रूपी माता का विचार करना है। नमस्कार रूपी माता मात्र पुण्यानुबंधी पुण्य रूप शरीर को जन्म देती है, इतना ही नहीं, परन्तु पुण्य शरीर का पालन पोषण भी वही करती है। उत्तम वस्तु की प्राप्ति के बाद उसका सदुपयोग करना, यही उसकी पुष्टि है। नमस्कार से जो पुण्य उपार्जन होता है वह पुण्यानुबंधी

पुण्य है, नमस्कार से उत्तरोत्तर वह पुष्ट बनता जाता है और पूर्ण विकास भी नमस्कार से ही होता है।

नमस्कार की रुचि के बिना कदाचित् ऊंचा पद प्राप्त हो जाय, परन्तु परिणाम मे वह लाभदायक नही होता, कारण कि नमस्कार की रुचि बिना किया पुण्य, विपाक काल मे जीव को बेभान बनाकर अधिक अंधकार मे धकेल देता है। नमस्कार की रुचि से जो विकास होता है वही परिणाम मे हितकारक होता है। नमस्कार वस्तु को प्राप्त कराता और उसका सदुपयोग भी कराता है। इसलिये वह पुण्यानुबंधी पुण्य कहलाता है। इस पुण्यानुबंधी पुण्य की सहायता के बिना जिस तरह उत्तम प्रकार की सामग्री सुलभ नही है, उसी तरह उसकी सहायता के बिना उत्तम सामग्री का सदुपयोग भी सम्भव नही है। आत्म विकास के जिज्ञासु किसी भी भव्यात्मा का नमस्कार से प्राप्त होने वाले पुण्यानुबंधी पुण्य की सहायता बिना काम नही चल सका और चल भी नही सकता। चोर और श्वापद आदि से भरपूर भयंकर जंगल मे योग्य जानकार जिस प्रकार उस भयंकर जंगल का उल्लंघन करवा कर इच्छित स्थान पर पहुँचाता है, उसी तरह पुण्यानुबंधी पुण्य रूपी सहायक भी राग द्वेष आदि दोषो रूपी चोर और श्वापदो से भरपूर भयंकर भव अटवी का उल्लंघन करवाकर इच्छित स्थान पर अर्थात् मोक्ष-नगर मे पहुँचाने मे सहायता करता है। जिस प्रकार सीढी की सहायता बिना ऊंचे महल पर नही चढ़ा जा सकता, उसी प्रकार पुण्यानुबंधी पुण्य की सहायता के बिना अप्रमत्तादि उच्च गुणस्थानको तक नही पहुंचा जा सकता। इन सब की जड़ नमस्कार होने से नमस्कार को यहां पुण्य रूपी शरीर को जन्म देने वाली और पालन पोषण करने वाली माता कहा गया है।

इस तत्व को जानने के बाद नमस्कार के प्रति अधिक आदर जागृत होता है, यह स्वाभाविक है।

पुण्यरूपी अंग को पवित्र रखने वाला नमस्कार है

माता पुत्र को जन्म देती है और पुत्र का पालन पोषण करती है, उसी तरह पुत्र को स्वच्छ रखने का काम भी माता करती है। यहा भी नमस्कार जिस तरह पुण्यरूपी शरीर को जन्म देता है, और उसका पालन पोषण करता है, उसी तरह उसे पवित्र रखने का काम भी वही करता है। पुण्य रूपी अंग को पवित्र रखने का अर्थ यह है कि पुण्यानुबंधी पुण्य को वह दृढ (पुष्ट) करता है, उसमे पौद्गलिक आशंसादि दोष रूपी मलीनता न आजाय, उसका ध्यान रखता है, उत्तरोत्तर अधिक अधिक पुण्यानुबंधी बनाकर जीव की अधिक अधिक शुद्धि करता है और शुद्धि की पराकाष्ठा अर्थात् मोक्षपद तक पहुँचाता है।

पुण्यानुबंधी पुण्य का स्वभाव ही ऐसा है कि वह उत्तरोत्तर अधिक-अधिक विकास मे सहायता करे। जीव मे लौकिक कीर्ति आदि की इच्छा अथवा प्राप्त गुणस्थानो की ओर आसंगादि दोषो के आजाने की संभावना रहती है, उन्हे दूर कर आत्म विकास की पराकाष्ठा की ओर पहुचाता है, जीव की पूर्ण शुद्धि करता है। नमस्कार रूपी माता की यह विशेषता है कि वह पुण्य रूपी अंग का इस प्रकार पालन पोषण और शुद्धि करती है कि जिसके कारण जीव की शुद्धि स्वयं ही हो जाती है।

जंगल मे रहने वाला भील-भीलनी का विकास नमस्कार के प्रारंभ से हुआ था, उसी तरह सुदर्शन सेठ के जीव का सुभग के भव मे नमस्कार महामन्त्र के स्मरण से विकास शुरु हुआ

और उसी के कारण दूसरे ही भव में महा-पुरुषो को भी आश्चर्य उत्पन्न करे ऐसा उनका अद्भुत जीवन शास्त्रो मे स्वर्णाक्षरों मे अंकित हुआ है।[1]

जीव रूपी हंस को विश्रांति का स्थान नमस्कार है

हस विश्राम कमल श्री नमस्कार जीव रूपी हस की विश्रांति के लिये कमल की शोभा के समान है। ससार मे जीव को कही भी विश्राति नही है। कषाय रूपी ताप से यह जीव सतत तप रहा है। कर्म रूपी मैल से सना हुआ ह। तृष्णा रूपी तृषा मे तृषातुर हो रहा है ऐसी दशा मे शान्ति कहाँ से मिले? विपरीत दशा मे दौड़-दौड कर जीव थक गया है। विश्राति के लिये जहा-जहा जाता है, वहा कही भी उसे विश्राति नही मिलती। जगत् मे विश्राति अनेक प्रकार की मानी जाती है। लोभी को धन-प्राप्ति विश्रांति लगता है, कामी को राग के साधन विश्राति रूप लगते है, रोगी को आरोग्य की प्राप्ति विश्राति लगती है, भूखे को भोजन और प्यासे को पानी विश्राति लगती है, जब कि बोझा उठाने वाले को बोझा दूर हो यह विश्राति लगती है, परन्तु ये सब वास्तविक विश्रातियाँ नही है, बल्कि दुखो के क्षणिक प्रतिकार है। वास्तविक और अन्तिम विश्राति तो भाव नमस्कार की प्राप्ति होना ही है। इसके सिवाय दूसरी विश्राति थोडी देर के लिये ही कुछ शान्ति दे, परन्तु अन्त मे वे जीव की थकावट मे अधिक वृद्धि करती है। वही विश्रान्ति

[1]इस विषय मे विशेष जानकारी के लिये देखो लेखक कृत "नमस्कार महामंत्रना दृष्टांतो" नामक पुस्तक। इस पुस्तक मे नवकार विषयक २१ दृष्टांत दिये गये हैं।

सच्ची विश्रान्ति मानी जायगी, जिसकी प्राप्ति होने पर जीव में विश्रान्ति उत्तरोत्तर बढती रहे। ऐसी विश्रान्ति नमस्कार से प्राप्त होती है। नमस्कार की प्राप्ति से जीव का भाव दारिद्रय दूर हो जाता है, तट पर पहुँचे हुए जहाज की स्थिति को प्राप्त करता है। इससे उसका आन्तरिक आनन्द बढता रहता है। जीव रूपी हस को यदि परमेष्ठि नमस्कार रूपी सुशोभित कमल की श्रेणी मे लीन किया जाय तो उसे अनुपम विश्रान्ति मिल सकती है। महाज्ञानी भी अपनी आत्मा की सच्ची विश्रान्ति के लिए इस मन्त्र का ही ध्यान करते है। उस महामन्त्र के ध्यान मे यदि जीव लीन हो जाय तो इसे चारो ओर से विश्रान्ति स्वयं प्राप्त हो जाती है।

नमस्कार सदा जयवन्त रहो

इस प्रकार नमस्कार के गुण अपार है और इसी से विवेकी आत्मा प्रतिदिन इस नमस्कार का आदर पूर्वक आराधना करता है। इस असार संसार मे नमस्कार मन्त्र ही एक सारभूत वस्तु है। यह इष्ट नमस्कृति सदा जयवन्ती रहे। और सब आदर-पूर्वक नवकार की आराधना कर शाश्वत सुख को प्राप्त करे।

अहकार मोह का महा मन्त्र है। उसके वशीभूत हुए जीवों की रक्षा करने वाला एक मात्र नमस्कार है। अह का नाश हुए विना 'अर्हं' की उपासना सम्भव नही। 'अर्हं' की उपासना विना 'अह' का नाश सम्भव नही, इसलिए 'अह' मे से उत्पन्न अहकार का नाश करने के लिए महामन्त्र की साधना का अनन्य उपाय काम मे लेना चाहिये।

श्री नमस्कार महामंत्र की सर्वदृष्टिता

(१) मंत्रशास्त्र की दृष्टि से नमस्कार महामंत्र सर्व पाप रूपी विष को नाश करने वाला है।

(२) योग शास्त्र की दृष्टि से पदस्थ ध्यान के लिये इसमें परम पवित्र पदो का आलंबन है।

(३) आगम साहित्य की दृष्टि से वह सर्व श्रुतो मे आभ्यन्तर रूप से विद्यमान है तथा चूलिका सहित वह महाश्रुत स्कंध की उपमा को प्राप्त है।

(४) कर्म साहित्य की दृष्टि से एक एक अक्षर की प्राप्ति के लिये अनन्तानन्त कर्म स्पर्धको का विनाश अपेक्षित है तथा एक एक अक्षर के उच्चारण से भी अनन्त अनन्त कर्म रसाणुओं का नाश होता है।

(५) ऐहिक दृष्टि से इस जन्म मे प्रशस्त अर्थ, काम और आरोग्य की प्राप्ति तथा उसके योग से चित्त की प्रसन्नता प्राप्त होती है।

(६) परलोक की दृष्टि से मुक्ति तथा मुक्ति प्राप्त न हो तब तक उत्तम देवलोक और उत्तम मनुष्य कुल की प्राप्ति कराता है। उसके परिणाम से थोडे समय मे बोधि, समाधि और सिद्धि प्राप्त होती है।

(७) द्रव्यानुयोग की दृष्टि से शुरू के दो पद स्वय आत्मा का ही शुद्ध स्वरूप हैं और बाद के पद शुद्ध स्वरूप की साधक अवस्था के शुद्ध प्रतीक रूप है।

(८) चरणकरणानुयोग की दृष्टि से साधु और श्रावक की सामाचारी के पालन मे मगल के लिये और विघ्न निवारण के लिये उसका उच्चारण बारबार आवश्यक है।

(९) गणितानुयोग की दृष्टि से नवकार के पदो की नौ की सख्या, गणित शास्त्र की दृष्टि से दूसरी संख्याओ की अपेक्षा अखण्डता और अभगता का विशिष्ट स्थान रखती है तथा नौ की संख्या से नित्य अभिनव भावो की उत्पत्ति होती है। नवकार की आठ सपदाएँ अणिमादि आठ सिद्धियों को सिद्ध कराती हैं। अनानुपूर्वी से श्री नवकार के पदो का परावर्तन चित्त की स्थिरता का अमोघ कारण बनता है।

(१०) धर्मकथानुयोग की दृष्टि से अरिहन्तादि पांच परमेष्ठियो के जीवन चरित्र अद्भुत कथाओ के प्रतीक हैं, नमस्कार की आराधना करने वाले जीवों की कथाएँ भी आश्चर्यकारक उन्नति को दर्शाने वाली हैं तथा ये सब कथाएँ सात्विकादि रसो का पोषण करने वाली हैं।

(११) चतुर्विध सघ की दृष्टि से नवकार मत्र सबको एक शृ खला मे बाँधने वाला तथा सबको समान स्तर पर पहुँचाने वाला है।

(१२) चराचर विश्व की दृष्टि से नवकार के आराधक सब जीवो को अभय देने वाले होते है, सदैव सारे विश्व को एक समान सुख शाति चाहते हैं और उसके लिए सब ही प्रकार

के प्रयत्न, किसी प्रकार की फल-प्राप्ति की आशा के बिना, निरन्तर करते रहते हैं।

(१३) व्यक्तिगत उन्नति की दृष्टि से कोई भी प्रकार की बाह्य साधन-सामग्री के अभाव मे भी साधक केवल मानसिक-बल से सर्वोच्च उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है।

(१४) समष्टिगत उन्नति की दृष्टि से परस्पर को समान आदर्श का पूजक बनाकर सत्श्रद्धा, सद्ज्ञान तथा सच्चारित्र के सत्पथ पर टिके रहने का उत्तम बल प्रदान करता है।

(१५) अनिष्ट-निवारण की दृष्टि से नवकार का स्मरण अशुभकर्म के विपाकोदय को रोकता है और शुभकर्म के विपाकोदय को अनुकूल बनाता है, नवकार के प्रभाव से सभी अनिष्ट इष्ट रूप मे बदल जाते हैं, जिस तरह अटवी महल के समान, सर्प फूल की माला के समान बनते है।*

(१६) इष्ट सिद्धि की दृष्टि से नवकार शारीरिक बल, मानसिक बुद्धि, आर्थिक वैभव, राजकीय सत्ता, ऐहिक सम्पत्ति तथा दूसरे अनेक प्रकार के ऐश्वर्य, प्रभाव और उन्नति को कराने वाला है, क्योंकि वह चित्त की मलीनता और दोषों को दूर कर निर्मलता और उज्ज्वलता प्रकटाता है। सर्व उन्नति का बीज चित्त की निर्मलता है और वह निर्मलता नवकार से सहज ही सिद्ध होती है।

*इस विषय मे विशेष जानकारी के लिये देखो लेखक कृत 'नमस्कार महामंत्र के दृष्टांतों' नामक पुस्तक : इस पुस्तक में नवकार विषयक २१ दृष्टांत दिये गये हैं।

जाप की सिद्धि के लिये प्रयोजनभूत ज्ञान

जाप मे सिद्धि के इच्छुक साधक को जाप के लिये अति प्रयोजन भूत हकीकतों का ज्ञान बराबर रुचिपूर्वक होना चाहिये। रुचिपूर्वक का ज्ञान अर्थात् ज्ञान के अनुसार जीवन मे यथा-शक्ति उतारने की अभिलाषा। इसके बिना साधना के मार्ग में आगे नहीं बढा जा सकता, इसलिये यहां जाप के लिये अति उपयोगी बाते बतलाई जाती है।

प्रथम जाप करने वाले साधक को परमेष्ठि भगवंतो का स्वरूप गुरु के पास भली प्रकार से समझना चाहिये। उसका बारम्बार चिन्तन-मनन कर अपने नाम की तरह आत्मसात् कर लेना चाहिये। जैसे अपना नाम लेते ही अपना समग्र स्वरूप खयाल मे आ जाता है, वैसे ही जाप करते समय मन्त्र के अक्षरों का अर्थ अपने मन के सामने प्रकट हो जाना चाहिये।

परमेष्ठि भगवतो का हमारे ऊपर कितना उपकार है, तथा उनके ऋण से हम कितने दबे हुए है, इसका खयाल जाप करने वाले को बराबर रखना चाहिये। परमेष्ठि भगवंतों का आलंबन न मिलने के कारण भूतकाल मे अनत भव भ्रमण करने पड़े, उनका अन्त आज उनके अवलम्बन से आ रहा है, इसकी खुशी होनी चाहिये। मानस जाप करते समय काया और वस्त्र की शुद्धि के साथ-साथ मन की एकाग्रता और वाणी का पूर्ण मौन रखना चाहिये।

जाप का उद्देश्य पहले से ही स्पष्ट और निश्चित कर लेना चाहिये। सर्व जीवो का हित हो, सब जीव परमात्मा के शासन मे रुचिवत हो, यह उद्देश्य सबसे श्रेष्ठ है। भव्यात्माओं को मुक्ति प्राप्त हो, सघ का कल्याण हो, विषय और कषाय

की परवशता से मैं शीघ्र मुक्त हो जाऊं, मैत्री आदि भावनाओ से मेरा अन्त:करण सदा सुवासित रहे, इत्यादि उद्देश्यों मे से कोई प्रशस्त उद्देश्य निश्चित कर लेना चाहिये। जाप करते समय कदाचित् चित्तवृत्ति चचल बने, तो थोड़ी देर जाप बन्द कर निम्न वाक्यो मे से कोई एक वाक्य या ऐसी कोई दूसरी विचारणा मे अपने चित्त को लगावे।

"जगत् मे सब जीव सुखी हो, रोगी सर्व निरोगी बने, विश्व के कोई जीव पाप न करे, विश्व के कोई जीव दुखी न हो, विश्व के समस्त दोषो का नाश हो, सबको सद्बुद्धि मिले, सर्व जीवों को बोधि-बीज प्राप्त हो, मैत्री आदि भावनाओ की वृद्धि हो।"

इस प्रकार के उत्तम विचार चित्त मे लाने से चित्त की चंचलता दूर होती है। इसलिये इस प्रकार चित्त को स्वस्थ कर तुरन्त पुन जाप शुरू कर देना चाहिये।

साधक को राग द्वेष मे चित्त को नही लगाना चाहिये, परन्तु समतायुक्त रहने का प्रयत्न करना चाहिये।

समता से जाप मे सहज ही प्रगति होगी, समता चित्त मे शान्ति का साम्राज्य स्थापित करेगी और इससे नवकार का स्मरण स्थायी बनेगा। शाति, समता और समर्पण इन तीनो को साधक जितना अधिक अपने जीवन मे उतारेगा, उतनी ही उसकी अधिक प्रगति होगी।

साधक को अपने सब ही सम्बन्धो मे आध्यात्मिकता स्थापित करनी चाहिये। किसी भी प्रकार के अयोग्य आकर्षणो की ओर झुकाव नही होना चाहिये। उसी तरह किसी को भी किसी प्रकार के राग द्वेष मे बाधने का प्रयास नही करना चाहिये।

साधना के परिणाम के लिये अधीर न होना चाहियें, परन्तु धैर्य धारण करना चाहिये। साधना मे वीते प्रत्येक पल की जीवन पर अचूक असर होती है। जब कि नवकार सूक्ष्म भूमिकाओ मे अप्रकट रूप से शुद्धि का कार्य करता है, तब उसका प्रभाव चाहे तात्कालिक मालूम नही होता, परन्तु धीरे-धीरे योग्य समय पर यह बाहर आता है और अपनी समग्रता मे तथा अपने वातावरण मे उसके प्रभाव का प्रकट रूप में अनुभव होता है। जब तक साधक के चित्त मे चचलता, अस्थिरता, अश्रद्धा, चिन्ता आदि होते है, तब तक वह प्रगति नही कर सकता। इसलिए उन सबका अभाव करके चित्त में शान्ति, स्थिरता, अडिगता, आदि को स्थापित करना साधक के लिये अति आवश्यक है।*

साधक को जाप की सिद्धि के लिये स्वयं मे कौन-कौनसे गुण होने चाहिये, उन योग्य गुणो का चिंतन मनन करना चाहिये।†

साधक को यह भी निश्चय होना चाहिये कि उद्देश्य को सफलता इस जाप के प्रभाव से ही होने वाली है। जैसे जैसे सफलता मिलती जाय, वैसे-वैसे उसे समर्पण भाव अधिक अधिक चित्त मे उतारते जाना चाहिए।

जाप की सख्या कितनी हुई, इसका ध्यान रखने के साथ साथ जाप मे चित्त की एकाग्रता कितनी हुई, इसका भी ध्यान बराबर रखना चाहिए, और एकाग्रता लाने के लिए भाव की विशुद्धि बढ़ाते रहना चाहिए। भाव की विशुद्धि जैसे-जैसे बढती है, वैसे-वैसे एकाग्रता के साथ हृदय का उल्लास

*जीवन मे सद्‌गुणो की साधना कैसे करना इस विषय मे देखो लेखक कृत ६०८ पृष्ठ का "सद्‌गुण साधना" नामक पुस्तक।

†इस विषय मे अधिक जानकारी इस पुस्तक मे ही आगे दी गई है।

भी वढता है और जैसे-जैसे उल्लास वढ़ता है, वैसे-वैसे कर्म क्षय अधिक होता है।

जाप से अन्य कार्य हो या न हो, परन्तु हृदय शुद्धि अवश्य होती है और हृदय शुद्धि के फल-स्वरूप बुद्धि भी निर्मल वनी रहती है, ऐसा वारम्वार चितवन करना। बुद्धि निर्मल होने से सव पुरुषार्थों की सिद्धि होती है, ऐसा शास्त्र वाक्य सदैव याद रखना। "वुद्धि को निर्मल करने का ध्येय जाप द्वारा अवश्य पूरा होता है" ऐसी श्रद्धा रखनी चाहिए। जाप करने वाले साधक को विषयो को विष-वृक्ष के समान समझना, संसार के समागमो को स्वप्नवत् देखना, अपनी वर्तमान अवस्था को नाटक का भाग मानना, शरीर को कैदखाना और घर को मुसाफिर खाना मानना चाहिए। इस प्रकार अनित्यादि भावना से अपनी आत्मा को परिपूर्ण करना। सथारा पोरिसी* की गाथाओ मे वताये पदार्थो के अर्थ का चितवन पूर्वक स्वाध्याय करने से दिन प्रतिदिन साधना मार्ग मे आगे वढने का बल प्रकट होता है। साधक को जाप से प्राप्त होने वाले नीचे के गुणो का भी चिंतन करना चाहिए। जैसे

श्री नवकार मत्र का जाप करने से आत्मा को शुभ कर्म का आस्रव होता है, अशुभ का सवर होता है, पूर्व कर्म की निर्जरा होती है। लोक-स्वरूप का ज्ञान होता है, सुलभ बोधिपन प्राप्त होता है और सर्वज्ञ कथित धर्म की भवोभव प्राप्ति कराने वाला पुण्यानुवधी पुण्यकर्म उपार्जन होता है। इस प्रकार की शुभ भावनाएँ चित्त मे निरन्तर रमणता करें, ऐसा प्रयत्न करना चाहिए।

*सथारा पोरिसी सूत्र अनुवाद सहित इस पुस्तक मे आगे दिया गया है।

जाप में प्रगति के इच्छुकों को निम्न नियमों का आग्रह-पूर्वक पालन करना आवश्यक है।

(१) दुर्व्यसनो का त्याग।

(२) अभक्ष्य भक्षण का त्याग।

(३) श्री जिन पूजन आदि श्रावकाचार का पालन, तथा यथाशक्ति तप-जप, ध्यान और आवश्यक क्रियाए।

(४) वाह्य जीवन मे खासकर प्रामाणिकता और नीतिमत्ता का पालन-रक्षण।*

(५) त्रिकाल विश्व कल्याण की श्रेष्ठ भावना पूर्वक कम से कम वारह वारह नवकार मंत्र का नियमित जाप।

(६) श्री नमस्कार महामंत्र के धारण करने वाले को अपना परम वधु समझ उसके सुख दु.ख मे परस्पर सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार रखना।

(७) पच परमेष्ठि नमस्कार के प्रति प्रीति-भक्ति जागृत हो ऐसा वाचन, मनन, परिशीलन दिन मे थोड़ी देर प्रतिदिन नियमित करना।

(८) आराधको को नमस्कार की आराधना मे उत्तेजना मिले, इस हेतु से साहित्य की वृद्धि, अनुभव की सामग्री तथा जाप के अभ्यास क्रम की विधि आदि योजनाओ द्वारा मार्ग दर्शन देने का प्रयत्न करना और करवाना।

---

*उत्तम आचार-विचार, न्याय-नीति, योग, अध्यात्म एव परमात्म-भक्ति के विषय मे अधिक जानकारी के लिये देखो लेखक कृत ६०० पृष्ठ का पुस्तक "धर्म साधना"

महामन्त्र की साधना से होने वाले लाभ

सामान्य फल साधना के क्रम से साधना करने से शारीरिक रोग आदि उत्पन्न नही होते और उत्पन्न रोग आदि दोषो का नाश होता है।

मध्यम फल महामंत्र की साधना का बल बढ़ने से जगत् साधक के अनुकूल वर्ताव करता है, साधक का अंतःकरण और विचार पवित्र और शुद्ध होते हैं, वचन आदरणीय बनते हैं और शुभ भावों की वृद्धि होती है।

उत्तम फल इस साधना के प्रताप से अपूर्व आत्मिक आनन्द का अनुभव होता है, मन प्रफुल्लित होता है, संतोषवृत्ति प्रकट होती है। काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि संताप करने वाले क्लेशकारी भाव निर्बल होते हैं, भावनादि गुणों की वृद्धि होती है, और धीरता, उदारता, गंभीरता आदि भाव-ऐश्वर्य की वृद्धि होती है।

उत्तमोत्तम फल इस संसार मे यदि सर्वोत्तम फल कोई है तो वह एक ही है और वह है "विश्व कल्याण की परमोच्च भावना"। श्री परमेष्ठि की साधना का यह श्रेष्ठतम फल साधक साधना से प्राप्त कर सकता है अर्थात् श्री परमेष्ठि की साधना साधक को परमेष्ठि बनाती है, सर्वश्रेष्ठ बनाती है, जगत्-पूज्य बनाती है और क्रमशः सर्व कर्म से मुक्त बनाकर पारलौकिक सर्वश्रेष्ठ फल-सिद्धिपद प्राप्त कराती है।

साधना के मार्ग में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक जो कुछ विकास होता है, वह 'देव-गुरु की कृपा का ही फल है' ऐसी श्रद्धा साधक को अवश्य पूर्ण बनाती है। परन्तु 'यह तो मेरे प्रयत्न का फल है' इस प्रकार से 'अहं' को महत्त्व देने से विकास रुक जाता है। इसलिये इस मार्ग के अनुभवी पुरुषों का निम्न कथन साधक को हमेशा के लिये अपने हृदय मे अंकित कर लेना जरूरी है। योग शास्त्र के बारहवे प्रकाश मे योगिसम्राट् श्री हेमचन्द्राचार्यजी ने इस सम्बन्ध मे कहा है कि

अथवा गुरुप्रसादादिहैव तत्त्वं समुन्मिषति नूनम् ।
गुरुचरणोपास्तिकृतः प्रशमजुषः शुद्धचित्तस्य ॥

गुरु के चरण की सेवा करने वाले, शांत रस मे लीन रहने वाले और पवित्र अन्तःकरण वाले साधक को गुरु की कृपा से इसी भव मे ही अवश्य तत्त्व का प्रकाश होता है।

तत्र प्रथमे तत्त्वज्ञाने संवादको गुरुर्भवति ।
दर्शयिता त्वपरस्मिन्, गुरुमेव सदा भजेत्तस्मात् ॥

पूर्व जन्म मे प्रथम तत्त्व प्रकाश के अभ्यास मे उपदेश दाता गुरु होते हैं और दूसरे भव मे भी उस तत्त्व ज्ञान को दिखाने वाले गुरु है, इस कारण तत्त्व के प्रकाश के लिये गुरु की ही निरन्तर 'सेवा' करना।

यद्वत्सहस्रकिरणः, प्रकाशको निचिततिमिरमग्नस्य ।
तद्वद्गुरुरत्र भवेदज्ञानध्वांतपतितस्य ॥

जिस प्रकार गहरे अन्धकार मे रखे पदार्थों को सूर्य दिखाता है, उसी प्रकार अज्ञान रूपी अन्धकार मे सोये जीवों को इस भव मे तत्त्वोपदेश रूप सूर्य के द्वारा ज्ञान मार्ग बताने वाले गुरु हैं। इस कारण अपनी मति कल्पना से किये गये कष्टकारक उपायों का त्याग कर गुरु के उपदेश के अनुसार साधक को तत्वाभ्यास में प्रीति करनी चाहिये। इस तरह साध्य की सिद्धि के लिये तत्त्वदर्शक गुरु के उपकार की स्मृति और अरिहंत परमात्मा के पवित्र नाम का निरन्तर स्मरण बराबर चालू रखना, साधक के लिये आवश्यक है।

श्री नमस्कार महामंत्र एक प्रकार की बिजली है अथवा वाष्प है, एक प्रकार की अग्नि है अथवा जल है। बिजली से जिस प्रकार प्रकाश होता है उसी प्रकार श्रीनमस्कार महामंत्र के ध्यान से आत्म प्रकाश होता है। वाष्प से जिस प्रकार यंत्र चलता है उसी तरह श्रीनमस्कार महामंत्र के जाप से जीवनयंत्र व्यवस्थित रूप से चलता है। अग्नि से जैसे ईंधन जलता है, वैसे श्रीनमस्कार महामंत्र के स्मरणरूपी अग्नि से पापरूपी ईंधन जलता है। जल से जैसे मैल दूर होता है वैसे श्रीनमस्कार महामंत्र के आराधनारूपी जल से कर्ममैल धुलता है।

जाप किस तरह किया जाय ?

जाप के तीन प्रकार हैं। (१) भाष्य (२) उपांशु और (३) मानस। ये तीनो उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है। अर्थात् भाष्य से उपांशु और उपांशु से मानस जाप का फल बहुत अधिक है। इतना होने पर भी जाप की शुरूआत तो भाष्य से ही करना उत्तम है। जो भाष्य जाप के अभ्यास के विना उपांशु जाप का आश्रय लेते है या उपांशु जाप के अभ्यास बिना सीधा मानस जाप का आश्रय लेते है, उन्हे जाप सिद्धि नही होती। कदाचित् किसी महापुरुष को पूर्व जन्म के सस्कारो के बल से इस क्रम का आश्रय लिये विना सिद्धि हो भी जाय, तव भी उसे राजमार्ग नही मानना चाहिये। भाष्य और उपांशु जाप का अभ्यास होने के बाद मानस जाप करना लाभदायक है।

भाष्य, उपांशु और मानस आदि जाप के लक्षण

"यस्तु परै. श्रूयते स भाष्यः।" जिसे दूसरे सुन सकें वह भाष्य, अर्थात् होठ हिलाकर स्पष्ट उच्चारण रूप वैखरी वाणी से मन्त्र का जाप करना, उसे भाष्य जाप कहा जाता है। यह जाप मधुर स्वर से ध्वनि-श्रवण-पूर्वक बोलकर करना। भाष्य जाप से चित्त नीरव शान्त बनता है। यह जाप वचन-प्रधान है। इसे वाचिक जाप भी कहा जाता है।

यह जाप भली प्रकार सिद्ध करने के बाद मध्यमा वाणी से जाप किया जाय, उसे 'उपांशु' कहा जाता है।

'उपांशुस्तु परैरश्रूयमाणोऽन्तर्जल्परूपः'

'दूसरे न सुन सकें ऐसा परन्तु अन्दर से रटण रूप हो वह उपांशु'। इसमे होठ, जीभ आदि का व्यापार तो चालू रहता है, परन्तु प्रकट आवाज नही होती। इस जाप मे वचन की निवृत्ति होती है। काया की प्रवृत्ति इसमे प्रधान होती है।

इस जाप की सिद्धि के बाद हृदय गता 'पश्यती' वाणी से जाप करना उसे 'मानस' जाप कहा जाता है।

मानसो मनोमात्रवृत्तिनिर्वृत्तः स्वसंवेद्यः'

"मानस जाप उसे कहा जाता है जो मात्र मन की वृत्तियों द्वारा ही होता है और साधक स्वय उसका अनुभव कर सकता है" इस जाप मे काया की और वचन की प्रवृत्ति निवृत्त होती है अर्थात् होठ आदि अवयवों का हलन, चलन और उच्चारण सर्वथा रुक जाता है। जाप करते समय दृष्टि को प्रतिमा, मन्त्राक्षरो, अथवा नासिका के अग्रभाग पर स्थिर रखना। यदि ऐसा न हो सके, तो नेत्र बन्द कर कल्पना से अक्षरो को लक्ष्य मे रख जाप करना। मानस जाप अच्छी तरह सिद्ध होने पर नाभिगता 'परा' वाणी से जाप किया जाय उसे 'अजपा' जाप कहते है। दृढ अभ्यास होने से इस जाप मे चिन्तन विना भी मन मे निरन्तर महामन्त्र का रटण होता रहता है। जब उपयोग न हो, तब भी श्वासोच्छ्वास की तरह यह जाप चालू रहता है। जैसे कोई आदमी चार बजे उठने का दृढ सकल्प करके सो जाता है, तो उस सकल्प बल से ही चार बजे उठता है, ऐसा अजपा जाप चालू रहता है और बराबर चार बजे उठ सकता है; वैसे अजपा जाप भी दृढ संकल्प और दीर्घ अभ्यास से सिद्ध हो सकता है। इसे

स्थिति में बिना प्रयत्न के भी 'अखण्ड जाप' चालू रहता है और उससे शरीर के रोम रोम मे इष्ट देव का स्मरण चालू रहता है। इस प्रकार के जाप से साधक को अनिर्वचनीय सुख का अनुभव होता है।

नवकार का प्रत्येक अक्षर मन्त्र-स्वरूप है

नवकार के पाच अथवा नव पदो को अनानुपूर्वी से भी चित्त की एकाग्रता के लिये गिना जाता है। नवकार का एक एक अक्षर अथवा एक एक पद का जाप भी बहुत फल को देने वाला है। योग शास्त्र के आठवे प्रकाश मे कहा है कि पंच परमेष्ठि के नाम से उत्पन्न हुई सोलह अक्षर की विद्या है, उसका दो सौ बार जाप करने से उपवास का फल होता है। 'अरिहंत सिद्ध आयरिय उवज्झाय साहू' ये सोलह अक्षर जानना। इसी प्रकार भव्य जीव 'अरिहंत सिद्ध' इन छ. अक्षर के मत्र को तीन सौ बार, 'अरिहंत' इन चार अक्षर के मन्त्र की चार सौ बार और अरिहन्त के आदि अक्षर 'अ' वर्ण रूप मंत्र को पाच सौ बार चित्त की एकाग्रता से गिने तो उपवास का फल मिलता है।

नवकार के वर्णो के जाप का मात्र इतना ही फल नही है, परमार्थ से तो नवकार के जाप का फल स्वर्ग और मोक्ष है। फिर भी यहा जो सामान्य फल बताया गया है, वह जीव को नवकार के जाप मे प्रवृत्ति कराने के उद्देश्य से बताया गया है।

उपरान्त कहा है कि नाभि कमल मे सर्वतोमुखी 'अ' कार शिरः कमल मे 'सि' कार मुख कमल मे 'आ' कार, हृदय कमल मे 'उ' कार और कंठ कमल मे 'सा' कार रहा हुआ

है ऐसा सोच कर ध्यान करना चाहिए तथा दूसरे भी सर्व कल्याण करने वाले मन्त्र बीज का चिंतवन करना। इस लोक के फल की इच्छा करने वालों को 'ॐ' कार सहित पाठ करना और निर्वाण की इच्छा करने वालों को ॐकार रहित पाठ करना। इस तरह चित्त की स्थिरता के लिए इस मन्त्र के वर्ण और पदों को अनुक्रम से अलग करके भी जाप किया जाता है। श्री महानिशीथ सूत्र में इस मन्त्र को अनन्त गम-पर्याय और अर्थ का प्रसाधक तथा सर्व महामन्त्र और प्रवर विद्याओं का उत्कृष्ट बीज स्वरूप बताया है। इस मन्त्र का जाप आत्मा के लिये सब तरह से हितकारक है। जाप करते करते थकावट हो जाय तो 'ध्यान' करना और ध्यान करते करते थकावट आ जाय तो 'जाप' करना तथा दोनों से थकावट हो जाय तो स्तोत्र बोलना। शास्त्रों में जाप आदि का बहुत फल बताया है। जैसे करोड़ पूजा के बराबर एक स्तोत्र है, करोड़ स्तोत्र के बराबर एक जाप है, करोड़ जाप के बराबर एक ध्यान है, और करोड़ ध्यान के बराबर एक लय है। लय अर्थात् चित्त की लीनता, एकाग्रता, स्थिरता, या स्वरूप में रमणता, जो कि ध्यान की सर्वोत्तम अवस्था है।

जाप के पांच प्रकार

शास्त्र मे जाप के पांच प्रकार बताये है जिनके विषय में बताया है कि

शाब्दाज्जापान्मौनस्तस्मात् सार्थस्ततोऽपि चित्तस्थः ।
श्रेयानिह यदिवात्मध्येयैक्यं जापसर्वस्वम् ॥

शब्द जाप के बजाय मौन जाप अच्छा है। मौन जाप के बजाय सार्थ जाप अच्छा है। सार्थ जाप से चित्तस्थ जाप अच्छा है और चित्तस्थ जाप के बजाय ध्येयैक्य जाप अच्छा है क्योकि वह जाप का सर्वस्व है ।

(१-२) शब्द जाप अर्थात् भाष्य या वाचिक जाप और मौन जाप अर्थात् उपांशु जाप। इन दोनो का वर्णन पहले आ गया है ।

(३) **सार्थ जाप** अर्थात् अर्थ सहित जाप। अर्थ को ध्यान में रखकर जाप करना। अर्थ की विचारणा नीचे लिखे माफिक हो सकती है, जैसे

नमो अरिहंताणं पद बोलते ही अपने मन मे समवसरण मे बैठे, चतुर्मुख से मालकोश राग मे बारह पर्षदा के सामने मेघ ध्वनि सदृश गंभीर घोष से देशना देते हुए श्री अरिहंत भगवान् का चित्र खड़ा हो जाय, तो उसे सार्थ जाप कहा जा सकता है ।

बहुत से मनुष्यों को अर्थ का ज्ञान नहीं होता, इसलिए वे अपनी दृष्टि के समक्ष वाच्य पदार्थों का खयाल नही ला सकते और इसलिये ध्येय मे जैसी तन्मयता होनी चाहिये वह नही होती, यदि तन्मयता बराबर हो तो अपूर्व आनन्द प्राप्त हो ऐसा नियम है, इसलिये महामत्र की साधना करने वाले को नमस्कार का अर्थ बराबर जान लेने का प्रयास करना जरूरी है और इसलिए अलग-अलग अनेक दृष्टि से इस पुस्तक मे अनेक जगह नमस्कार महामन्त्र का अर्थ और भावार्थ समझाने का प्रयत्न किया गया है।

नमो सिद्धाणं पद बोलते ही लोक के अग्र भाग पर की शुद्ध स्फटिक समान पैंतालीस लाख योजना की सिद्धशिला और उस पर विराजमान हुए निरजन, निराकार, वीतराग, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, पूर्ण सुखी, सर्व शक्तिमन्त ऐसे अनन्त सिद्ध भगवतो का खयाल स्पष्ट हो जाना चाहिए।

नमो आयरियाणं पद बोलते ही महान् आचार्य जो कि प्रभु शासन के नायक है, पचाचार से विभूषित है और शिष्यो से भी पचाचार का पालन करा रहे हैं यह चित्र खड़ा हो जाना चाहिये।

नमो उवज्झायाणं पद बोलते ही श्रुत के पारगामी उपाध्यायजी महाराज साधुओ को सूत्र सिद्धात की वाचना दे रहे हैं, इस प्रकार का चित्र मन मे खड़ा होना चाहिये।

नमो लोए सव्वसाहूणं पद बोलते ही शात, दात, धीर, गम्भीर, क्रिया-तत्पर, स्व-पर-कल्याण की साधना करने वाले साधु महात्माओ का चित्र मन मे स्पष्ट हो जाना चाहिये।

एसो पंचनमुक्कारो इत्यादि चूलिका के पद पर बोलते हो, इन पाच नमस्कार से मेरे पापों का नाश हो रहा है, मुझे उत्कृष्ट मंगल की प्राप्ति हो रही है, ऐसा खयाल मन में स्पष्ट अंकित हो जाना चाहिये। इस प्रकार यदि जाप हो, तो चित्त की चचलता कम हो कर, एकाग्रता बढ़ेगी और उससे आनन्द की भी वृद्धि होगी।

(४) चित्तस्थ जाप चित्तस्थ जाप अर्थात् मानस जाप। इस जाप मे एकाग्रता बहुत चाहिये। जिनका मन इधर उधर घूमता रहता है, वे यह जाप नही कर सकते। मन बन्दर के समान है और वह चारो तरफ दौड़ता रहता है यह बात सत्य है, परन्तु अभ्यास से उसे ठिकाने लाया जा सकता है। कहा है कि

'अभ्यासेन स्थिरं चित्तं, अभ्यासेनानिल-च्युतिः।
अभ्यासेन परानन्दो, अभ्यासेनात्मदर्शनम्॥

अभ्यास से चित्त स्थिर होता है, अभ्यास से वायु को (प्राण को) काबू मे रखा जा सकता है अभ्यास से परमानन्द की प्राप्ति हो सकती है और अभ्यास से आत्म-दर्शन हो सकता है।

वाग्योग से मनोयोग की अधिक विशेषता है। इसलिये मौन जाप श्रेष्ठ है। महान् पुरुषों ने स्तोत्र के बजाय जाप को कोटि गुणा अधिक लाभदायक बताया है। योग जनित प्रातिभ (अनुभव) ज्ञान के बल से यह बात उन्होने निश्चित की है। जाप मे आभ्यंतर परिणाम की वृद्धि विशेष होती है। जाप को

ध्यान की भूमिका भी माना गया है। ध्यान पर पुनः आरूढ़ होने के लिये भी यह बहुत उपयोगी होता है।

(५) **ध्येयैक्य जाप** ध्येयैक्य जाप अर्थात् आत्मा और परमात्मा की ऐक्यता। आत्मा ध्याता है, परमात्मा या परमेष्ठी ध्येय है। दोनों के मध्य की यह भेद रेखा मिट जाय अर्थात् जपने वाला ध्याता ध्येय-रूप परमेष्ठि के साथ एकमेक बन जाय, तब यह जाप सिद्ध हुआ कहा जाता है। जाप का अंतिम रहस्य यही है, इसलिये इसे जाप का सर्वस्व कहा जाता है।

यान्त्रिक साधनों के द्वारा आकाश में उड़ने की या पृथ्वी के पैंदे में बैठने की शक्ति को प्राप्त करना, यह मानव मन को कभी राहत देनेवाली नहीं है, बल्कि अधिक अशांत बनानेवाली है। अशांत मनवाला मनुष्य यहां रहे या अन्य स्थान पर जाय दोनों बराबर है। मानव जीवन में धन, वैभव या सत्ता ये कोई महत्त्व की वस्तु नहीं हैं, किन्तु अपने मन को जीतना यही परम पुरुषार्थ है। इस पुरुषार्थ की सिद्धि मन को स्वाधीन करने से होती है। मन वश करने का सर्वोत्तम साधन महामंत्र नवकार है।

जाप के तेरह प्रकार

महामन्त्र की साधना मे मुख्य वस्तु जाप है, इसलिये कहा है कि जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धि-र्न संशयः जप से सिद्धि होती है। इसमें जरा भी सशय नही। यह शास्त्र वचन है। इसलिये इस जाप की विविध प्रकार की जानकारी हो, तो भिन्न-भिन्न प्रकृतिवाले जीव अपनी २ भूमिका के अनुसार जाप का जो प्रकार अपने लिये ठीक हो, उसे जानकर उसके द्वारा अपनी प्रगति कर सकते हैं। इसलिये जाप के विशेष प्रकार यहां बतलाये जाते है।

अपेक्षा विशेष से शास्त्र मे जाप के तेरह प्रकार भी माने गये है। वे इस प्रकार हैं।

रेचकपूरककुम्भाः, गुणत्रयं स्थिरकृति-स्मृती हक्का।
नादो ध्यानं ध्येयैकत्वं तत्वं च जपभेदाः ॥

(१) रेचक (२) पूरक (३) कुम्भक (४) सात्विक (५) राजसिक (६) तामसिक (७) स्थिरकृति (८) स्मृति (९) हक्का (१०) नाद (११) ध्यान (१२) ध्येयैक्य और (१३) तत्व, ये जाप के तेरह भेद है।

(१) रेचक जाप शरीर से भीतर के वायु को नाक द्वारा बाहर निकालते हुए जो जाप किया जाय, वह रेचक जाप।

(२) पूरक जाप वायु को नाक द्वारा शरीर मे लेजाते हुए जो जाप किया जाय, वह पूरक जाप ।

(३) कुम्भक जाप वायु को शरीर मे स्थिर करते हुए जो जाप किया जाय, वह कुम्भक जाप ।

(४) सात्विक जाप शान्ति कर्म के लिये किया गया जाप सात्विक जाप ।

(५) राजसिक जाप राजसिक कार्य के लिये किया गया जाप राजसिक जाप ।

(६) तामसिक जाप तामसिक कामो के लिये किया गया जाप तामसिक जाप ।

राजसिक व तामसिक जाप मुमुक्षुओ के करने के लिये नही है ।

(७) स्थिर-कृति जाप चाहे जैसे विघ्न सामने आवें, फिर भी स्थिरता पूर्वक जाप किया जाय, वह स्थिर-कृति जाप ।

(८) स्मृति जाप दृष्टि को नाक के अग्र भाग पर अर्थात् आखो की दोनो भौहो के बीच के स्थान पर स्थिर कर मत्र का मन से रटण करने मे आवे, वह स्मृति जाप ।

(९) हक्का जाप जिस मंत्र के अत्यपद क्षोभ कारक हों, उसका जाप करना, वह हक्का जाप । अथवा जिसमे श्वास लेते और निकालते समय हकार का विलक्षणता पूर्वक उच्चारण करते रहना, वह हक्का जाप ।

(१०) **नाद जाप** जाप करते समय मन मे भ्रमर की तरह गुंजन की आवाज हो, वह नाद जाप।

(११) **ध्यान जाप** मंत्र पदो का वर्णादि-पूर्वक ध्यान करना, वह ध्यान जाप।

(१२) **ध्येयैक्य जाप** ध्याता और ध्येय की ऐक्यता। इसका वर्णन पहले आ गया है।

(१३) **तत्त्व जाप** पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पांच तत्त्व है। इनके अनुसार जाप करना, वह तत्त्व जाप।

जाप के इस प्रकार मे ध्यानयोग और स्वरोदय दोनो का समावेश हो जाता है।

श्री नमस्कार महामत्र आध्यात्मिक अनुभवो की चावी है। सब साधनो की चावियो की जादू की पेटी भी इसे कहा जा सकता है।

× × ×

आराधना के बाद ही यह सत्य समझ मे आता है कि श्री पच परमेष्ठी मात्र काल्पनिक भावना नही है, परन्तु ऊँची भूमिका मे रहा हुआ एक परम सत्य है

श्री परमेष्ठियों के स्मरण का महत्त्व

जाप द्वारा परमेष्ठियों का स्मरण अपने अतरात्मा मे जैसे-जैसे बढता जाता है, वैसे-वैसे आनन्द बढता जाता है। मुझे प्रेम है, ऐसा कहने मात्र से प्रेम होना नही माना जाता। सोते, उठते, बैठते, चलते, फिरते वही वस्तु याद आवे, उसी का स्मरण हुआ करे, उसके बिना चैन नही पड़े, तब समझना कि अपने हृदय मे जाप प्रेम जगा है।

श्रीपाल महाराज को आपत्ति और संपत्ति दोनो मे सर्वत्र अरिहत परमात्मा का स्मरण होता रहता था। दुष्ट विचार से धवल सेठ ने जब उन्हे समुद्र मे गिराया, तब भी उनके मुंह से "नमो अरिहंताणं" पद निकला। जब वे नाटक देख रहे थे, तब भी वे अरिहंत का स्मरण कर रहे थे। उत्तम पुरुषो के अत.करण मे इस प्रकार परमात्मा का स्मरण निरंतर चालू ही रहता है।

परदेश गमन के समय मयणासुन्दरी ने भी श्रीपाल महाराज को यही कहा था कि अरिहतादि को एक क्षण भी कभी मत भूलना, क्योंकि परमात्मा को न भूलना और उनका सदैव स्मरण करना ही सर्व सपत्ति का अमोघ बीज है, ऐसी दृढ़ श्रद्धा मयणासुन्दरी के हृदय मे थी। जब हृदय मे परमात्मा आते हैं, तब सब कार्यों की सिद्धि अवश्य होती है। ऐसा शास्त्र

का वचन है। विपत्ति सच्ची विपत्ति नही है, परन्तु परमात्मा को भूल जाना यही विपत्ति है। इसी तरह सम्पत्ति सच्ची सम्पत्ति नही, परन्तु परमात्मा को न भूलना और उनका सदैव स्मरण करना, यही सच्ची सम्पत्ति है।

परमात्मा का स्मरण आत्मा को कितना लाभदायक है और परमेष्ठि स्मरण कैसा होना चाहिये, इस सम्बन्ध में अनुभवियो के निम्न उद्गार यहां विचार करने योग्य हैं। वे कहते है कि.

"सहज स्थिति प्राप्त करने का मार्ग परमात्मा का स्मरण है। इसलिये अब मैं श्वासोच्छ्वास मे परमात्मा का ही स्मरण करूंगा, जिससे एक दिन अवश्य परमात्मा की प्राप्ति होगी।"

"परमात्मा का स्मरण करने से सुख यानि निज स्वरूपानन्द की प्राप्ति होती है और दुख यानि जन्म, जरा, मरण का नाश होता है। परमात्मा को स्मरण करने वाला अन्त में परमात्मा बन जाता है।"

"जिस प्रकार पनिहारी रास्ते मे हिलती, चलती, डोलती तथा अन्य बहिनो के साथ बात करती हुई भी सिर पर रखी मटकी को नही भूलती, उसी तरह विवेकी पुरुष को भी परमात्मा के स्मरण मे अपनी सूरता (अपने उपयोग) को निरन्तर जागृत रखना चाहिये।"

"जिस प्रकार पतंगिया दीये के प्रेम मे आसक्त होकर क्षण मे अपने प्राण त्याग देता है और अपने शरीर का मोह नही

करता, उसी प्रकार मुमुक्षुओं को अपने मन को परमात्मा के स्मरण मे लगाने मे जरा भी नही हिचकिचाना चाहिये।"

"हे, आत्मा! तू अपनी सूरता भगवत्-स्मरण में लगादे फिर तेरे में संसार का कोई भी अवगुण प्रवेश नही कर सकेगा, अर्थात् तेरी वृत्ति ससार में तल्लीन नही होगी।"

"हे पुरुष! तू परमात्मा का स्मरण करने मे जरा भी आलस्य मत करना! जितना स्मरण करेगा, उतना ही लाभ होगा। प्रभु स्मरण से सारी दुनियाँ तेरी सेवा करेगी और शरीर छूटने पर तू अमरापुरी मे जायगा।"

"भगवान् का स्मरण करने मात्र से भव्य जीवों के अनादि ससार से उत्पन्न हुए समस्त दुखो का एक दम नाश हो जाता है।"

"हे जिन! अचिन्त्य महिमा वाला आपका स्तवन तो दूर रहा, परन्तु आपका नाम स्मरण ही तीनो जगत् की रक्षा करता है।"

"हे प्रभो! आपकी आकृति को हृदय मे धारण करने से दूसरा कोई रूप हृदय मे स्फुरायमान नही होता। तुम्हारे रूप का स्मरण होते ही पृथ्वी मे दूसरे किसी रूप की प्रसिद्धि नही होती। इसलिये "तू सो ही मैं" ऐसी अभेद बुद्धि के उदय से "युष्मद् अस्मद्" पद का उल्लेख भी नही होता। कोई अगोचर परम चैतन्यमय ज्योति अन्तर में स्फुरायमान होती है।"

भ्रमरी के ध्यान से इलिका जिस तरह भ्रमरी हो जाती है, उसी तरह परमात्मा का सतत स्मरण और ध्यान करने से आत्मा परमात्मा बन जाती है।

महापुरुषों का कथन है कि परमात्मा का स्मरण कीर्तन करने से करोडो तप का फल मिलता है, सब कामनाएँ सिद्ध होती है, अन्तःकरण शुद्ध और जन्म सफल होता है, कष्ट और विघ्न दूर होते है, मगल और कल्याण की परम्परा मिलती है, महिमा और आदर की वृद्धि होती है, प्रत्येक स्थान पर सुयश और महोदय होता है। दुर्जनो का चितन किया काम निष्फल होता है। यश, कीर्ति और बहुमान बढता है, आनन्द, सुख, लीला और लक्ष्मी प्राप्त होती है, भवजल-तरण, शिवसुख-मिलन और आत्मोद्धाकरण सुलभ होता है। दुर्गति के द्वारो की रुकावट और सद्गति के द्वारो का उद्घाटन होता है।

इसीलिये परमात्मा का स्मरण परम निधान है, अमृत का कुम्भ है, रात दिन करने योग्य है, क्षण भर भी भूलने लायक नही है। स्मरण करने वाले को नव निधान प्राप्त होते है, कल्पवृक्ष उसके आगन मे है, आठ महासिद्धिया घर मे हैं। परमेष्ठियो का स्मरण करने से बिना किसी प्रकार के शारीरिक कष्ट के भवजल से पार हो जाते है और अजरामरपद की प्राप्ति हस्तामलकवत् हो जाती है।

परमात्मा के स्मरण सम्बन्धी निम्न काव्य उपयोगी होने से यहा दिये जाते हैं।

"अरिहन्त अरिहन्त समरता, लाधे मुक्तिनु धाम;
जे नर अरिहन्त समरशे, तेहना सरशे काम;

सूता बेशता उठता, जे समरे अरिहन्त,
दुखीयाना दुख भागशे, लेशे सुख अनन्त
आग करो अरिहन्तनी, वीजी आश निराश;
जेम जगमा सुखीया थया, पाम्या लील विलास

*   *   *

पचम काले पामवो, दुल्लहो, प्रभु देदार,
तो पण तारा नामनो, छे मोटो आधार.

*   *   *

अरिहन्त देव सुसाधु गुरु, धर्म ज दया विशाल;
जपहु मन्त्र नवकार तुम, अवर म झखो आल.

*   *   *

निश दिन सूता जागता, हियडाथी न रहे दूर रे,
जव उपकार, सभारीये, तव उपजे आनन्द पूर रे

*   *   *

ताहरी गत तुही जाणे हो देव, स्मरण भजन
ते वाचक जश करेजी.

*   *   *

प्रभु प्रभु लय लागो नही, पडया न सद्गुरु पाय;
देख्या नही निज दोष तो, तरीये कौन उपाय

जब नवकार मन्त्र के स्मरण मे इतना रस आ जाय, तब समझना कि अब नवकार पर प्रेम जागृत हुआ है।

जाप करनेवाले साधक को ध्यान में रखने लायक बातें

जाप के लिये निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये ।

(१) निश्चित समय साधारणतया श्री नमस्कार महामंत्र के जाप के लिये ब्राह्म मुहूर्त (पिछली चार घडी रात्रि) और तीन सन्ध्या का निश्चित समय श्रेष्ठ है। तीन सन्ध्या इस प्रकार समझना। (१) सूर्य उदय के पूर्व की एक घड़ी और उदय के बाद की एक घड़ी (२) मध्याह्न पहले की एक घडी व पीछे की एक घडी (३) सूर्यास्त पहले की एक घडी व बाद की एक घड़ी (अथवा सूर्यास्त पीछे की दो घडी या सूर्योदय पहले की दो घडी भी सन्ध्या गिनी जाती है) जाप करने के लिए इन तीन संध्या के समय को उत्तम बताया है; परन्तु इसमे भी पहली सन्ध्या अधिक अच्छी है, क्योंकि उस समय वातावरण शान्त होता है और मस्तिष्क भी शान्त होता है। इसके सिवाय सूर्योदय से लेकर दश बजे तक और पिछली रात्रि का समय भी जाप के लिए अच्छा बताया गया है।

श्री नवकार मन्त्र का स्मरण जब २ अनुकूलता हो, तब २ बारम्बार करने का शास्त्र मे जो विधान है; वह इस प्रकार के जाप से शुभ संस्कारो की सतत जागृति रहती है, इस अपेक्षा से समझना। बारम्बार स्मरण से शुभ संस्कारो की जागृति

रहती है, यह सत्य है, फिर भी विशिष्ट आत्मशक्ति जागृत करने के लिए जाप की प्राथमिक भूमिका मे ऊपर बताये गये समय की मर्यादा का पालन करना आवश्यक है। प्राथमिक भूमिका मे जाप करने वाले को अमुक समय निश्चित कर लेना चाहिये। जाप की प्राथमिक शक्तियो के अनुभव के लिए समय को निश्चित रखना जरूरी है।

(२) **निश्चित आसन** श्री नवकार के जाप के लिए आसन श्वेत, शुद्ध ऊन का रखना। वस्त्र भी सफेद पहनना चाहिये और माला भी सफेद डोरे की गूथी हुई होनी चाहिये। श्वेत रग शुक्ल लेश्या का प्रतीक है। शुक्ल ध्यान के योग्य भूमिका के भाव को आकर्षित करने की शक्ति दूसरे रगो की अपेक्षा इसमे अधिक है। प्रकाश के अधिक परमाणुओ को अपने प्रति आकर्षित करने का विशिष्ट गुण भी श्वेत रग मे है। पद्मासन आदि आसनो मे से जिस आसन से सुखपूर्वक लम्बे समय तक बैठा जा सके, उस अनुकूल आसन को निश्चित कर उस आसन से जाप करना।

शरीर और मन का आपस मे सम्बन्ध है। शरीर बर्तन के स्थान पर है और मन पानी के स्थान पर है, शरीर चचल होता है, तो उसकी असर मन पर होती है अर्थात् मन भी चचल हो जाता है। इसलिये साधना की शुरूआत मे आसन निश्चित करना ही चाहिए। आसन की स्थिरता का आधार भोजन की शुद्धि पर है। इसलिये साधक को अपनी प्रकृति के अनुकूल सात्त्विक और परिमित भोजन करना चाहिए। उणोदरी का पालन करना चाहिये। भारी, तला हुआ और मसालो से भरपूर पदार्थ नही लेना चाहिये। इसके सिवाय कम से कम संख्या का भोजन नही करना चाहिये।

शुभ भावनाओ से मन को शात कर दृष्टि को नासिका के अग्र भाग पर स्थापित करना चाहिये । सीधा बैठना चाहिये । ढीचण (घुटने) जमीन को स्पर्श करना चाहिये, करोड रज्जू (मेरुदण्ड) सरल होना चाहिये । होठ बन्द रखे, दात दात को न छुए इसका खयाल रखना चाहिये। जगह भी निश्चित रखना चाहिए। एक स्थान पर श्रीनवकार मत्र का जाप करने से उस जगह का वातावरण विशिष्ट कोटि का हो जाता है। वारवार स्थान वदलने से और कही भी इच्छा माफिक जाप करने से स्वस्थ वातावरण उत्पन्न नही होता और शक्ति भी इधर उधर विखर जाती है। इसलिये बिना किसी खास प्रयोजन व अत्यन्त जरूरी कारण के विना जाप का स्थान नहीं वदलना चाहिये । सयोगवश स्थान वदलना पड जाय, तव भी वैठने का आसन तो एक ही रखना चाहिये ।

(३) निश्चित दिशा जाप नियमित रूप से पवित्र और एकान्त स्थान मे, पूर्व या उत्तर दिशा के सामने वैठ कर, मकान के सव से नीचे के भाग मे करना अथवा जिन-मदिर मे भगवान् के सम्मुख करना । स्थान जितना पवित्र होता है, उतनी ही जाप मे विशेष तल्लीनता आती है। इस वारे मे सूरिपुरन्दर श्रीहरिभद्राचार्यजी ने योगविन्दु नामक ग्रन्थ-रत्न मे जो वर्णन किया है, वह अत्यत उपयोगी होने से यहा वतलाया जाता है ।

आचार्य श्री फरमाते हैं कि "धार्मिक पुरुषो का प्रधान लक्षण इष्ट देवता के मंत्र का जाप है । यह जाप इष्ट देव की स्तुति-रूप है । मत्र से जिस प्रकार सर्प-दश का विष दूर होता है, उसी तरह जाप से पाप-रूपी विष का नाश होता

है। यह जाप देवता के सन्मुख, जलाशय, नदी या द्रह के पास, अथवा फल-फूल से लदे हुए विशिष्ट वृक्षों वाले वगीचे के भीतर करना। माला से, अंगुली के पहर से, या हृदय कमल आदि विशिष्ट स्थान से मंत्र का जाप करना, जाप करते समय दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर अर्थात् दो भवों के मध्य भाग मे और चित्त मंत्रो के पदो पर एकाग्र करना।"

धूप और दीप से वातावरण शांत और शुद्ध रहता है। इसलिये यथासम्भव गृहस्थ साधक को गाय के शुद्ध घी के दीपक और दशांग जैसे उत्तम धूप की सामग्रीवाले स्थान को पसंद करना चाहिये।

(४) **निश्चित माला** श्रीनवकार मंत्र के जाप के लिये शुद्ध सूत की, असली स्फटिक की या शुद्ध चांदी की माला को अच्छी समझना।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव अनुसार जाप के फल की तारतम्यता होती है, इसलिये जाप मे उपयोगी वस्तुएँ अर्थात् माला आदि यदि शुद्ध हो, तो उल्लास की वृद्धि होती है। जाप हमेशा किसी खास माला से ही करना। जहां तक हो माला को बदलना नही चाहिये। माला को अपने हृदय की सम श्रेणी मे धारण करना चाहिये, और वह माला पहिने हुए वस्त्रो या पैर को स्पर्श नही करे, इसका खयाल रखना चाहिये, तथा मेरु का उल्लंघन नही करना चाहिये।

इस प्रकार करने से श्रीनवकार महामंत्र के वर्णों के जाप द्वारा आराधक की आत्मशक्ति नवकारवाली (माला) के मणिये में केन्द्रित होती है। अन्त मे कुछ समय बीतने के बाद

आत्मशक्ति के केंद्र समान बनी उस मणियों वाली माला के द्वारा जाप करने से आत्म शक्तियों का शीघ्र विकास होता है। प्रारम्भ मे कुछ दिन माला से जाप करना, पीछे नदावृत्त और शखावृत्त से गिनने का अभ्यास करना। नदावृत्त से बारह की सख्या सीधे (जीमणे) हाथ से गिनना और शखावृत्त से बांये हाथ से नौ की सख्या गिनना। इस प्रकार बारह की संख्या को नौ बार गिनने से १०८ की सख्या होगी।

बाये	हाथ	का	शखावृत्त	सीधे	हाथ	का	नदावृत्त
३	४	५	०	३	४	५	१२
२	९	६	०	२	७	६	११
१	८	७	०	१	८	९	१०

इसके अलावा जब समय मिले, तब जैसे बने वैसे समान साधना और समान विचारवाले अधिक साधकों के साथ मिल कर एक स्थान पर अधिक समय के लिये सहयोग से जाप की साधना करनी चाहिये, इससे जाप मे अधिक शक्ति उत्पन्न होती है।

(५) निश्चित संख्या जाप का जघन्य प्रमाण इतना निश्चित करना चाहिये कि जीवन के अंत तक उतनी संख्या से कम जाप कभी भी न हो। नियत प्रमाण से अधिक भले हो, परन्तु कम तो नही हो। निश्चित सख्या पर दृढ रहने से जाप करनेवाले की वृत्तिया जगत् के पदार्थों से पराङ्मुख होकर आत्माभिमुख बनती हैं। किसी भी सख्या की निश्चितता के विना अव्यवस्थित किया गया जाप शक्तियों को केन्द्रित करने

में समर्थ नही होता। निश्चित संख्या को कायम रखने से आंतरिक शक्तियों का विकास सरलता से हो सकता है। आधुनिक विज्ञान के कितने ही प्रयोगों से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि अमुक निश्चत की हुई जगह, अमुक निश्चित किया गया समय, और अमुक निश्चित की गई सख्या से धारा प्रवाह जाप करने से अमुक प्रकार का निश्चित वातावरण तैयार होता है और उसमे प्रवेश करने वाले खराब आचार-विचार वाले भी चमत्कारिक रीति से वातावरण के पवित्र सस्कारो से घड़ी भर के लिये उस वातावरण के रग से रंजित हो जाते हैं। यह है स्थान, समय और सख्या की निश्चितता की महिमा! यह है शब्द शक्ति के विद्युत् तरगो का प्रभाव! मोक्ष मे गये अनतानंत पुण्यात्माओ के आत्मबल के वाहकरूप श्रीनवकार महामत्र के वर्ण है, तथा प्रत्येक वर्ण दिव्य शक्ति के निधान है, अनादि सिद्ध है। इन अड़सठ वर्णो को समय, स्थान, दिशा और सख्या आदि को नियमिततापूर्वक गिनने मे बहुत लाभ है। जाप को प्राथमिक भूमिका मे उपर्युक्त बाते उपयोगी होने से आराधको को अपनी आत्म शक्ति के विकास के लिए उन्हे आदरपूर्वक अपनाना चाहिये।

जाप की यह बाह्य विधि है; उसके साथ 'यह जाप सर्व जीवो के भव ताप को शात करे' इस भावना की वृद्धि करने से साधक के अहं भाव का नाश होता है। अहकार का नाश होना, यही जाप का श्रेष्ठ फल है।



जाप में विशेष प्रगति के उपाय

जाप पहले नवकारवाली (माला) आदि के आलंबन से, शंखावृत्त, नंदावृत्त आदि से और बाद मे हृदय कमल मे नवकार के अक्षरों को धारणा से करना। अक्षरों की धारणा का अभ्यास करने की रीति इस प्रकार है।

अक्षर देखने की प्रथम रीति

महामन्त्रो के अक्षरो के साथ चित्त का मिलान हो, इसके लिये प्रारम्भ मे काले रंग पर सफेद अक्षरवाला छपा कार्ड सामने रखकर पढना। एक बार अडसठ अक्षर पढे जाएँ, तब एक जाप पूरा हुआ समझना। अक्षर पढते समय जो अक्षर पढे जावे, उन अक्षरो पर ही दृष्टि का उपयोग रखना, क्योंकि अपने को यह महामन्त्र बाल्यावस्था से ही प्राप्त हुआ होने से अति परिचित है। इसलिए दृष्टि का उपयोग 'न' पढते 'मो' पर, 'मो' पढते समय 'अ' पर और 'ता' पढ़ते समय 'ण' पर, इस प्रकार उपयोग और जाप का उच्चारण आगे पीछे हो जाना सम्भव है। ऐसा न होने पावे, इसके लिये छोटा बालक पढता हो उस प्रकार पढे जैसे

न मो अ रि ह ता ण। इस तरह अलग अलग पढना। धीरे धीरे अभ्यास बढने से शीघ्र पढते समय भी उच्चारण और दृष्टि का उपयोग साथ रहेगा। इस प्रकार

पढकर जाप का अभ्यास चालू रहने से थोड़े समय बाद आँखें बन्द करने पर भी अक्षर दिखाई देंगे। पीछे हृदय-रूपी कागज पर ध्यान-रूपी कलम से अपने नाम की तरह पञ्च परमेष्ठि के नाम को लिखते हो, वैसे एकाग्रता से जाप करना। यद्यपि प्रारम्भ में ऐसी एकाग्रता नही आवे, फिर भी ध्येय तो वही रखना, इससे दिन प्रतिदिन स्थिरता बढ़ती जायेगी।

अक्षर देखने की दूसरी रीति

ऊपर बताये गये तरीके से नियमित जाप करने के बाद नेत्रो को बन्द कर अक्षरो को दृष्टि के सामने लाने के लिए दूसरे भी प्रयोग है। जैसे नेत्र बन्द कर सामने एक काला पाटिया रखना, पीछे धारणा से ही हाथ मे चाक का टुकड़ा लेकर उस पर 'नमो' ऐसा कल्पना से लिखना। इस तरह लिखा हुआ दिखाई देगा। जब तक न दिखाई दे, तब तक बार बार इस तरह प्रयत्न करते रहना चाहिए। पीछे 'अरिहंताणं' लिखना। बार बार प्रयत्न करने से वह दिखाई देगा। इस प्रकार नौ पदों के लिए प्रयत्न करना। अक्षर देखने के लिए इस तरह का प्रयत्न हररोज थोडी देर करना और इस प्रयत्न के साथ साथ प्रथम रीति की तरह जाप भी चालू रखना।

अक्षर देखने की तीसरी रीति

सफेद हीरो के ढेर की कल्पना करना, पीछे आँखे बन्द कर कल्पना से उसमे से हीरे लेकर एक एक हीरे को क्रमशः रखते 'न' का आकार बनाना। इस प्रकार सब ही अक्षर कल्पना से बनाना। वे अक्षर सफेद हीरे जैसे चमकते

हुए दिखाई देंगे। इस तरह हर एक पद के अक्षर स्पष्ट दिखाई देना शुरू होने पर पीछे दूसरी आगे की रीतियां अनुकूल हो जाती है और साधना में शीघ्र विकास शुरू होने लगता है। अक्षर न भी दिखाई दे, तब भी उपर्युक्त जाप उपयोगी है, इससे एकाग्रता तो अवश्य ही बढ़ती है। इसलिये यह प्रयत्न तो चालू रखना ही चाहिये। इस प्रयत्न के साथ प्रथम रीति के अनुसार जाप भी चालू रखना।

भगवान् की प्रतिमा आखे बन्द करके देखी जा सके, इसके लिये भी प्रयत्न करना। अनुकूलता हो तो महा प्रभावशाली श्रीशंखेश्वरजी जैसे पवित्र तीर्थ मे जाकर अट्ठम या तीन आयंबिल कर प्रतिमा के समक्ष बैठ कर अभ्यास करना लाभप्रद है।

धारणा से मानसिक पूजा

तीन नवकार के २७ पदो से भगवान् की प्रतिमा की पूजा धारणा से दो बार नीचे लिखे क्रम से करना।

(१) सीधे पैर का अगूठा (२) बाये पैर का अंगूठा (३) सीधा (जीमणा) जानु (४) बाया जानु (५) सीधा काडु (६) बाया काडु (७) सीधा कन्धा (८) बाया कन्धा (९) सिर शिखा इनमे से हरएक स्थान पर एक-एक पद बोलने से एक नवकार पूरा होगा। पीछे (१०) भाल प्रदेश (११) कण्ठ (१२) हृदय (१३) नाभि कमल (१४) हथेली (१५) पुन. सीधे पैर का अगूठा (१६) बाये पैर का अगूठा (१७) सीधा जानु (१८) बाया जानु, इनमे से प्रत्येक स्थान पर एक-एक पद बोलने से दूसरा नवकार पूरा होगा और वहा से नाभि

तक हरएक स्थान पर एक-एक पद गिनने से तीसरा नवकार पूरा होगा। इस तरह दर्शन, पूजन आदि करते समय, धारणा से प्रतिमा की कल्पना कर तीन नवकार गिनना। इससे एकाग्रता मे प्रगति होगी। चित्त की एकाग्रता के अभ्यास के लिये यहा तो मात्र 'दिक्सूचन' किया गया है। तात्पर्य यह है कि जिस तरह साधक की चित्तवृत्ति परमेष्ठियो के ध्यान मे एकाग्र हो, उसी तरह इस प्रकार के दूसरे भी आवश्यक प्रयत्न करने मे प्रयत्नशील रहा जा सकता है।

कहा है कि 'अभ्यासः कर्मणां कौशलमावहति' अर्थात् अभ्यास से कार्य मे कुशलता प्रकट होती है। जिस बालक को एक पहाड़ा याद करने मे महिनों व्यतीत हो जाते वह भी अभ्यास से समर्थ विद्वान् हो जाता है, ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं। इसी तरह प्रारम्भ मे कठिन मालूम होने वाला जाप भी उसका सतत अभ्यास करने पर सरल बन जाता है, इसलिये साधक को जाप मे प्रगति लाने के लिये सतत अभ्यास चालू रखना चाहिये।

जैसे तिल मे तेल, कमल मे मकरद, और समस्त लोक मे पचास्तिकाय स्थित है, उसी तरह सब आगमो मे पच मगल महाश्रुतस्कध (नवकार) रहा हुआ है।

ध्यान करने वाले के लक्षण

पहले प्रयोजनभूत ज्ञान के प्रकरण मे बतलाया गया है कि साधक को योग्य गुणो का चिंतन करना चाहिये' वे गुण अब यहाँ कहे जाते है।

अमुञ्चन् प्राणनाशेऽपि, संयमैकधुरीणताम् ।
परमप्यात्मवत्पश्यन्, स्वस्वरूपापरिच्युतः ॥१॥

प्राण का नाश हो जाय फिर भी सदाचार मे अग्रेसरपना नही छोडने वाला, दूसरे जीवों को भी अपनी आत्मा की तरह देखने वाला, अपने स्वरूप से पीछे न हटने वाला।

उपतापमसंप्राप्तः, शीतवातातपादिभिः ।
पिपासुरमरीकारि योगामृतरसायनम् ॥२॥

ठंड, गर्मी, और वायु आदि से दुखी न होने वाला और अजरामर दशा को देने वाला ऐसा योग रूपी अमृत रसायन पीने का इच्छुक।

रागादिभिरनाक्रान्तं, क्रोधादिभिरदूषितम् ।
आत्मारामं मनः कुर्वन्, निर्लेपः सर्वकर्मसु ॥३॥

राग द्वेपादि से नही दवा हुआ, क्रोध, मान, माया और लोभादि से अदूषित ऐसे अपने मन को आत्मानंद में लगाने वाला तथा सर्व कामो मे निर्लेप रहने वाला।

विरतः काम भोगेभ्यः, स्वशरीरेऽपि निस्पृहः ।
संवेजह्रदनिर्मग्नः, सर्वत्र समतां श्रयन् ॥४॥

काम भोग से विरक्त, अपने शरीर के प्रति भी निस्पृह, संवेगरूप द्रह मे मग्न, शत्रु और मित्र, स्वर्ण और पत्थर, निंदा और स्तुति आदि सर्व विषयो में समभाव रखने वाला।

नरेन्द्रे वा दरिद्रे वा, तुल्यकल्याणकामनः ।
अमात्रकरुणापात्रं, भवसौख्यपराङ्मुखः ॥५॥

राजा हो या रंक हो, दोनो के कल्याण का इच्छुक, सर्व जीवो पर करुणा करने वाला और संसार के सुखो से पराङ्मुख ।

सुमेरुरिव निष्कम्पः, शशीवानन्ददायकः ।
समीर इव निःसंगः, सुधीर्ध्याता प्रशस्यते ॥६॥

मेरु पर्वत की तरह (उपसर्ग-परिषहादि से) अडोल, चंद्रमा की तरह आनन्ददायक और वायु की तरह निःसग (अप्रतिवद्ध) ऐसा वुद्धिमान् ध्याता ध्यान करने के लिये लायक है।

इनके सिवाय अनुभवियों की नीचे की हित शिक्षा भी महामंत्र के साधक के लिए उपयोगी है।

दक्षो जितेन्द्रियो धीमान्, कोपानलजलोपमः ।
सत्यवादी विलोभश्च, मायामदविवर्जितः ॥१॥
मानत्यागी दयायुक्तः, परनारीसहोदरः ।
जिनेन्द्रगुरुभक्तश्च, मंत्रग्राही भवेन्नरः ॥२॥

मंत्र को गुरु के पास से ग्रहण कर उसका ध्यान करने वाला मनुष्य चतुर, इंद्रियों को जीतनेवाला, वुद्धिमान्, कोप रूपी अग्नि के लिये जल समान, अर्थात् हर स्थिति मे

शान्ति रखने वाला, सत्यवादी, निर्लोभी, माया और मद से रहित अहकार का त्याग करने वाला, दयावान्, पर स्त्री को बहिन समान समझने वाला अर्थात् उसके सामने कभी भी विकार की दृष्टि से नही देखने वाला और श्री जिनेश्वरदेव तथा गुरु के प्रति परम भक्ति रखने वाला, होना चाहिये।

और भी एक जगह कहा है कि

शुचिः प्रसन्नो गुरुदेवभक्तो,
दृढव्रतः सत्यदयासमेतः ।
दक्षः पटुर्बीजपदावधारी,
मन्त्री भवेदीदृश एव लोके ॥

वाह्य और आभ्यन्तर पवित्रता वाला, सौम्य चित्त वाला, गुरु और देव का भक्त, लिये व्रत मे अति दृढ, सत्यवान्, दयावान्, चतुर, वुद्धिशाली और मन्त्र तथा पदो को धारण करने वाला, ऐसा पुरुष जगत् मे मन्त्र साधक होता है।

परमेष्ठि ध्यान माला मे भी परमेष्ठि मन्त्र की साधना करने वाले साधक मे कैसे गुण होने चाहिये, इस बारे मे बताया है कि

शांत दांत गुणवंत, संतन सेवाकारी,
वारित विषय कषाय, ज्ञान दर्शन सुविचारी ॥१॥
स्याद्वाद रसरंग, हंसपरि शमरस झीले,
शुभ परिणाम निमित्त, अशुभ सविकर्मने छोले ॥२॥
तादृश नर परमेष्ठि पद-साधनना कारण लहे,
शाह शामजी सुतरत्न, नेमिदास इण पर कहे ॥३॥

जो शान्त हो, दांत अर्थात् इन्द्रियों को जीतने वाला हो, गुणवन्त अर्थात् अहिंसा, सत्य, दया, क्षमा, मैत्री, कृतज्ञता, परोपकार आदि गुणों को धारण करने वाला हो, सन्त पुरुषों की सेवा करने वाला हो, जिसने विषय और कषाय को जीत लिया हो, जो ज्ञान और दर्शन का आराधक हो, हर काम पूरी तरह विचार कर करने वाला हो, जो स्याद्वाद अर्थात् अनेकान्तवाद के रंग में रंगा हुआ हो, और हंस की तरह समरस में निमग्न हो, जो शुभ परिणाम निमित्तों की शोध करने वाला हो और सभी अशुभ कर्मों को छोड़ने वाला हो, वही पुरुष पंच परमेष्ठि की साधना-आराधना अच्छी तरह कर सकता है।

साधना की प्रारम्भिक अवस्था में साधकों में इन सब गुणों का होना सम्भव नहीं और साधना की शुरुआत में ही शास्त्रकार सब के लिये ऐसा आग्रह भी नहीं करते, क्योंकि ऊपर जो लक्षण बताये गये हैं, वे सम्पूर्ण लक्षण यदि जीवन में प्रकट हुए हों, तो फिर ध्यान करने की जरूरत ही नहीं होती। इसलिये तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त गुणों को प्राप्त करने का ध्येय प्रत्येक साधक को होना चाहिये। निश्चित दृष्टि को हृदय समक्ष रखकर शक्ति के अनुसार शक्य कार्यों में यदि शुभ प्रवृत्ति होती है, तो वह अवश्य फलदायक होती है। पूर्णता को लक्ष्य में रखकर जो कोई सत्प्रवृत्ति होती है, वह बीज में से फूटे हुए अंकुर के स्थान पर है। बीज के भीतर वृक्ष होने की शक्ति को प्रकटाने का प्रारम्भ अंकुर फूटने से होता है। यह प्राथमिक अवस्था अंकुर रूप है और पूर्णता वृक्ष रूप है। साधक में ऊपर बताये सम्पूर्ण गुण न हों, परन्तु अंकुर

जितने गुण तो होने ही चाहिये। इतनी योग्यता प्राप्त होने के बाद अनुकूल हवा, पानी, वाड़ रक्षण, आदि की सहायता से जैसे अंकुर वृक्ष का रूप धारण करता है, उसी तरह अंकुर जितने गुण जीव मे प्रकट हो गये हो, तो फिर ध्यान आदि की मदद से वे गुण अनुक्रम से पूर्ण स्वरूप मे प्रकट हो सकते है अर्थात् प्राथमिक योग्यता के गुणो के बाद सरलता से आगे बढा जा सकता है।

सामान्यतया भिन्न भिन्न प्रकार की योग्यता वाले साधकों में साधना के योग्य गुणो का विकास निम्न क्रम से सम्भव हो सकता है

परिमित और सात्विक आहार करने वाले, दृढ़ मन वाले, अचपल आसन और स्थिर दृष्टि वाले साधक को प्रारम्भिक कक्षा के विद्यार्थी मे रख सकते है।

अपरोपतापी, (दूसरों को सन्ताप नही देने वाले) देवगुरु-भक्त, विनयवान्, ईर्ष्या-मात्सर्य-असूया-द्वेष आदि से पराङ्मुख, गुणानुरागी, सुशील और प्रसन्न मन वाले साधक को प्रारम्भिक कक्षा के आगे की कक्षा वाला कहा जा सकता है।

सब जीवों का हित चिन्तवन करने वाले, सब जीवों के साथ मैत्री भाव करने वाले और करुणारस मे निमग्न साधक को उत्तम गुण वाला कहा जा सकता है।

सर्व जीवों को आत्म स्वरूप के समान देखने वाले, सर्वत्र समता भाव को धारण करने वाले; तथा नरेन्द्र और दरिद्र

दोनो की समान भाव से कल्याण की भावना करने वाले साधक को उत्तमोत्तम माना जाता है। ऐसा गुणवान् साधक अचिंत्य महिमाशाली महामन्त्र की सम्पूर्ण साधना कर सकता है और साक्षात् अनुभव भी कर सकता है।

इस प्रकार क्रमशः सद्गुणो को प्राप्त करने का अभ्यास करने वाला प्रत्येक साधक अपने जीवन मे उत्तरोत्तर अधिक योग्यता पैदा कर सकता है। इसलिए सद्गुणो को जीवन में उतारने के लिये उपर्युक्त गुणो का हमेशा स्थिर बुद्धि से विचार करना चाहिये और जीवन मे उतारने का यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिये।

> श्री नवकार मंत्र मे अजब खूबी यह है कि जैसे-जैसे उसका स्मरण किया जाता है, वैसे-वैसे धर्म के प्रति अनुराग प्रकट होता जाता है, और अन्त मे मनुष्य सर्वथा धर्मपरायण बन जाता है। इस ससार मे ऐसी कोई वस्तु नही है जो भक्तियुक्त इस नवकार से जीवों को प्राप्त न हो।

साधक जीवन में अत्यन्त उपयोगी

श्रीवाचकजश की अनुभव वाणी

श्री महामंत्र के जाप-ध्यान आदि मे प्रगति की इच्छा करने वाले विवेकी साधक को श्रीवाचकजश की निम्न अनुभव वाणी को वरावर चिंतन-मनन पूर्वक लक्ष्य में रखकर उसमें वताये नियमो का यथाशक्ति पालन करने मे प्रयत्नशील रहना अत्यत हितकारी है।

निन्द्यो न कोऽपि लोकः, पापिष्ठेष्वपि भवस्थितिश्चिन्त्या।
पूज्या गुणगरिमाढ्या, धार्यो रागो गुणलवेष्वपि ॥१॥

किसी की निन्दा न करना, पापी के वारे मे भी भव स्थिति का चिंतन करना, गुण गौरव से पूर्ण ऐसे मनुष्यो की सेवा करना, थोडे गुणवान् के गुणो के प्रति भी गुणानुरागी वनना।

ग्राह्यं हितमपि वालादालापैर्दुर्जनस्य न द्वेष्यम्।
त्यक्तव्या च पराशा, पाशा इव संगमा ज्ञेयाः ॥२॥

वालक से भी हित वचन ग्रहण करना, दुर्जन के प्रलाप को सुन कर द्वेषभाव न करना, दूसरे की आशा का त्याग करना और सर्व संयोगो को वधन रूप जानना।

स्तुत्या स्मयो न कार्यः, कोपोऽपि च निन्दया जनैःकृतया।
सेव्या धर्माचार्यास्तत्वं जिज्ञासनीयं च ॥३॥

दूसरों के द्वारा की गई स्तुति से गर्व न करना और उनके द्वारा की गई निन्दा से क्रोध न करना, धर्मगुरुओं की सेवा करना, तत्त्व को जानने की इच्छा करना।

शौचं स्थैर्यमदंभो, वैराग्यं चात्मनिग्रहः कार्यः।
दृश्या भवगतदोषा श्चिन्त्यं देहादिवैरूप्यम् ॥४॥

शौच, स्थिरता, अदंभ, वैराग्य का सेवन करना, आत्मा का निग्रह करना, भव अर्थात् संसार दु:ख रूप है इत्यादि संसार के दोषों का विचार करना, देहादिक के विरूपपने का चिंतन करना।

भक्तिर्भगवति धार्या, सेव्यो देशः सदा विविक्तश्च।
स्थातव्यं सम्यक्त्वे, विश्वस्यो न प्रमादरिपुः ॥५॥

भगवान् पर भक्ति धारण करना, एकान्त पवित्र प्रदेश का निरन्तर सेवन करना, सम्यक्त्व में स्थिर रहना और प्रमाद रूपी शत्रु का विश्वास नहीं करना।

ध्येयात्मबोधनिष्ठा, सर्वत्रैवागमः पुरस्कार्यः।
त्यक्तव्याः कुविकल्पाः स्थेयं वृद्धानुवृत्त्या च ॥६॥

आत्म बोध की निष्ठा का ध्यान करना, सर्वत्र आगम को आगे करना, कुविकल्पों का त्याग करना और वृद्धों का अनुसरण करना।

साक्षात्कार्यं तत्त्वं, चिद्रूपानन्दमेदुरैर्भाव्यम्।
हितकारी ज्ञानवता-मनुभववेद्यः प्रकारोऽयम् ॥७॥

तत्त्व का साक्षात्कार करना तथा आत्मानन्द के द्वारा पूर्णता प्राप्त करना। ज्ञानियों को अनुभव से सिद्ध ऐसी उपरोक्त बातें हैं वे आत्मार्थियों के लिये हितकारी है।

महामन्त्र का ध्यान

जाप के बाद ध्यान की योग्यता आती है क्योंकि

१. जाप का अनुष्ठान यम-नियम पूर्वक होना चाहिये, जिससे उसमे यम-नियम सिद्ध होते है।

२. नियत जाप पूरा करने के लिये लम्बे समय तक एक आसन पर स्थिर बैठना पड़ता है, जिससे आसन सिद्धि भी होती है।

३. जाप मे यत्रमनस्तत्र मरुत् इस नियम से प्राणायाम भी हो जाता है।

४. जाप करते समय इन्द्रियों और मन को विषयो से पूर्ण विराम प्राप्त होता है जिससे प्रत्याहार का भी अभ्यास होता है।

५. जाप के समय मन की वृत्तियों का प्रवाह एक निश्चित ध्येय मे वहता है, इसीलिये धारणा भी विकसित होती है।

इस प्रकार जाप के अनुष्ठान से यम-नियमादि पूर्व अंग सिद्ध होते हैं और इससे ध्यान की योग्यता वढती है। जिन्होंने मन्त्र सिद्धि के भक्ति, शुद्धि, आसन, धारणा, मुद्रा आदि सोलह अंग माने है, उन्होंने भी चौदहवा स्थान जाप को,

पन्द्रहवां स्थान ध्यान को और सोलहवां स्थान समाधि को दिया है, अर्थात् जाप के बाद ध्यान का क्रम आता है यह निश्चित है।

योगि-सम्राट् पू० श्रीहेमचन्द्राचार्यजी योगशास्त्र के आठवें प्रकाश मे पदस्थ ध्यान का वर्णन करते हुए बताते है कि:

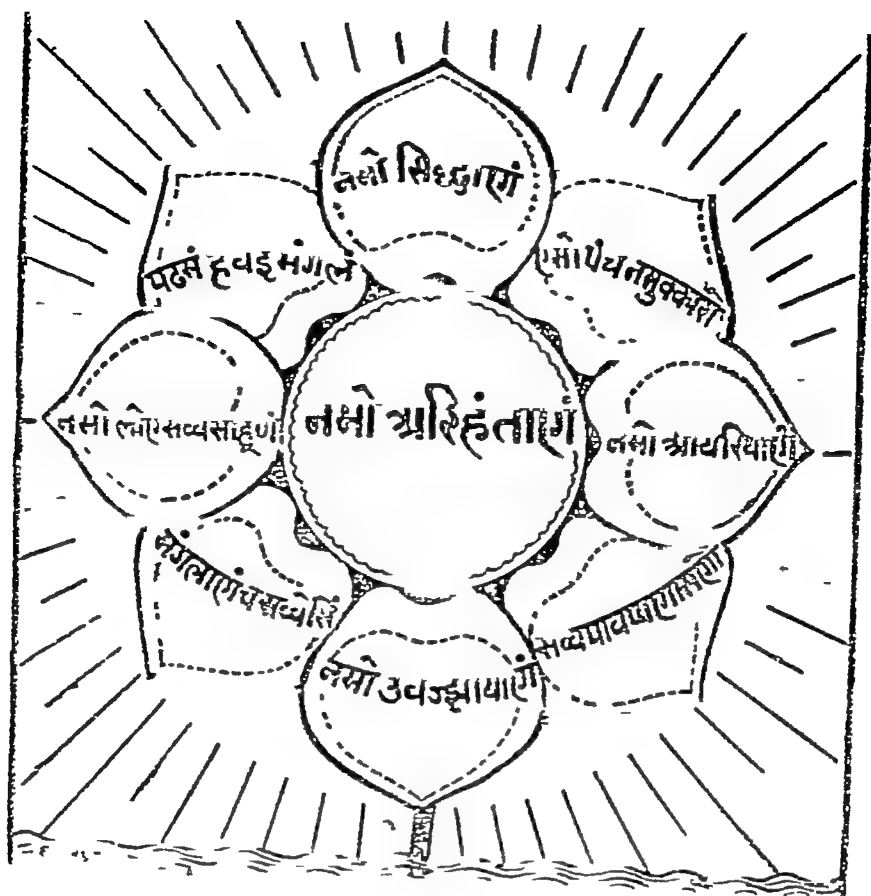
तथा पुण्यतमं मन्त्रं, जगत्त्रितयपावनम् ।
योगी पंच-परमेष्ठि-नमस्कारं विचिन्तयेत् ॥१॥

तीनों जगत् को पवित्र करने वाले और अत्यन्त पवित्र ऐसे पच परमेष्ठि-नमस्कार मन्त्र की योगियों को विशेष चिन्तवना करनी चाहिये ।

अष्टपत्रे सिताम्भोजे, कर्णिकायां कृतस्थितिम् ।
आद्यं सप्ताक्षरं मन्त्रं, पवित्रं चिन्तयेत् ततः ॥२॥

सिद्धादिकचतुष्कं च, दिक्पत्रेषु यथाक्रमम् ।
चूलापादचतुष्कं च, विदिक्पत्रेषु चिन्तयेत् ॥३॥

आठ पखडो के सफेद कमल की कल्पना करना, उस कमल की कर्णिका मे अर्थात् मध्य भाग मे, सात अक्षर वाले पहले पवित्र मन्त्र 'नमो अरिहंताणं' का चिन्तवन करना। पीछे सिद्धादि चार मन्त्रो का दिशाओ के पत्रो के क्रम से चिन्तवन करना और चूलिका के चार पदो का विदिशा के पत्रों में चिन्तवन करना ।



पिण्डस्थ और पदस्थ ध्यान आकृति और रंग के ख्याल बिना नही हो सकते, इसलिए जहां तक हो सके, वहां तक सुन्दर और घुमावदार अक्षरो की कल्पना करना और परमेष्ठियो के वर्ण के अनुसार उनका ध्यान करना। अर्थात् 'नमो अरिहंताणं' पद मे चन्द्रमा की ज्योत्स्ना के समान सफेद वर्ण का चिन्तवन करना। 'नमो सिद्धाणं' पद मे अरुण प्रभा के समान रक्त (लाल) वर्ण का चिन्तवन करना। 'नमो आयरियाणं' पद मे स्वर्ण के समान पीले वर्ण का

चिंतवन करना। 'नमो उवज्झायाणं' पद मे प्रियगु के समान नोले वर्ण का चिंतवन करना। 'नमो लोए सव्वसाहूणं' पद मे अजन के समान श्याम वर्ण का चिंतवन करना। ये अक्षर जव बराबर स्पष्ट और स्थिर दिखाई दे तथा उनके रंग नही वदले, तब अपना मन उन पर स्थिर हुआ समझना। इस प्रकार जब अक्षरो पर मन की स्थिरता बराबर होती है, तब इन अक्षरों से प्रकाश की रेखाएँ फूटती मालूम देती है और अन्त मे अद्भुत ज्योतिर्मय बन जाती है। अक्षरो को ज्योतिर्मय देखते ही परम आनन्द आता है और अपना हृदय कमल जो अधोमुख होता है, वह ऊर्ध्वमुख होने लगता है।

पदस्थ ध्यान के पहले पिण्डस्थ ध्यान का अधिकार है। इसीलिए अक्षर चिन्तन का अभ्यास करने से पूर्व आराधक को अरिहतादि पाँचो परमेष्ठियो का ऊपर बताये गये रगों के अनुसार ध्यान करना और चित्तवृत्ति को तन्मय बना देना चाहिए, अर्थात् उस समय उन ५ मूर्तियो के दर्शन सिवाय दूसरे विचार या विकल्प मन मे नही उठने देना चाहिये। अरिहत भगवान् का ध्यान अष्ट महाप्रातिहार्य से युक्त करने का है यह लक्ष्य मे रखना चाहिये। अभ्यास की शुरूआत मे मनोवृत्ति अल्प समय तक स्थिर रहेगी। परन्तु जैसे-जैसे अभ्यास बढेगा, वैसे-वैसे वह अधिक समय तक स्थिर रहेगी और उतना समय अपूर्व आनन्द सागर मे गोते लगाते हो, ऐसा अनुभव होगा।

ध्यान के प्रारम्भ मे, अरिहत और मैं, सिद्ध और मैं, आचार्य और मै, उपाध्याय और मैं, तथा साधु और मैं,

ऐसा द्वैतभाव होता है। परन्तु ध्यान में प्रगति होने के बाद यह द्वैत-भाव दूर हो जायगा। मेरी आत्मा ही अरिहंत है; मेरी आत्मा ही सिद्ध है, मेरी आत्मा ही आचार्य है, मेरी आत्मा ही उपाध्याय है और मेरी आत्मा ही साधु है, ऐसा अद्वैत-भाव उत्पन्न होकर आत्म-तत्त्व का सम्पूर्ण साक्षात्कार होगा, जो कि धर्म का अंतिम ध्येय है, योग का अन्तिम आदर्श है और साधना का अन्तिम फल है।

इस प्रकार नमस्कार मन्त्र का ध्यान चैतन्य और आनंद की चरम सीमा पर पहुँचाने वाला है। इससे दूसरे कई लाभ सहज में प्राप्त हो जाते है, इसमे कोई आश्चर्य नहीं। योग से जो सिद्धियां प्राप्त होती है, वे सब महामंत्र के ध्यान से प्राप्त होती हैं 'क्योकि महामन्त्र का ध्यान श्रेष्ठ प्रकार का योग है'।

> अनेक जन्मो के अपार पुण्य के बल से सर्वज्ञ ऐसे श्रीवीतराग भगवतों के शासन को प्राप्त हुए भव्यात्माओ को विश्वोपकारी जीवन की सब योग्यता प्राप्त कराने वाले परम मत्र श्रीनवकार को घडी भर के लिये भी अलग करना, ससार के भयानक हमलो को नजदीक बुलाने के बराबर है।

आराधना में विकास की भूमिका का क्रम

(१) शब्दानुसंधान (२) अर्थानुसंधान (३) तत्वानुसंधान और (४) स्वरूपानुसंधान। इन चार भूमिकाओं पर क्रमश श्री नमस्कार महामन्त्र की आराधना हो सकती है। शब्दानुसंधान की अन्तिम अवस्था आने पर अर्थानुसंधान की शुरूआत होती है। अर्थानुसंधान की अन्तिम अवस्था पर तत्वानुसंधान की शुरूआत होती है, इसी तरह तत्वानुसंधान की अन्तिम अवस्था पर स्वरूपानुसंधान की शुरूआत होती है और स्वरूपानुसंधान की अन्तिम भूमिका ही परमात्मास्वरूप की प्राप्ति है।

(१) शब्दानुसंधान

शब्दानुसंधान से नवकार की साधना करना, अर्थात् अपनी योग्यता के अनुसार नवकार के अक्षरों का भाष्य, उपांशु और मानस आदि जाप से बराबर अभ्यास करना। माला और शंखावृत्त आदि से किये गये जाप का समावेश उपांशु में होता है, अर्थात् अल्प उच्चारण सहित हलन-चलन यह उपांशु का लक्षण है। जो वैखरी-वाणी-पूर्वक मात्र उच्चारण से जाप होता है, वह भाष्य जाप कहलाता है और बिना उच्चारण तथा बिना हलन चलन के केवल धारणा से किया गया जाप मानस जाप कहलाता है। इस प्रकार तीनों तरह

के जाप से अक्षरों को आत्मसात् करना, उनका बराबर परिचय कर लेना, इसका नाम शब्दानुसंधान है।

(२) अर्थानुसंधान

'अर्थानुसंधान' अर्थात् परमेष्ठियो की अर्थ से विचारणा करना। यह विचारणा निम्न प्रकार से की जा सकती है।

(१) परमेष्ठियो के जीवन प्रसंग की विचारणा (२) परमेष्ठियों के गुणो का चिंतन (३) परमेष्ठियो के उपकार की विचारणा (४) परमेष्ठियों मे रही हुई अपूर्व और अनन्त शक्तियो के सामने अपनी तुच्छ अवस्था की विचारणा (५) परमेष्ठियो मे रही हुई सर्व जीवो के प्रति कल्याण भावना के कारण उनमे स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हुई सर्वोत्तम करुणा, वात्सल्य, प्रेम और परार्थरसिकता आदि की विचारणा (६) उनको नमस्कार करने के द्वारा स्वहृदय मे शरणागत का भाव लाना और उसे विकसित करना, उनकी कृपा प्राप्ति के लिए प्रणिधान (एकाग्रता) पूर्वक बारम्बार प्रार्थना करना (७) पच परमेष्ठि भगवतो मे रही हुई कल्याण भावना के अनुरूप अपना आत्मभाव करना, अर्थात् पंच परमेष्ठियों मे रही हुई विश्व-कल्याण की भावना के अनुकूल अपनी आत्म-भावना को बनाना। इस भावना से वासित होकर भावनामय होने के लिए उनका जाप, उनका ध्यान और उनके साथ एकता का अभ्यास करना।

श्रीमहामन्त्र के पदो की (१) पदार्थ से (२) वाक्यार्थ से और (३) महावाक्यार्थ से विचारणा करना, यह भी

'अर्थानुसंधान' है। 'नमो अरिहंताणं' पद की यह विचारणा निम्न प्रकार से की जा सकती है।

(१) 'पदार्थ' 'नमो' पद का अर्थ नमस्कार है। यह है विनयपूर्वक भक्ति से पूर्ण हृदय का समर्पण। नमस्कार करने वाले मे अपनी लघुता और अरिहत की महत्ता का विचार पूर्वक का सन्मुख भाव हो। पूज्य-पूजक भाव संबध से भगवन्तो के गुणो में अभेदता, तन्मयता, एकता प्राप्त हो, यह पदार्थ है।

'अरिहंताणं' पद का अर्थ 'अरिहंतो को' अर्थात् सर्व जगत् के कल्याण की सर्वोच्च कामना से सर्वोत्कृष्ट पुण्यप्रकर्ष-पूर्ण, सर्व सत्त्वहितप्रद श्री धर्मचक्रवर्तिपन की उत्तमोत्तम पदवी प्राप्त करने वालों को।

इस प्रकार श्रीनमस्कार महामत्र के दूसरे पदो के भी यथार्थ अर्थो को गुरु कृपा से प्राप्त कर चिंतवन करना।

(२) वाक्यार्थ 'नमो अरिहंताणं' इस वाक्य का अर्थ अरिहतो को नमस्कार हो! ऐसा होता है।

यहां अरि अर्थात् शत्रु और हत अर्थात् उसे नाश करने वाला। जगत् के सब जीवो का वास्तव मे कोई शत्रु है, तो वह अशुभ कर्म है और उसमे क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या, असूया, द्वेष, मात्सर्य, हिंसा, क्रूरता कृतघ्नता, स्वार्थ-परायणता और राग आदि मुख्य है।

मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्य आदि भावनाओं के बल से इन अतरग शत्रुओ पर विजय प्राप्त कर परमात्म-भाव को प्राप्त हुए और सब जगत् को परमात्मपद प्राप्त

कराने की भावना वाले तीर्थङ्कर देवों को मेरा भक्तिपूर्वक नमस्कार हो ! यह वाक्यार्थ हुआ।

दूसरे भी ऐसे अविरुद्ध वाक्यार्थ गुरु की कृपा से जानना।

(३) महा वाक्यार्थ—इस नमस्कार महामन्त्र में देव, गुरु, धर्म, धर्म का फल, स्वरूप और उसका विश्वप्राधान्य बताया गया है। शुरू के दो वाक्यों मे देव, पीछे के तीन वाक्यों में गुरु भगवन्त, दो पद के छठे वाक्य मे पूर्वार्द्ध से धर्म और उत्तरार्ध से उसका फल तथा दो पदों के अन्तिम वाक्य मे स्वरूप और सर्व श्रेष्ठता बताई गई है।

जैसे प्रथम के दो पदो मे जगत् में सर्वश्रेष्ठ, भाव से परमेष्ठि पद को प्राप्त हुए ऐसे अरिहन्त और सिद्ध ये देव हैं। पीछे के तीन पदों मे आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु ये तीन गुरु हैं। इन पाँचो को किया गया नमस्कार धर्म है। उस नमस्कार से सर्व दुखो का नाश और सुख की प्राप्ति होती है। यह उसका फल है। यह नमस्कार जगत् के सब दु.खो का नाश कर सब सुखों को देने मे सामर्थ्यवान् होने से परम मंगल स्वरूप है और सर्वश्रेष्ठ है।

इसी तरह दूसरे भी अविरुद्ध अर्थो की विचारणा करना यह महा-वाक्यार्थ कहलाता है और ये तीनो अर्थानुसन्धान है।

(३) तत्त्वानुसंधान

'तत्त्वानुसन्धान' अर्थात् पच परमेष्ठि भगवन्तों की और उनमे भी मुख्यत. अरिहन्त परमात्मा की सर्व जीवो के प्रति कल्याण–भावना सम्बन्धी विशेष विचारणा करना। यह

विचारणा इस प्रकार हो सकती है। करुणासागर परमात्मा मे रहे हुए गुणप्रकर्षपन, अचिंत्य शक्ति, परार्थरसिकता और परम करुणा की तरफ आन्तरिक श्रद्धा को वढाना। श्री अरिहन्त परमात्मा की सर्व कल्याण की भावना के विश्वमय स्वरूप को विचारना। इससे श्री अरिहन्त परमात्मा मे रही हुई करुणा, प्रेम और वात्सल्य के प्रति भावात्मक मिलन होगा। साधना के अलावा अन्य समय मे भी परमात्मा के प्रति अनुसन्धान चालू रहेगा। साधना के समय मे रोमाच–झनझनाहट का अनुभव होगा। प्रभु के प्रति अन्तरग अभिरुचि, अत्यन्त वहुमान, और विना शर्त शरणागति भाव उत्पन्न होने से अखण्ड प्रेम और यथाशक्य आज्ञा का पालन करने की प्रेरणा अपने आप अन्दर से प्रकट होगी। महामन्त्र की साधना करते करते महामन्त्र के अक्षरो से निकलती हुई अग्नि-ज्वाला से अथवा प्रतिमाजी का ध्यान करते हुए भगवान् के मुँह से निकलती हुई अग्नि-ज्वाला से स्वदेह और अनादि से लगे हुए विषय-कषाय आदि अन्तरग शत्रु जलते है, ऐसा अनुभव करना।

फिर महामन्त्र के अक्षरो का ध्यान करते समय अक्षरो से अमृत का फव्वारा निकलता है, ऐसा अनुभव करना। प्रतिमा का ध्यान करते समय प्रभु के नेत्रो से अमृत निकलने का अनुभव करना, इस अमृत से अपनी आत्मा को पूर्ण रूप से भर रहे हैं, ऐसा अनुभव करना। रोम रोम मे व्याप्त हो जाने पर स्वाभाविक रूप से आत्मा मे सर्व जीवो के प्रति आत्मतुल्य भाव और प्रेम का अनुभव करना। सव जीवो के कल्याण की भावना प्रकट होने पर अपूर्व आनन्द का अनुभव करना, ये अनुभव सहज होगे।

इस तरह अमृतपूर्ण शुद्ध आत्म-द्रव्य-स्वरूप वाला होने पर अपने मे स्वाभाविक रूप मे जीवमात्र की कल्याण भावना उत्पन्न होती देखे। इस प्रकार ऐक्य भाव को प्राप्त हुए स्वयं को परमेष्ठि मे लीन होता देखे, यही परमेष्ठि भावना का तात्पर्य है। यह महामंत्र के आलंबन से हुए जाप, ध्यान आदि का सर्व-श्रेष्ठ फल है।

इस प्रकार हमेशा अनुभव होते २ साधना के समय के सिवाय भी सब तरफ आत्म तुल्य दृष्टि स्थिर होगी। सब की हित-चिन्ता चालू रहेगी। अपने ही सुख दुःख की चिन्ता और अन्य विकल्प जो कि स्वार्थ से उत्पन्न होते हैं और स्वार्थ जो सब पापो की जड है, उसका विलय होगा। सब की हितचिंता यह परमार्थ है। इस परमार्थ भाव से परमेष्ठि पद की प्राप्ति होती है, इसलिये आत्म-हित की भावना वालो को 'सर्व आत्माओ का हित हो' ऐसी भावना सतत रखनी चाहिये।

इस तरह सब तरफ प्रेम प्रकट होने पर आंतरिक वृत्तियाँ एक दम शान्त होने लगेगी और साधना मे अधिक एकाग्रता व आनन्द का अनुभव होगा। अक्षरो और प्रतिमा के ध्यान के समय उनमे से निकलते हुए दिव्य-प्रकाश से व्याप्त होने का अनुभव होगा और उस समय आत्मज्ञान अर्थात् आत्म-स्वरूप का अनुभव होगा। इसीका नाम तत्त्वानुसंधान अथवा तात्पर्यानुसंधान है।

ऐदंपर्यार्थ—दूसरे अर्थानुसंधान मे श्रीमहामंत्र सम्बन्धी पदार्थ, वाक्यार्थ और महावाक्यार्थ की विचारणा पहले ही

चुकी है। तीसरे तात्पर्यानुसंधान मे ऐदपर्यार्थ का समावेश निम्न प्रकार से हो सकता है:

पंच परमेष्ठि में नौ तत्त्व

चौदह पूर्व के सारभूत श्रीनमस्कार महामन्त्र मे गुरु और धर्म का जो स्वरूप है, वही विश्व का स्वरूप है क्योकि विश्व का स्वरूप नौ तत्त्वो के अतिरिक्त नही है और नवपद स्वरूप यह नमस्कार भी नौ तत्त्व स्वरूप होने से विश्व स्वरूप से अलग नही है।

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, बंध, निर्जरा और मोक्ष इन नौ तत्त्वो का ज्ञान पच परमेष्ठि के ज्ञान से निम्न प्रकार से होता है, इसीलिए पच परमेष्ठि से विश्व स्वरूप नौ तत्त्व अलग नही हैं।

पाप प्रकृति से सर्वथा रहित और पुण्य प्रकृति के प्रकर्ष को प्राप्त अरिहत के ज्ञान से ध्यान से पाप और पुण्य इन दो तत्त्वो का ज्ञान हो जाता है।

अजीव के सग से सर्वथा रहित और जीव तत्त्व से पूर्ण श्री सिद्ध भगवान् के ज्ञान से अजीव और जीव तत्त्व का ज्ञान होता है।

शुद्ध आचरण का पालन करने वाले और कराने वाले आचार्य भगवत आस्रव के द्वारो को रोकने वाले और सवर भाव को प्राप्त किये हुए होते हैं, इसलिये उनके ध्यान से सवर और आस्रव तत्त्व का ज्ञान होता है।

उपाध्याय भगवत ज्ञान-ध्यान मे लीन होने से उनको वध कम होता है और ज्ञान-ध्यान के वल से निर्जरा अधिक होती

है, इसलिये उनके ध्यान से बंध और निर्जरा तत्व का ज्ञान होता है।

साधु भगवत मोक्ष मार्ग के साधक होने से उनके ध्यान से मोक्ष तत्व का ज्ञान होता है।

श्री नमस्कार में दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप.

श्री अरिहत और सिद्ध ये अणाहारी पदों के भोक्ता होने से तप पद की पराकाष्ठा इन्होंने प्राप्त की है।

श्री आचार्य भगवत आचार का पालन करने से चारित्र गुण के मालिक है।

श्री उपाध्याय भगवंत ज्ञान के पठन-पाठन मे लीन रहने से ज्ञान प्रधान होते है।

श्री साधु भगवत देव-गुरु की आज्ञा मे अटल विश्वास रखने से श्रद्धा-दर्शन-प्रधान होते है।

चार भावना के प्रकर्ष से उच्च पद की प्राप्ति

मैत्री भावना के प्रकर्ष से, अर्थात् सर्व जीवों के प्रति मैत्री भाव, अद्वेषभाव, समान भाव रखने से मोक्ष साधिका समतामयी मुनि पदवी प्राप्त होती है।

प्रमोद भावना के प्रकर्ष से अर्थात् दूसरे जीवो मे रहे प्रकट-अप्रकट गुणो के बहुमान से, प्रमोद भाव से, गुणों के भण्डार (लब्धि के निधान) गणधर पद के भोक्ता माने जाते है।

करुणा भावना के प्रकर्ष से अर्थात् मैं सर्व जीवों को दुःखों

से मुक्त करूं, मैं सब जीवों को सुखी करूं, ऐसे भाव से सर्वश्रेष्ठ सुख का स्थानभूत तीर्थंकर पद प्राप्त होता है।

माध्यस्थ्य भावना के प्रकर्ष से सिद्ध अवस्था-कृतकृत्य अवस्था प्राप्त होती है।

परमेष्ठि पद प्राप्ति का कारण

मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ्य भावना ये परमेष्ठि पद प्राप्ति के कारण हैं। इन भावनाओ के बिना किसी को भी परमेष्ठि पद की प्राप्ति नही होती।

इसलिये परमेष्ठि के आराधको को हमेशा याद रखना चाहिये कि मैत्री आदि चार भावना पूर्वक परमेष्ठि भगवन्त की आराधना, साधना, सेवा व उपासना हो सकती है। इन भावनाओ से ओत-प्रोत होने पर परमेष्ठी बना जा सकता है। इन भावनाओ के द्वारा की गई सेवा ही सच्ची सेवा है, जप, ध्यान भी इन्ही के द्वारा फलीभूत होते हैं।

महामन्त्र का हार्द क्या है ?

सारे संसार का मैं मित्र हूँ, किसी के साथ मेरी शत्रुता नही है, सब जीवो को दु:खो से मुक्ति मिले, सब प्राणी सुखी हो, सब जीव पापो से मुक्त, दोष-रहित हो, ऐसी भावना प्रत्येक नमस्कार मन्त्र के आराधक को रखनी चाहिए। यह महामन्त्र का प्रधानार्थ है, प्राण है, रहस्य है, तत्त्व है, सत्य है, परमार्थ है, तात्पर्यार्थ है, ऐदम्पर्यार्थ है और हार्द है।

इस तरह तत्त्वानुसधान से और इसके अन्तर्गत रहे ऐदंपर्यार्थ से महामन्त्र सम्बन्धी विचारणा हुई।

(४) स्वरूपानुसंधान

आलम्बन के बल से क्रमिक विकास को प्राप्त साधक निरालम्बन ध्यान को प्राप्त करता है। इस अवस्था को प्राप्त जीव अपने को पूर्ण हुआ अनुभव करता है, विश्व को पूर्ण रूप मे देखता है और पूर्ण स्वरूप वाले परमेष्ठि को अपने से अभिन्न अनुभव करता है, अर्थात् अभेदभाव से अपने मे परमेष्ठि और परमेष्ठि मे परमेष्ठिमय अपने को एक रूप में अनुभव करता है।

तत्वानुसंधान की अन्तिम अवस्था स्वरूपानुसंधान की प्रथम भूमिका है, अथवा आत्म-स्वरूप की प्राप्ति स्वरूपानुसंधान है। साधना का प्रयत्न कायम रखने से परमात्मा की अधिक अधिक कृपा का अनुभव होते ही इस भूमिका की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार कल्लोल-रहित सागर की तरह शान्त और मेरुवत् निष्प्रकंप हुए, विकास के शिखर पर पहुँचे हुए जीवात्मा को परमात्म-पद प्राप्त होता है जो कि सर्व मुमुक्षु आत्माओं का अन्तिम ध्येय है।

> श्री नवकार महामन्त्र के साधक को जगत् के सर्व शुभ तत्त्व सहायक होते हैं और अशुभ तत्त्व उसके सामने पराजित हो जाते हैं, इससे नवकार का साधक सर्वदा निर्भय बनता है।

श्री नवकार माहात्म्य दर्शक सुवाक्य

इस पुस्तक मे पहले बताया गया है कि श्रीपच परमेष्ठि नमस्कार महामन्त्र के प्रति भक्ति और बहुमान जागृत हो ऐसा वाचन दिन मे थोड़ी देर भी हमेशा नियमित रूप से करना चाहिये। उसके लिये संस्कृत, प्राकृत, गुजराती आदि मे बहुत साहित्य प्रकाशित हुआ है। परन्तु हर किसी के लिये यह सब सामग्री सुलभ नही है। इसलिये जिन्हे ऐसा साहित्य पढने का अवसर न मिले, ऐसे साधक श्री नवकार महामन्त्र की महिमा से वंचित न रह जाएँ, उनके लिये महामन्त्र के माहात्म्य को बताने वाले थोड़े से सुवाक्य यहां प्रस्तुत किये जाते है। श्री नवकार प्रेमी आत्माओ को उनका बारम्बार पठन, मनन और परिशीलन, महामन्त्र के प्रति आदर और बहुमान जागृत करने मे सहायक होगा, ऐसी आशा है। इसके सिवाय बडी पुस्तको को पढने मे पूरा समय चाहिए और दूसरी भी बहुत सी सामग्री की अपेक्षा रहती है, जब कि इस अति प्रवृत्ति के समय में सारभूत थोडी बात सरलता से पढी, विचारी जा सके और अन्त मे बडे ग्रन्थो को भी सुनने पढने की रुचि उत्पन्न हो, ऐसी धारणा से यहा श्रीनवकार का सारभूत तत्त्व प्रस्तुत किया जाता है। इन वाक्यो को सिर्फ पढना ही नही, परन्तु मनन पूर्वक पढना, विचारना और परिशीलन करना चाहिये। इनमे अनेक अनुभवियो के अनुभवों का निचोड़ है। एक-एक वाक्य प्रकाश

से भरा हुआ है। मात्र उस प्रकाश को प्राप्त करने के लिये अपनी दृष्टि को फैलाने की जरूरत है और यह कार्य शान्ति-पूर्वक मनन और परिशीलन से ही सुलभ हो सकता है। चाहे थोड़ा पढा जाय, परन्तु चिन्तन मनन पूर्वक पढने से बहुत लाभ होता है। अब वे सुवाक्य प्रस्तुत किये जाते है।

श्रीपरमेष्ठि नमस्कार गुणानुराग का प्रतीक है। यदि गुणानुराग न हो तो इससे जागृत होता है और हो, तो उसमे वृद्धि होती है, यह गुणानुराग मोक्ष का अवन्ध्य बीज है।

अन्तरात्मभाव को लाने वाला, उसे टिकाने वाला, बढ़ाने वाला और अन्त मे परमात्म भाव तक पहुँचाने वाला परमेष्ठि नमस्कार है, इसीलिए मार्गानुसारी की भूमिका से लेकर सम्यग्दृष्टि, देशविरति और सर्वविरतिधर तमाम जीवो की आराधना मे परमेष्ठि नमस्कार परम अग है।

श्रीनमस्कार महामन्त्र सर्वोत्तम मगल रूप और प्राणी मात्र को सच्चे सुख की ओर ले जाने वाला कुशल पथ-प्रदर्शक है।

श्रीनवकार महामन्त्र का स्मरण अज्ञानादि से उपार्जन किये गये अशुभ संस्कारो को सरलता से बदल कर आत्मशक्ति के विकास के मौलिक कार्य मे उपयोगी बनाता है। इसलिये श्रीनवकार लोकोत्तर महामन्त्र है।

श्रीनवकार के प्रभाव से आत्मा मे उच्चकोटि का वीतराग भाव धीरे-धीरे अवश्य विकसित होता है। इसके द्वारा आत्म-शक्तियां स्वतन्त्र रूप से कार्य करती हुई जगत् के उत्तम

महामूल पदार्थो की ओर लोह चुम्बक की तरह स्वत: आकर्षण पैदा करती है। इसलिये सर्व मगलो मे श्रेष्ठ मंगल श्रीनवकार महामन्त्र है।

श्रीनवकार महामन्त्र की अनादि सिद्ध, सनातन और स्वाभाविक ऐसी विशिष्ट रचना है कि जिससे उसके व्यवस्थित जाप के बल से साधक का चित्त जाप से ध्यान मे, ध्यान से लय मे, लय से समाधि मे और समाधि मे से प्रज्ञा (उत्कृष्ट क्षयोपशमजन्य-प्रातिभज्ञान) मे शीघ्रता से पहुँच जाता है।

इस महामन्त्र के वर्णो की संयोजना ही किसी अद्भुत गणित विज्ञान के निगूढ सिद्धान्त पर मालूम होती है कि जिससे अल्प प्रयत्न से साधक की वृत्तियो मे ऊर्ध्वमुखता आ जाती है। जितनी विशिष्ट परिणाम-शुद्धि साधक ने जाप द्वारा प्राप्त की हो, उतनी ही मन्त्र-सिद्धि शीघ्र होती है। अन्य मन्त्रो के जाप से होने वाली परिणाम की शुद्धि की अपेक्षा श्रीनवकार के जाप से परिणाम की विशुद्धि अल्प प्रयत्न से अधिक प्राप्त होती है। इस कारण श्रीनवकार मन्त्र मन्त्राधिराज गिना जाता है।

श्रीपच परमेष्ठियों को भाव-पूर्वक नमस्कार करने से मनुष्य ससार मे कभी भी दास, प्रेष्य, दुर्भग, नीच या विकलेन्द्रिय-अपूर्ण इन्द्रियो वाला नही होता।

प्रभु प्रतिमा के सन्मुख धूप, दीप और पूजन की अन्य सामग्री सहित शरीर और वस्त्र की पवित्रता, तथा मन की

शुद्धि पूर्वक पूजा करके एकाग्रता पूर्वक एक लाख संख्या का नवकार जाप अचिंत्य लाभ देने वाला है।

श्रद्धा रूपी घृत और बहुमान रूपी वत्ती से धन्य पुरुषों के मनोभवन मे प्रकाशित श्रीनवकार रूपी दीपक मिथ्यात्व रूपी अन्धकार का अवश्य नाश करता है।

तीनो लोक के विवेकी सुर, असुर, विद्याधर तथा मनुष्य सोते, जागते, बैठते, उठते या चलते फिरते श्रीनवकार मन्त्र को याद करते हैं।

परलोक के मार्ग की ओर प्रयाण करने वाले जीव-रूपी मुसाफिर को इस जन्म रूपी घर से निकलते समय श्रीनवकार मन्त्र पाथेय के समान है।

अन्त समय मे जिसने श्रीनवकार मन्त्र को याद किया, उसने सब सुखो को आमत्रित किया है और सब दुःखों को हमेशा के लिये तिलाजलि दी है।

श्रीनवकार मन्त्र सत्व को गठड़ी है, रत्न की पेटी है, और सब इष्टो का समागम है।

श्रीनमस्कार महामन्त्र पाप-रूपी पर्वत को भेदने के लिये वज्र के समान है, दु.ख रूपी बादलो को बिखेरने के लिये प्रचण्ड पवन के समान है, मोहरूपी दावानल को शान्त करने के लिये आषाढी मेघ के समान है, अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने के लिये सूर्य के समान है, कल्याण रूप कल्पवेल के अवध्य बीज के समान है, दारिद्रयरूप कद को मूल से उखाड़नें के लिये वराह की दाढ़ के समान है, सम्यक्त्व रत्न को पैदा

करने के लिये रोहणाचल पर्वत के समान है, और कल्पवृक्ष, चिंतामणि, कामधेनु, कामकुम्भ आदि से भी विशेष रूप से अधिक सब कामनाओं को पूरी करने वाला है।

सम्पूर्ण द्वादशांगी परिणाम की विशुद्धि के लिये है, इसी तरह श्रीनमस्कार महामन्त्र भी परिणाम की विशुद्धि का कारण रूप है। इसलिये यह द्वादशांगी का सार है।

अग्नि आदि के भय के समय मनुष्य सभी वस्तु छोडकर एक महारत्न को ग्रहण करता है, उसी तरह अन्तिम समय मे विशेष श्रुत का स्मरण करने मे अशक्त श्रुतधर भी समस्त श्रुतागम को छोडकर श्रीनवकार का ध्यान करते है।

असमाधि और अशान्ति को शीघ्र दूर करने के लिये सिद्ध और अमोघ उपाय रूप ज्ञानी पुरुषो ने परम पावन श्री नवकार, उसके पद और उसके प्रत्येक अक्षर का अवलम्बन लेने को कहा है।

शारीरिक तथा मानसिक दु.खो से और राग द्वेषादि के सन्ताप से तप्त चारो गति के भव्य जीवों के लिये श्रीनवकार सर्वत्र सहायक और परमार्थ बन्धु के समान है।

श्रीनवकार द्रव्य और भाव दोनो प्रकार के विष को दूर करने वाला होने से गरुड़ादि अन्य मन्त्रों मे प्रधान मन्त्र है।

श्रीनवकार अप्राप्त गुणो को प्राप्त कराता है, ज्ञानादि प्राप्त गुणो का रक्षण करता है और सर्व अर्थ का साधक होने से सब ध्येयो मे परम ध्येय है।

श्रीनवकार कर्ममल के कलक को दूर करने वाला होने से

सर्व तत्त्वों तथा परमार्थ भूत पदार्थो मे अतिशय पवित्र तत्त्व है।

श्रीनवकार मन्त्र की प्राप्ति के बिना जीवों के अनेक जन्मों के सचित शारीरिक तथा मानसिक रोग, शोक आदि दु ख तथा उसके कारण भूत कर्मों का नाश असंभवित है।

यदि साधक एकाग्र चित्त से हाथ की अंगुलियों के आवर्त्त द्वारा श्री नवकार महामन्त्र का जाप करे, तो उसे भूत, प्रेत, पिशाच आदि परेशान करने मे कभी समर्थ नही होते।

जिस महाभाग्यशाली आत्मा की मन-रूपी गुफा मे नमस्कार महामन्त्र रूपी केसरी सिह बिराजमान है, उसके मन मे पाप-कर्म रूपी हाथियों का समूह नही टिक सकता।

यह नवकार जन्म के समय गिना जाय तो जन्म के बाद बहुत ऋद्धि को देने वाला है और मृत्यु के समय गिना जाय तो मृत्यु के बाद सुगति को देने वाला है, आपत्ति के समय गिना जाय तो सेकड़ों आपत्तियां दूर हो जाती है और ऋद्धि के समय गिना जाय तो ऋद्धि का विस्तार होता है।

श्रीनवकार महामन्त्र का जाप करने वाला ससार मे कभी दुःखी नही होता और निश्चय से मोक्ष प्रासाद के शाश्वत सुख का अधिकारी होता है।

इस जन्म मे विधि से, भाव से और चित्त की एकाग्रता से जो नवकार महामन्त्र की आराधना करे तो भवातर मे वह आत्मा उच्च जाति, कुल, रूप, आरोग्य और सम्पत्ति प्राप्त करता है।

यदि साधक श्रद्धा, भक्ति और एकाग्रता से समझ पूर्वक समर्पण भाव से श्रीपच परमेष्ठि की शरण मे जाता है, तो उसकी वुद्धि, मन, वाणी तथा देह सब पवित्र बन जाते है।

यदि साधक के हृदय मे श्रीपच परमेष्ठि के प्रति सम्पूर्ण तादात्म्यभाव उत्पन्न हो, तो उसे श्रीनमस्कार महामन्त्र का पूरा परिचय हो जाता है। नमस्कार महामन्त्र आध्यात्मिक समृद्धि का शब्दमय प्रतीक है।

श्रीनवकार की साधना मोक्ष मार्ग की साधना है, सम्यक् श्रद्धापूर्वक जाप करने से इसके प्रत्येक अक्षर और मात्रा सजीव प्रतीक रूप वन जाती है और श्रीपरमेष्ठि की अद्भुत ऋद्धि का साक्षात्कार करने के लिये यह महामन्त्र महान् साधन रूप बन जाता है।

श्रीनमस्कार महामन्त्र को समझने के लिये केवल तर्क, युक्ति या वुद्धि सम्पूर्ण नही है। नवकार का घनिष्ठ परिचय प्राप्त करने के लिये तो सर्व समर्पण की ही आवश्यकता है।

श्रीपच परमेष्ठियों का वास्तविक ज्ञान तथा उनका प्रत्यक्ष अनुभव केवल साधना द्वारा ही प्राप्त होता है। यह साधना निरन्तर शुद्ध और जाग्रत चित्त से जाप करने के द्वारा प्राप्त होती है।

श्रीनमस्कार महामन्त्र मे पंच परमेष्ठि की अनुमोदना है और इस अनुमोदना मे अपना सारा वल भरा हुआ है। श्रीपच परमेष्ठि और उसके सुकृतो की अनुमोदना मोक्ष का द्वार खोल देती है।

श्रीनमकार महामन्त्र के प्रत्येक अक्षर मे अचिन्त्य शक्ति छिपी हुई है, परन्तु यह प्रकाश क्रमश. प्रयत्न करने से प्राप्त होता है।

जिस तरह भोजन का प्रत्येक कण शरीर का पोषण करता है, इन्द्रियो की शक्ति को बढाता है, क्षुधा दूर करता है, उसी तरह श्रीनवकार महामन्त्र के प्रत्येक जाप से अज्ञान, कषाय और प्रमाद कम होते है, पुन पुन जाप करने से मन और बुद्धि भी शुद्ध होती है।

इस विश्व मे ऐसा कोई पाप नही है कि जिसका प्रतिकार श्रीनवकार का आश्रय लेने से अशक्य बने। नवकार के अक्षर केवल अक्षर रूप नही है, परन्तु अक्षरमय साक्षात् देवता है, ज्योति. पुज है।

कर्म सारे जगत् पर शासन करते है, परन्तु ये कर्म पच परमेष्ठि से डरते है, इसलिये पच परमेष्ठि के साथ सम्बन्ध रखने से कर्म बन्धन ढीले हो जाते है।

शब्दो का मन पर सबसे ज्यादा प्रभाव होने से श्रीपच परमेष्ठि के शब्दो मे मन को लगाने से चचल मन सुगमतापूर्वक विषय-कषाय के आकर्षण से मुक्त होता है।

श्रीपच परमेष्ठि मे मन लगाना, पर्वत पर चढने जैसा है। जिस तरह पर्वत पर चढना कठिन है, परन्तु चढने के बाद शुद्ध वायु मण्डल की प्राप्ति आदि से मन आनन्दित होता है, उसी तरह श्रीनवकार मे मन लगाना तो कठिन है परन्तु मन लग जाने पर जिस आत्मिक आनन्द का अनुभव होता है, वह अवर्णनीय है।

श्रीनवकार परमपद की आराधना रूपी पताका को ग्रहण करने के लिये हाथ है, स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करने के लिये राजमार्ग है और दुर्गति को दूर करने के लिये अर्गला है।

पच नमस्कार रूपी सारथी से हाके जाने वाले ज्ञानरूपी घोड़े वाले सयम रूपी रथ मे वैठकर मनुष्य शीघ्र निवृत्तिपुरी में पहुँच जाता है।

ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के अनन्त पुद्गलो का विगम होने के वाद परमार्थ से नवकार के प्रथम अक्षर 'न' का लाभ होता है और वाद के दूसरे अक्षरो का लाभ भी क्रमश. अनन्त अनन्त कर्म पुद्गलो का क्षय होने से होता है।

"श्रीनवकार उभय लोक मे सुख का मूल है" ऐसा समझ कर इस महामन्त्र का सदा स्मरण करो, क्योंकि पच परमेष्ठि को किया गया नमस्कार जीव को हजारो भव से छुडाता है और दुर्लभ वोधि-वीज की प्राप्ति कराता है।

सव मन्त्र रत्नो की उत्पत्ति के मूल स्थान, विषधर, शाकिनी, डाकिनी याकिनी आदि के उपद्रवो का निग्रह करने वाले और सम्पूर्ण जगत् को वश मे करने के लिये प्रौढ प्रभाव सम्पदा वाले श्रीनवकार की महिमा तीनो जगत् मे सव काल मे सवसे श्रेष्ठ और अद्भुत है।

सर्वस्व समर्पण करने की वुद्धि से किये गये नमस्कार के दान को श्रीठाणाग सूत्र मे वताये नौ प्रकार के पुण्यो मे नवा सर्वोत्कृष्ट पुण्य वतलाया गया है।

श्रीपंच परमेष्ठि भगवान् यानि विश्वकल्याण की भावना का भण्डार। उन्हे नमस्कार करने से यह भावना नमस्कार

करने वाले मे प्रकट होती है। उसके बाद जगत् मे उसका कोई शत्रु नही बन सकता।

ध्यान सब तपो मे श्रेष्ठ है। जब उसका विषय पच परमेष्ठी बनता है, तब ध्यानगत हुआ श्रीनवकार मदोन्मत्त हाथी की तरह सर्व कर्मरूपी वृक्षो का समूल उन्मूलन कर देता है।

नमस्कार की क्रिया सन्मान का दान है। सन्मान का दान सब दानो मे उच्च है। जो योग्य को योग्य सन्मान देता है उसका पुण्य कभी कम नही होता, उसमे पाप का प्रवेश नही हो सकता। इसलिये योग्य व्यक्ति को सन्मान का दान देना यह मानव-जन्म का अमूल्य ल्हावा है।

श्रीपच परमेष्ठि भगवत जगत् मे सर्वश्रेष्ठ सन्मान के योग्य है, उनको नमस्कार करने से सन्मान का दान होता है, क्योकि नतमस्तक होना, यह उनका महान् सन्मान है। नतमस्तक होने से 'अह' का विष उतर जाता है और सब ही योग्य जीवो को झुकने का सत्व अपनी आत्मा मे प्रकट होता है। 'अह' को झुकाये बिना एक भी शत्रु नही झुकता और पच परमेष्ठि को झुके विना 'अह' कदापि नही झुकता। 'अह' को झुकाने मे नवकार की साधना अति आवश्यक है।

नमस्कार कहता है कि तुम सब मुझे तुम्हारे 'अह' को सुपुर्द कर दो, तो मैं तुमको अर्हं सुपुर्द कर दूगा।

श्रीनवकार महामन्त्र है, क्योकि उसमे अनेक शक्तिया हैं। पाप-कर्मो को नाश करने की विद्युत-शक्ति और पुण्य-कर्मो का बन्ध कराने वाली आकर्षण-शक्ति और इस के अलावा विविध शक्तियो का अचित्य पुञ्ज इसमे है।

श्रीनवकार का सबसे बडा बल यह है कि यह अपने दुश्मनो का नाश करता है। वास्तविक रूप मे अपने दुष्ट मन के सिवाय अपना कोई दूसरा दुश्मन नही है। श्रीनवकार महामन्त्र है क्योकि इसके द्वारा मन की दुष्टता दूर होती है।

केवल अपनी बाह्य सुख सुविधा का विचार करने वाला आराधक विश्व-हित की भावना वाले श्रीतीर्थंकरदेव या उनके मार्ग पर अप्रमत्ततापूर्वक चलने वाले अन्य परमेष्ठि भगवन्तो के साथ किस तरह भाव-सम्बन्ध स्थापित कर सकता है?

महामन्त्र श्रीनवकार की शरणागति स्वीकार किये बिना मनरूपी पवन के तूफान के बीच अन्तर की भूमि मे सर्व जीवो के हित के भाव बीज का मूल कैसे डाला जा सकता है?

श्री नवकार मन्त्र के बीज से वासित अन्य मन्त्रो की उपासना फलदायिनी होती है, अन्यथा निष्फल होती है, ऐसा श्रीसर्वज्ञ शास्त्रो का कहना है।

रत्नो से भरे सन्दूक का वजन बहुत कम होता है, परन्तु कीमत अधिक होती है। इसी प्रकार श्रीनवकार मन्त्र शब्दो मे छोटा है, किन्तु अर्थ से अनन्त है और सिद्धान्त से प्रमाणभूत है।

मोक्ष मार्ग बताने वाले श्रीअरिहत, अविनाशी सुख के भोक्ता श्रीसिद्ध भगवन्त, पचाचार के पालन मे समर्थ आचार्य, विनय-रत्न की खान उपाध्याय और मोक्ष साधना मे सहायक साधु, ये पच परमेष्ठि जगत् मे सब गुणो के भण्डार है।

ससार मे एक तरफ पाच विषय हैं और दूसरी तरफ पच परमेष्ठि हैं। पच परमेष्ठियो के प्रति भक्ति से पाँचो विषयों का राग दूर हो जाता है।

श्रीअरिहंत की वाणी का श्रवण करने से 'शब्द' नाम का विषय, श्रीसिद्ध भगवान् के शाश्वत रूप के ध्यान से 'रूप' नाम का विषय, श्रीआचार्य के पंचाचार की सुगन्ध से 'गन्ध' रूप विषय, श्री उपाध्याय के ज्ञानामृत के रसास्वाद से 'रस' रूप विषय और मुक्ति की साधना मे लीन साधु महाराज के स्पर्श से 'स्पर्श' रूप विषय जीतने का बल प्रकट होता है।

श्रीअरिहंत के ध्यान से ज्ञानाचार की, श्रीसिद्ध भगवान् के ध्यान से **दर्शनाचार** की, श्री आचार्य की आराधना से **चारित्राचार** की, श्री उपाध्याय की आराधना से **तपाचार** की, और साधु महाराज की आराधना से **वीर्याचार** की शुद्धि होती है।

श्रीअरिहंत प्रभु की भक्ति से **उपशम** गुण की, श्रीसिद्ध भगवान् की भक्ति से **सवेग** गुण की, श्री आचार्य महाराज की भक्ति से **निर्वेद** गुण की, श्रीउपाध्याय महाराज की आराधना से **अनुकम्पा** गुण की और श्री साधु महाराज की भक्ति से **आस्तिक्य** गुण की प्राप्ति होती है।

श्रीपंच परमेष्ठि भगवन्त अनन्त गुणो के निधान है। उनमे भी पाच गुण तो विशेष माननीय हैं। सर्व जीवो को शासन रसिक बनाने की उत्कृष्ट भावना वाले श्रीअरिहंत भगवान् का **औदार्यगुण**, निज स्वरूप प्राप्त कराने वाले श्रीसिद्ध भगवान् का **दाक्षिण्यगुण**, मोह-माया से छुडाने-वाले श्रीआचार्य महाराज का **पापजुगुप्सागुण**, ज्ञानामृत से भव्यात्माओं को नव-पल्लवित कराने वाले श्रीउपाध्याय महाराज का **निर्मल बोधगुण** और जीव-मात्र के प्रति दया-भाव रखने वाले साधु महाराज का **जनप्रियतागुण** भव्यात्माओ के मनरूपी भ्रमर को सदैव आकर्षित करते है।

जैसे पर्वतो मे मेरु, वृक्षो मे कल्पवृक्ष, सुगन्धियों मे चन्दन, वनो मे नन्दन, पशुओ मे सिह, पक्षियो मे गरुड, तारो मे चन्द्र, नदियो मे गगा, देवताओ मे इन्द्र, समुद्रो मे स्वयभूरमण समुद्र, सुभटो मे वासुदेव, नागो मे शेष नाग, शब्दो मे आषाढी मेघ की गर्जना, रसो मे इक्षुरस, फूलो मे अरविन्द, औषधियो मे अमृत, राजाओ मे रघुनदन, सत्यवादियो मे युधिष्ठिर, धर्मो मे दया धर्म, व्रतो मे ब्रह्मचर्य व्रत, तपो मे सत्य, दानो मे अभयदान श्रेष्ठ है उसी तरह सर्व मन्त्रो मे श्रीनवकार मन्त्र सारभूत और श्रेष्ठ है। इसके उपकार का वर्णन हजारो मुँह से भी कोई करने में समर्थ नही है।

वात, पित्त और कफ इन तीनो मे से किसी भी प्रकृति वाले मनुष्य के लिये श्रीनवकार का ध्यान लाभप्रद है। ज्ञान वात दोष को जीतता है, दर्शन पित्त दोष को जीतता है, और चारित्र कफ दोष को जीतता है, श्रीनवकार मे ये तीनो वस्तु हैं, इसलिये सम्यग् ज्ञान, दर्शन और चारित्र स्वरूप श्रीनवकार अमृत के समान है।

सूर्य की किरणो की सर्व शक्ति श्रीनवकार के अक्षरो मे है, सूर्य की किरणे वर्ण द्वारा जो असर करती है उससे अधिक और अच्छी असर श्रीनवकार ध्वनि द्वारा करता है।

सम्पूर्ण विश्व मे श्रीपच-परमेष्ठी उपकारी है। इनमे भी श्रीअरिहतदेव परम उपकारी है, क्योकि परमोपकारी श्री-अरिहतदेव जगत् के जीवो के लिये धर्म तीर्थ की स्थापना कर धर्म मार्ग का बोध कराते है। सारे विश्व मे सब काल मे सर्व जीवो के हितचिंतक होने से वे सबके लिये परम पूज्य हैं।

आत्महित साधने वालो के जीवन मे श्रीअरिहत देव केन्द्र

स्थान मे हैं, सब कर्मो से मुक्त होने का महान् ध्येय यदि सिद्ध करना हो, तो उसके लिये अति पुष्ट आलम्बन चाहिये और ऐसा आलम्बन केवल श्रीअरिहतदेव है।

यदि जीवन को सार्थक बनाना हो, मानव जन्म के समय का और मानव शक्तियो का सदुपयोग करना हो तो मोक्षमार्ग-रूपी धर्म के दाता श्रीअरिहतदेव को जीवन के केन्द्र स्थान मे रखना चाहिये।

श्रीअरिहतदेवो मे एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उनके बताये मार्ग पर चलने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसी तरह इनका नाम स्मरण, दर्शन और ध्यान करने से कर्मो का क्षय होता है, आत्मगुण प्रकट होते है और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

श्रीतीर्थङ्कर पदवी, आचार्य, उपाध्याय और साधु अवस्था का अन्त है, परन्तु यदि कोई बिना अन्त वाला शाश्वत पद है तो वह सिद्ध पद है। यह सिद्ध पद इस नवकार की आराधना का अन्तिम ध्येय है।

श्रीनवकार महामन्त्र है। इतना ही नही, परम शास्त्र भी है। अरे! परम शास्त्र है, इतना ही नही, सर्व शास्त्रो मे शिरोमणि महा-शास्त्र है।

श्रीनवकार भावधर्म का बीज है, तथा भावधर्म से प्राप्त होने वाले सुखो का बीज है, जिसके द्वारा स्वर्ग तथा मोक्ष के दुर्लभ सुख भी सुलभ बन जाते है। श्रीनवकार से अन्य सुखों की प्राप्ति अथवा साधारण दुखो की निवृत्ति न हो, यह कल्पना करना ही ठीक नही है।

श्रीनवकार मन्त्र के नव लाख जाप से नरक गति का निवारण होता है। इसलिये हे भव्य ! तू हमेशा शुद्ध मन से इसका जाप कर।

श्रीनमस्कार महामन्त्र के सतत स्मरण, जाप और ध्यान से अन्तरात्मा मे माध्यस्थ्य भावना की लहरे उठने लगती है।

श्रीनवकार की प्रतिज्ञा है कि 'मेरे आश्रित के सर्व पापों का मुझे नाश करना है'। इस प्रतिज्ञा को झूठी करने वाला आज तक कोई नही हुआ। इसको झूठा साबित करने वाला स्वय झूठा सिद्ध हुआ है।

श्रीनवकार के अडसठ अक्षर मोक्षनगर के अडसठ प्रतिनिधि है। उनके साथ मत्रणा एकान्त मे गुप्त रूप से करनी चाहिये।

श्रीनमस्कार महामन्त्र की प्राप्ति होना चक्रवर्ती और इन्द्र के पद को प्राप्त करने से भी ज्यादा महत्व की वात है।

जिस तरह दिन की थकावट को रात्रि हर लेती है, उसी तरह अशुभ विचार से उत्पन्न शरीर की, मन की और इन्द्रियों की थकावट श्रीनवकार हर लेता है।

सव शुभ प्रयत्नो की सिद्धि पच परमेष्ठि नमस्कार महामन्त्र की अर्थभावना मे है। महामन्त्र के अर्थ की भावना सर्व सिद्धियो का वीज और सर्व अनुष्ठानों का भी प्राण है।

जाप द्वारा परमेष्ठि नमस्कार को हृदय मे विठाने के वाद कोई अशुभ भाव वहा नही रह सकता।

श्रीनवकार के प्रत्येक अक्षर से निकलने वाले प्रकाश को आत्म-व्यापी वनाओ। इससे अज्ञानरूपी अन्धकार आत्मा से अपने आप भाग जायगा।

श्रीपरमेष्ठि नमस्कार हमेशा सबका कल्याण करने को तैयार है। सिर्फ आत्मा को अपने कल्याण का उत्तरदायित्व उस पर छोड देना चाहिये और बिना विघ्नबाधा के उसे काम करने देना चाहिये।

अनेक दु खो से पराजित ससारी जीव के लिये "नवकार" सर्वमन्त्रो मे प्रधानमन्त्र है, सर्व ध्येयो मे श्रेष्ठ ध्येय है, और सब तत्त्वो मे परम-पवित्र तत्त्व है।

ज्ञानी बनना हो तो नमस्कार की शरण मे जाओ, लयलीन बनो। चौदह पूर्व के सार भूत नवकार मे जो प्रयत्न करता है, वही चौदह पूर्व के रहस्यो को समझने योग्य बनता है।

सर्वतोमुखी विकास साधने की, सुखी बनने की, आपत्तियो को दूर करने की और सब मनोरथो को सफल बनाने की जो क्षमता नमस्कार मे है वह मेरे लिये और कहीं नही है।

जिस नवकाररूप द्वीप पर मैं खडा हूँ, उस पर चाहे जितने भव समुद्र के तूफान आवे, वे मेरा कुछ भी अनिष्ट नही कर सकते, बल्कि वे बेचारे तूफान उस द्वीप से अथड़ाकर छिन्न-भिन्न हो जायगे।

जीवन की प्रत्येक दिन की तीन संध्याओ मे तुम १०८ नवकार में अपने आपको इस प्रकार समर्पण करो कि उस समय तुम नमस्कार के ध्यान के अलावा दूसरा कुछ भी न कर सको। छै माह के नियमित एकाग्र ध्यान के बाद देखोगे कि तुम्हारा जीवन पवित्र और शान्तिमय बन जायगा और तुम्हारी इच्छाएँ तुम कल्पना भी न कर सको उस तरह सफल होने लगेगी।



साधन मार्ग में पथ्यापथ्य

जीवन मे श्रीनमस्कार महामत्र की साधना करना अहकारादि आत्मिक रोगो को टालने को एक औषधि है। प्रत्येक औषधि के पथ्य और अपथ्य दोनो होते है। पथ्य पालन से औषधि शीघ्र और अनेकशः गुणकारी बनती है। इसके विपरीत अपथ्य के सेवन से गुणकारी तो नही होती परन्तु कई बार उलटा असर कर जाती है। इसलिये पथ्यापथ्य का विवेक कर अपथ्य के सेवन से दूर रहकर पथ्य पालन मे साधक जितना अधिक तत्पर बनता है, उतना ही वह साधना के मार्ग मे अधिक प्रगति कर सकता है। पथ्य मे तत्पर बनना, यह प्रत्येक विवेकी साधक का परम कर्त्तव्य है।

बाहर के विघ्न

साधक को दो प्रकार के विघ्न होते है। एक बाहर के और दूसरे अन्दर के। बाहर के विघ्नो मे मुख्य विघ्न कुससर्ग है। कुससर्ग अर्थात् बुरे आदमियो की सगति, खराब पुस्तको का पढना, बुरी बातो को देखना, बुरे वचन बोलना, बुरे सगीत सुनना और बुरे विचारो का लाना।

वैराग्य को, शांत रस को और सात्विक रस को पुष्ट करने वाली वीतराग पुरुषो की मुद्राए, उनके वचन, उनकी अद्भुत कथाए और उत्तम सगीतादि जिस तरह उत्तम सात्विक भावों को जागृत करते है, उसी तरह बुरे आलबनों से बुरी असर होती है। इस सम्बन्ध मे योग शास्त्र के नवे प्रकाश मे बताया गया नीचे का मतव्य खास उपयोगी है

'नासद्ध्यानानि सेव्यानि, कौतुकेनापि किन्त्विह ।
स्वनाशायैव जायन्ते, सेव्यमानानि तानि यत् ।।'

कुतूहलवृत्ति से या परीक्षा करने के वहाने जैसे 'मैं परीक्षा करके देखूँ कि इससे मेरे ऊपर क्या असर होता है ?' अथवा "मुझ पर कोई असर नही होता" इस तरह कुतूहलवृत्ति से भी असद् आलवन का परिचय नही करना, क्योंकि इसमे स्वय का नाश ही होता है।

मनुष्य का मन पानी के समान है। वह जिसके ससर्ग मे आता है उसके माफिक बन जाता है। बुरे ससर्ग से बुरा बनता है और जब अरिहतादि पचपरमेष्ठियों के ससर्ग मे आता है, तब उनके जैसा बनता है। इस प्रकार वस्तु स्थिति होने से, मन को बुरे ससर्ग से बचाना चाहिये और अच्छे ससर्ग में लगाना चाहिये।

दुराचारी मनुष्य अधिकाश मे बुरे ससर्ग से ही दुराचारी बनता है।

बड़े बड़े अपराधों की उत्पत्ति अनुक्रम से इस प्रकार होती है काम से क्रोध, क्रोध से मोह, मोह से स्मृतिभ्रश, स्मृतिभ्रंश से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से पापाचरण उत्पन्न होता है। परन्तु इन कामादि का भी मूल कारण तो बुरा ससर्ग ही है।

काम-क्रोधादि दुर्गुण तथाविध कर्मोदय से प्रत्येक के अन्दर होते हैं। परन्तु पवन जैसे अग्नि को प्रज्वलित करता है वैसे कुसंसर्ग काम-क्रोधादि को उत्तेजित करता है।

बुरी बातें सुनना, बुरी वस्तुएं देखना, बुरे गीत गाना,

अपशब्द बोलना, बुरी चाल चलना, बुरी तरह बैठना, बुरे संकल्प विकल्प करना आदि भीतर के छिपे हुए दोषो की और विघ्नो की वृद्धि करते है। त्रिभुवनपति श्रीतीर्थंकर परमात्मा भगवान् श्रीमहावीरदेव आदि महापुरुषो को भी भीतर के शत्रुओं के साथ घोर युद्ध करना पड़ा था, तो फिर दूसरो का तो कहना ही क्या? जो उनके पैरो की रज की भी बराबरी नही कर सकते, वे खराब ससर्ग मे रहकर दोषो को जीतने की बडाई करे, यह कैसे हो सकता है?

इसलिए बुरे ससर्ग का त्याग कर अच्छे ससर्ग मे रहना, साधना मार्ग की सबसे पहली शर्त है।

सदाचारी पुरुषो के बीच रहने मात्र से अनेक पापात्माओ का भी उद्धार हुआ है। साधना मार्ग मे यह उत्तम प्रकार के पथ्य का पालन अति आवश्यक है और कुससर्ग मे रहना सबसे बड़ा कुपथ्य है, जो त्याग करने योग्य है। कारण कि बाहर का सबसे बडा विघ्न यही है।

आंतरिक विघ्न

(१) काम

आतरिक विघ्नो मे काम सबसे पहला विघ्न है। काम-वासना अनेक दोषो की उत्पत्ति का स्थान है। शिकार, जुआ, सुरापान, परनिन्दा, बुरी स्त्रियो का सग, हल्के स्तर के गीत, नृत्य आदि का शौक और अयोग्य स्थान मे घूमना फिरना। ये सब बुरी आदतें कामी पुरुषो की वृत्ति मे होती हैं।

उत्तम सदाचारी पुरुषो के मध्य मे विनम्र भाव से रहना

तथा ब्रह्मचर्य की नौ वाड़ो का पालन करना, यह कामवासना पर अधिकार करने का सरल उपाय है, तथा निम्न लिखित विचारो का परिशीलन भी कामवासना पर विजय प्राप्त करने मे परम सहायक है

(१) सर्व विश्व के प्रति मैत्रीभाव रखना। स्त्री जाति के प्रति मातृभाव रखना। माता सम्बन्धी विचार पवित्रता कायम रखने के लिये प्रबल प्रेरणादायक है।

(२) आध्यात्मिक जीवन के विकास के लिये अखण्ड ब्रह्मचर्य की अति आवश्यकता है। ब्रह्मचर्य यह उत्तम तप है।

(३) शरीर आत्मा का मदिर है, इसलिये उसे पवित्र रखना चाहिये। ब्रह्मचर्य का पालन ही शरीर को पवित्र रखने का उपाय है।

(४) अधिक मादक भोजन कामोत्तेजक है। कठोर शय्या और समय पर शयन यह ब्रह्मचर्य के लिये सहायक है। उप-वास और उणोदरी भी इसमे सहायक है। आसन, मुद्रा और प्राणायाम बुरे विचारो को नही आने देते।

(५) रागजनक पदार्थो पर प्रेम वासना मानी जाती है और इसी प्रेम को वीतराग की तरफ लगाना शुभ भावना मानी जाती है। वासना सब दुर्गुणो की जड है और शुभ-भावना सब गुणो की जननी है। इसलिये अयोग्य स्थानो से प्रेम को हटाकर उसे प्रभु की तरफ लगाने का प्रयत्न करना चाहिये। इसके बिना भयकर दोषो को जीतना अशक्य है। इस प्रकार प्रेम का रूपान्तर करना, यह काम को जीतने का उत्तम से उत्तम उपाय है और इससे आत्मिक आनन्द का भी अनुभव होता है। आत्मिक आनन्द का अनुभव हुए बिना विषय के आनन्द की वृत्ति पूरी तरह नष्ट नही होती।

(६) गृहस्थ साधको को भी जहा तक हो सके वहा तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये और यदि इतना न बन सके, तो सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य की भावना रखकर कम से कम स्व स्त्री मे सन्तुष्ट रहकर पर-स्त्री की अभिलाषा का त्याग तो करना ही चाहिये।

(२) क्रोध

आन्तरिक विघ्नो मे क्रोध भी एक भयकर कोटि का विघ्न है। क्रोध को जीतने का एक उपाय क्रोध से होने वाले अनर्थो की विचारणा करना है। बारम्बार अनुप्रेक्षापूर्वक विचारणा करने से धीरे-धीरे क्रोध पर विजय प्राप्त की जा सकती है। यह विचारणा निम्न लिखित रूप से की जा सकती है

(१) कोई भी दुर्गुण अकेला नही होता, उसके पीछे दूसरे अनेक दुर्गुण होते हैं। इसलिये एक दुर्गुण को जीतने से उसके साथी दूसरे दुर्गुण भी विना प्रयत्न के जीत लिये जाते है।

(२) क्रोध के साथ पैशुन्य, साहस, द्रोह, ईर्ष्या, असूया, कठोर वचन, असत्य आदि अनेक दोष रहते हैं। इसलिये एक क्रोध को जीतने से दूसरे सब दोष भी निर्बल हो जाते हैं।

(३) क्रोध से चेहरा डरावना होता है, आंखे फूलकर लाल हो जाती है, होठ फडकते है, श्वासोश्वास जोर से चलता है, अमानवीय दृश्य होता है और आकृति उग्र होती है। क्रोध से आपस की प्रीति का नाश होता है, शरीर की कांति का नाश होता है, खून का संचार तेजी से होने लगता है, ज्ञानतंतु निर्बल

हो जाते हैं, और कमजोरी बढ़ जाती है। फलत: वायु रोग, हिस्टीरिया, पागलपन, आदि अनेक रोगो की उत्पत्ति क्रोध से होती है। क्रोध से पाचनशक्ति कमजोर हो जाती है और किसी समय क्रोध से आत्महत्या या अन्य रीति से मृत्यु भी हो जाती है। इस तरह क्रोध से होने वाले अनर्थो की विचारणा करनी चाहिये।

(४) जब क्रोध आवे, तब क्रोध-जनक वस्तु या व्यक्ति से दूर हो जाना। क्रोधावेश के समय मौन रहना और क्रोध दूर होने पर ही दूसरा काम करना। क्रोध दूर होने पर गलती को स्वीकार करना और सामने वाले व्यक्ति से क्षमा मागना। क्रोध आवे, तब सौ वार इष्टदेव का नाम लेना अथवा सौ वार इष्ट मन्त्र का जाप करना। इतने समय मे प्राय: क्रोध का आवेग उतर जाता है। अपमान सहन करने की आदत डालना। नुकसान अपमान करने वाले का होता है, सहन करने वाले का नही होता। जो मनुष्य क्षमा देना सीखता है, उसे भव भ्रमण नही करना पड़ता और जो मनुष्य सहन करना सीखता है उसे बदले मे मोक्ष का अनन्त सुख मिलता है। इस तरह विचार करने से भी क्रोध पर सरलता से विजय प्राप्त की जा सकती है।

(५) नीचे की विचारणा भी क्रोध पर विजय प्राप्त करने मे उपयोगी है

(अ) अत मे विजय सत्य की ही होती है, असत्य की नही।

(ब) क्रोध की अपेक्षा प्राय. स्नेहपूर्ण नम्र वर्ताव से सोचा हुआ काम अच्छी तरह हो सकता है।

(क) जिस तरह जलते हुए तिनको से सागर का पानी गर्म

नही हो सकता, उसी तरह क्रोध से कोई भी पुरुषार्थ सिद्ध नही हो सकता।

(ख) नम्रता से कोई वात असाध्य नही। यदि किसी समय क्रोध करने का अवसर आ भी जावे, तो भी महा-पुरुषो की तरह अवास्तविक क्रोध द्वारा मात्र वाहर से क्रोध का दिखावा करना, परन्तु क्रोध के अधीन नही होना।

(ग) सतत इष्ट मन्त्र के स्मरण से भी क्रोध का नाश होता है।

(३) लोभ

आन्तरिक विघ्नो मे काम और क्रोध के वाद लोभ का नम्वर आता है। विना आवश्यकता के सग्रह करना और दूसरो को आवश्यक होने पर भी न देना, ये लोभ का लक्षण है। लोभ और तृष्णा ये दोनो एक ही कुमति मे से उत्पन्न हुए भाई-वहिन है। आकाश की तरह तृष्णा का अन्त नही, उसी तरह लोभ का खड्डा कभी नही भरता। स्वयंभूरमण समुद्र को कदाचित् दोनो हाथों से तैर कर पार किया जा सकता है, परन्तु देव गुरु की कृपा के विना लोभ सागर को तैर कर पार नही किया जा सकता। लोभवृत्ति पर विजय प्राप्त करने के लिये एकान्त मे वैठकर स्थिर चित्त से निम्न प्रकार विचारणा करनी चाहिये

मैं किस वस्तु का लोभ रखता हू ? उसकी प्राप्ति से मिलने वाला सुख कितने समय तक रहेगा ? अन्त मे उससे क्या लाभ होने वाला है ? लोभ का मूल अज्ञान है। भोग की अस्थिरता तथा वस्तु की अनित्यता का ज्ञान होते ही लोभ भाग जाता है।

पर्वत से गिरती जल धारा, ओस का विन्दु, शरद ऋतु के वादल, पानी के वुदवुदे, मृग-तृष्णा, कुपथ्य अन्न या खारा पानी आदि उपमाओ से युक्त भोग अनित्य, असार, कष्टदायक और अतृप्ति-कर हैं। आज का भोगा हुआ भोग कल स्मृति और स्वप्न-रूप वन जाता है। कामनाएं मनुष्य की कट्टर शत्रु है। तृष्णाओ की तृप्ति के लिये प्रयत्न करना जलती आग मे घी की आहुति देने के समान है। एक मनुष्य की कामना को भी ससार के सव पदार्थ मिलकर पूरा नही कर सकते। लोभ मानसिक रोग है। पुराणा व्याधि है। सन्तोष और सयम ये दोनो इसके लिये रामवाण उपाय है। छोटी से छोटी कामना को भी संयम से दवाने का प्रयत्न करना ही कामनाओ को जीतने का मत्र है।

इसके सिवाय यह भी विचारना चाहिये कि अपना जिसके विना काम नही चलता, ऐसी कितनी वस्तुओ की दुनिया मे अपने को वास्तविक जरूरत है। मध्यस्थता पूर्वक विचार करने से मालूम होगा कि आवश्यकताएँ वहुत कम है, प्राप्त वस्तुए भी जरूरी से अधिक है। सतोषी के लिये पृथ्वी पलंग है, हाथ सहारा है, आकाश छत्र है, चद्रमा दीपक है, दिशाओ का पवन पखा है, विरक्ति पत्नी है और न्यायपूर्वक प्रवृत्ति से भाग्यानुसार सहज ही जो मिल जावे वही भोजन है। वास्तव मे मनुष्य को वहुत ही थोडे पदार्थो की और वह भी अल्प समय के लिये ही जरूरत है। इस प्रकार विचार करने से लोभ वृत्ति कम होती है।

(४) मोह

मोह का कारण अविद्या है। अपनी न हो, उस वस्तु को अपनी मानना उसका नाम मोह है। मनुष्य को शरीर आदि मे

अपनेपन की बुद्धि होती है, उसका कारण मोह है। शरीर अपना हो, तो एक भी सफेद बाल को काला क्यो नही किया जा सकता? घर अपना हो, तो इच्छा हो तब तक उसमे क्यों नही रहा जा सकता?

मोह की माया कैसी अगम्य है, कि जो देखती आँख मे धूल डालकर खराब से खराब और गन्दे मे गन्दे पदार्थो को भी सुन्दर और आकर्षक तरीके से दिखाती है।

मोह अर्थात् अज्ञान। जैसे सूर्य से अन्धकार दूर होता है, वैसे ज्ञान रूपी सूर्य से ही अज्ञान अन्धकार दूर होता है। यह ज्ञान अर्थात् मै कौन हूँ? और मेरा क्या है? यह समझने लायक है। जिसे यह बराबर समझ मे आ जाता है, वह बाहर की किसी भी वस्तु मे लिप्त नहीं होता। विवेकी मनुष्य प्रारब्ध कर्म के अनुसार उचित कार्य करता है, परन्तु उसमे अपने कर्तृत्व का झूठा अभिमान नही करता, वह अपनी विवेक-बुद्धि से पूरी तरह मानता है कि अधर्म और अनीति, ये ही मनुष्य जाति के शत्रु हैं, न कि अमुक मनुष्य या वस्तु। इससे वह अधर्म और अनीति वाले आचरण से हमेशा बचता रहता है।

सिर्फ अपने अकेले के ही सुख और स्वार्थवृत्ति से मोह की अत्यन्त वृद्धि होती है। इसलिये मोह को कम करने के लिये विवेकी आत्मा निस्वार्थ प्रेम के क्षेत्र का विस्तार करता है और क्रमश. प्रेम को विश्वव्यापी बनाता है। वह अपने सुख के बजाय प्राणी मात्र के सुख को अधिक चाहता है। यही भावना मोह नाश के लिये अन्तिम और अति उग्र शस्त्र है। इससे मोह का ऐसा समूल नाश होता है कि वह फिर कभी वापिस आकर

खडा नही रह सकता। स्वार्थ का त्याग कर सम्पूर्ण विश्व के समस्त जीवो तक मैत्री भावना का विस्तार करने से आत्मा सर्वथा दोष रहित वीतरागता भी प्राप्त कर सकता है।

(५) मद

मद यानि प्राप्त वस्तु का गर्व। आत्म-निरीक्षण करने से मद या मिथ्याभिमान नही टिक सकता।

जिसे विद्या का गर्व हो, उसे विचारना चाहिये कि तू अपने स्वय के विषय मे कितना जानता है? देह के अवयवों, इन्द्रियो के कार्य, खून के बिन्दु, और रजकण, शरीर की रचना आदि सम्बन्धी कितना ज्ञान है? यदि कदाचित् है, तो भी तूने अपने प्रयत्न से यह ज्ञान प्राप्त किया या दूसरों की सहायता से? रेती का कण किसका बनता है? लोह चुम्बक लोहे को किससे आकर्षित करता है? आदि पूछने से मद दूर हो जायगा। वक्तृत्व शक्ति का गर्व हो, तो विचारना चाहिये कि तेरी यह वक्तृत्व शक्ति कहा से आई है? क्या यह हमेशा एक समान रहने वाली है? इसमे तेरा कितना हिस्सा है? और सुनने वालो का कितना हिस्सा है? भूतकाल के वक्ताओ के वक्तव्य, महान् ग्रन्थकारो के रचित ग्रन्थ और गुरुओ के आशीर्वाद आदि अनेको का इसमे कितना हिस्सा है? मागी हुई वस्तुओ का गर्व कैसे किया जा सकता है? गर्व करते समय यह भी विचार करना है कि महान् कवियों, गणित-शास्त्रियो, सत्ताधीशो, योद्धाओ, या कलाकारो का गर्व कितने समय तक ठहरता है? अपनी स्वय की शक्तियों पर अपना कितना अधिकार है? शरीर, रोग, जरा और मृत्यु पर कितना काबू है? शक्तिया, धारणाए, और आशाएं

कितनी क्षण-भंगुर है ? छोटी से छोटी शक्ति भी मनुष्य को बिना दूसरो की मदद के नही मिल सकती अर्थात् यह शक्ति कुदरत की है ? चैतन्य की सहायता बिना एक तिनका भी नही मुड़ सकता । सर्व गर्विापाया चैतन्य पर अवलंबित है । नेत्रो का तेज, मुह के वचन और मन का मन भी एक आत्मा ही है । बाकी सब माने हुए दागीनो के समान है, फिर भी उन्हे अपना मानना यह मूर्खता है । ज्ञान, समझदारी, धर्म या नीति वगैरह हो, तब भी वे अधिकांश मे दूसरो की कृपा से मिले हुए है और इसलिये वे दूसरो के है । उनका गर्व मनुष्य किस तरह कर सकता है ?

मद नाश के लिये निम्न विचारणा और उपाय भी उपयोगी है :

(१) अपने दोषो की एक सूचि बनाओ और उसे प्रति दिन लक्ष्य-पूर्वक देखते रहो ।

(२) मद से उत्पन्न होने वाले भयंकर दोषो का विचार करो । मद से उत्पन्न होने वाले दोष ये है दूसरे मनुष्यो का तिरस्कार, दूसरो को दुख देने की वृत्ति, दोष-दृष्टि, असत्य वचन, क्रोध, चिडचिडापन, ईर्ष्या, जुल्म, परेशान करने की वृत्ति, कटु भाषण, बुद्धि-नाश, उद्वेग इत्यादि ।

(३) जब प्रभु हृदय मे आते हैं, तब 'अह' बाहर जाता है और 'अहं' रूपी मद हृदय मे आता है, तब प्रभु बाहर निकल जाते है । अग्नि और जल दोनो जिस तरह एक जगह नही रह सकते, उसी तरह 'अह' और 'अर्हं' (प्रभु) एक स्थान पर नही रह सकते । दोनो के लिये एक स्थान नही, दोनो मे से एक को तो बाहर निकलना ही पडता है ।

(४) कोई भी मनुष्य क्या कभी यह कह सकता है कि मैंने मेरा जीवन बिलकुल बिना भूल के बिताया है ?

(५) जिन वस्तुओं का गर्व होता है, वे पदार्थ मृत्यु के बाद दूसरों के हो जाते है। कभी-कभी तो मृत्यु के पहले ही ऐसा हो जाता है।

(६) हर एक मनुष्य किसी न किसी विषय में तो अपने से ऊपर होता ही है। इन अथवा इसी प्रकार के अन्य विचारो से मद-ज्वर दूर होता है।

(६) ईर्ष्या

काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद की तरह ईर्ष्या भी अंदर का एक महान् शत्रु है। ईर्ष्या दीमक की तरह है। यह जिसे लागू पड जाती है, उसका धीरे-धीरे नाश करके ही चुप होती है।

ईर्ष्या को जीतने का सच्चा उपाय प्रेम है। जिन पर प्रेम होता है, उन पर ईर्ष्या कभी नही होती। जिसके हृदय मे ईर्ष्या होती है उसकी जिह्वा मे निन्दा होती ही है। इसलिये निन्दा छोडने का उपाय भी हृदय मे से ईर्ष्या को तिलांजलि देकर उसके स्थान पर प्रेम प्रकटाना यह है।

हृदय से ईर्ष्या दोष को दूर करने के लिए अपने दोषों को और दूसरो की अच्छी बातो को देखते रहना। खराब से खराब मनुष्य मे भी गुण ढूंढने की वृत्ति रखना। सच्चे दिल से जो अपनी पवित्रता और शुद्ध चरित्र चाहता है, उसे जहाँ से भी बने, वहाँ से सद्गुण ढूंढ २ कर अपने जीवन में उतारना चाहिए, इससे गुणो की स्पर्धा होती है, परन्तु ईर्ष्या नही होती।

गुणों की स्पर्धा से उन्नति होती है, और दोष-दृष्टि से अवनति होती है।

ईर्ष्यावान् दयापात्र होता है। जिन वस्तुओ को देखने से दूसरों को आनन्द होता है, उन वस्तुओ को देखकर उसे अत्यन्त उद्वेग होता है। उसके मन मे अमृत भी विष जैसा, स्वर्ग नरक जैसा; और पूर्णिमा अमावस्या जैसी लगती है, ईर्ष्यावान् जैसा दूसरा कोई अभागा नही है। विष की असर जैसी शरीर पर होती है, वैसी या उससे कई गुणी अधिक असर ईर्ष्या की मन पर होती है। ईर्ष्यालु का मन वेचैन रहता है, शरीर स्वस्थ नही रहता, मन खाली होकर निर्वल हो जाता है, किसी काम को करने की इच्छा नही होती, उसका आनन्द समाप्त हो जाता है। बहुत से क्लेशो तथा मृत्यु का मूल ईर्ष्या है। ईर्ष्या ने क्लेश कराकर कितनी ही प्रजाओ और व्यक्तियो का नाश कराया है।

जिस मनुष्य मे गुण नही होते, वही प्रायः दूसरे के गुणो की ईर्ष्या करता है, क्योकि मनुष्य का मन या तो अपने गुणो मे अथवा दूसरो के दुर्गुणो मे रस लेता है। जिनके अपने मे गुण नहीं होते, वे अधिकाश मे दूसरो के दुर्गुणो को देखा करते हैं। जो निर्वल होता है, वही दूसरे के बल की ईर्ष्या किया करता है। दूसरो के गुणो को सपादन करने की शक्ति जिसमे नही होती, वही मनुष्य दूसरो के गुणो को काट कर उसकी बराबरी करने का प्रयत्न करता है। तुच्छ और निर्वल अतःकरण मे ही ईर्ष्या का निवास होता है।

प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी काम से ख्याति प्राप्त करने लायक होता है, क्योकि सुख, वैभव, कीर्ति और ख्याति प्राप्त करने के अनेक साधन हैं। वे हर एक को अलग २ मिले होते हैं

और उनके द्वारा उन्हे ख्याति मिलती है। उनसे ईर्ष्या करना किसी तरह ठीक नही। सब अपने २ प्रारब्ध और पुरुषार्थ के अनुसार कीर्ति संपादन करते है। उनकी ईर्ष्या करना यह निरी अज्ञानता है। ईर्ष्या करने से किसी को कुछ नहीं मिलता। ईर्ष्या के बजाय गुण-दृष्टि रखने से हर एक मनुष्य से और प्रसंग से कुछ न कुछ सद्गुण प्राप्त किया जा सकता है।

महामन्त्र के साधको के लिये काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और ईर्ष्या ये छै. वस्तुये अपथ्य है, दोषो की खान है, और इसलिये ये त्याग करने लायक है। यहाँ सक्षेप मे उनका स्वरूप बताया गया है। उनके पुन पुन. वाचन, मनन और परिशीलन द्वारा हम इन दोषो की पकड़ मे से क्रमश मुक्त होने का बल प्राप्त करने मे भाग्यशाली बने।

मनुष्य शरीर मे अनेक चक्र हैं, वे चक्र यदि खुल जायँ तो अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त होती हैं।

समस्त शरीर मे सबसे अधिक महत्व का प्रदेश हृदय है। हृदय से चौदह राजलोक के साथ सबध जुड सकता है। हृदय मे एक कमल है, वह जब तक उल्टा रहता है, तब तक बुद्धि अधोगामिनी होती है, लेकिन नवकार के पदो को हृदय मे स्थापना करके उपासना करने से वह कमल ऊर्ध्व-मुखी हो जाता है और सभी चक्र भी खुल जाते है।

साधक जीवन और नियमितता

हम भविष्य मे कैसे होने वाले है, इसका वास्तविक पता दूसरो के सच्चे झूठे अभिप्राय से नही मालूम होता, परन्तु अच्छा बनने के लिये हम वर्तमान मे अतःकरण पूर्वक किस तरह का और कितनी तीव्रता से व्यवस्थित और नियमित प्रयत्न कर रहे हैं, इससे ही पता चलता है। अपना वर्तमान जीवन ही भावी जीवन की जड है। विश्व मे कोई भी कार्य अकस्मात् नही होता, परन्तु उसके वास्तविक कारण मे से निकलता हे। भाग्य भी विना कारण नही वनता, परन्तु भूतकाल के पुरुषार्थ से उसका निर्माण हुआ होता है। सच्ची दिशा मे विधि पूर्वक हुआ आज का अपना पुरुषार्थ भविष्य के अपने शुभ भाग्य का निर्माण करता है। भूतकाल अपने हाथ मे नही है और भविष्यकाल भी आज विद्यमान नही है। सिर्फ वर्तमानकाल ही अपने हाथ मे है। इसे हम जितना सुधारेंगे उतने ही हम सुरक्षित है। एक अनुभवी ने ठीक ही कहा है

गते शोको न कर्तव्यो, भविष्यं नैव शोचयेत् ।
वर्तमानेन कालेन, वर्तन्ते हि विचक्षणाः ॥

बीते का शोक न करना, भविष्य की चिन्ता नही करना। विचक्षण पुरुष तो वर्तमान के अनुसार कार्य करते हैं।

जो अपने वर्तमान को सुधारने का प्रयत्न करता है वही वास्तव मे विचक्षण है। वर्तमान काल को सुधारने के लिये नियमित और व्यवस्थित होने की वहुत आवश्यकता है।

यद्यपि सर्व प्रवृत्तियो मे नियमितता की जरूरत है, तब भी

साधक जीवन मे तो व्यवस्थितता और नियमितता की अति आवश्यकता है। आदरपूर्वक नियमित रीति से की गई छोटी से छोटी क्रिया भी महान् लाभ देने वाली हो सकती है, ऐसे अनेक उदाहरण आज भी मौजूद है। व्यवस्थित, और नियमित रीति से दृढतापूर्वक मात्र 'नमुक्कारसहिं' जैसे छोटे पच्चक्खाण की शुरूआत करने वाला भी मासक्षमण जैसी उग्र तपश्चर्या तक पहुँच सकता है। अस्खलित रीति से मात्र तीनो संध्या वारह वारह नवकार की शुरूआत करने वाले के जीवन मे करोड करोड की संख्या मे नवकार गिनने की तमन्ना जाग्रत हो सकती है।

अनियमित और अव्यवस्थित रीति से ज्यादा काम करने पर भी उसमे सिद्धि नही होती। कारण कि उसमे पूर्व-पूर्व के संस्कारो की शृंखला नहीं वनती। वारम्वार टूट जाती है और टूटने के वाद पुनः नये सिरे से प्रारम्भ करना पडता है। इसीलिये नियमित और अस्खलित लगातार की गई क्रिया का फल दश गुणा वताया गया है। एक दिन आयंविल करने से एक आयंविल का फल होता है और लगातार ज्यादा दिन तक किया जावे, तो उसका फल प्रतिदिन दश दश गुणा वढता जाता है अर्थात् अस्खलित प्रवृत्ति से हर रोज दश दश गुणी आत्मविशुद्धि वढती है। यह नियम स्वाध्याय, जप, ध्यान आदि हर एक क्रिया मे एक समान लागू होता है।

नियमित जाप के लिये पहले वतला दिया गया है, फिर भी साधक के पूरे जीवन को किस तरह व्यवस्थित वनाया जा सकता है, उसके विशेष उपाय यहा वताते है।

नियमित अभ्यास के लिये शुरूआत मे प्रतिदिन का अमुक कार्य निश्चित कर उसका समय-पत्रक वनाकर उस कार्य को चुस्ती से करने की आदत डालना चाहिये।

(१) प्रात कितनी वजे उठा ?
(२) कितना जाप किया ?
(३) कितने श्लोक पढे और याद किये ?
(४) कितने समय सत्सग किया ?
(५) कितने समय मौन रहा ?
(६) कितनी वार अब्रह्म की विचारणा की ?
(७) दूसरो का काम कितनी देर किया ?
(८) कितनी वार झूठ वोला ?
(९) कितनी वार क्रोध किया ?
(१०) कितना समय व्यर्थ मे विताया ?
(११) शास्त्रो का वाचन-श्रवण कितने समय किया ?
(१२) कुटेवो को जीतने के प्रयत्न मे कितनी वार असफल रहा ?
(१३) कौन कौन से गुणो की प्रगति की ?
(१४) कौन कौन से दुर्गुणो को छोड़े ?
(१५) कौनसी इंद्रिया अधिक शक्तिशालिनी है ?
(१६) कितनी वजे सोया ?

साधक जीवन के लिये जो उपयोगी नियम ऊपर वताये गये है, वे साधक को कितने उपकारक व उपयोगी है, यह समझने के लिये इन नियमो का यहा संक्षेप मे विवेचन करेगे ।

(१) प्रातः कितनी बजे उठा ?

Early to bed, and Early to rise,
Makes a man healthy, wealthy and wise

प्रात.काल जल्दी उठने के लिये अन्य भाषा मे भी ऊपर के अग्रेजी वाक्य के निम्न सुभाषित बहुत प्रसिद्ध है ।

राते वहेला जे सुवे, वहेला उठे वीर,
तन बुद्धि बहु धन वधे, सुखमां रहे शरीर ।

साधक को कम से कम ब्राह्म मुहुर्त मे तो उठ ही जाना चाहिये, ऐसा शास्त्र का विधान है । जाप, ध्यान आदि के लिये ब्राह्म मुहुर्त सर्वोत्तम समय है । मन विना प्रयत्न के उस समय शुभ ध्यान मे लगता है, क्योंकि उस समय विश्व का वातावरण बहुत ही पवित्र होता है, पापपरायण आत्मा तो उस समय करीव करीव ऊंधती रहती है और सब सन्त पुरुष प्राय. परम तत्व की साधना मे लीन रहते है । वातावरण पवित्र होने से अल्प प्रयास से साधक का मन परमात्मा की ओर लग जाता है ।

कितना जाप किया ?

आत्म-ज्ञान के लिये जाप यह सरल से सरल और सबसे पहेला उपाय है । वारम्वार नाम स्मरण यह जाप है । जाप अन्त मे समाधि मे परिणित होता है । हर एक साधक को १०८ मणियो की माला रखना चाहिये । मन को परमात्मा की ओर ले जाने के लिये माला चाबुक है । वैखरी और उपांशु जाप के वदले मानसिक जाप अनेक गुणा अधिक फल देता है । प्रतिदिन कम से कम १०८ वार श्रीनवकार का जाप जरूर करना चाहिये ।

नाम का प्रभाव वहुत वडा है । भगवान् का नाम लेने से मनुष्य वहुत ऊंचा चढता है । शरीर की ममता से वह छूट जाता है और भगवान् के साथ एकता अनुभव होने लगती है । शुद्ध भाव, प्रेम और दिव्य भक्ति से प्रभु का नाम लेना चाहिये । भगवान् के साथ एकता का अनुभव होने का यह सरल उपाय है ।

आँखे वन्द कर इष्ट देवता का ध्यान करना, यह भी इष्ट प्राप्ति का सरल उपाय है ।

(३) कितने श्लोक पढ़े और याद किये ?

श्रीप्रशमरति, अध्यात्मकल्पद्रुम, योगशास्त्र, ज्ञानसार, अध्यात्मसार आदि अध्यात्म शास्त्रो का अभ्यास चित्त शुद्धि और आत्म निर्मलता के परम साधन हैं। वैराग्य बोधक प्रकरण सब शास्त्रों के साराश हैं। प्रतिदिन कम से कम एक घण्टे से तीन घण्टे स्वाध्याय मे व्यतीत करना चाहिये।

(४) कितना समय सत्संग किया ?

सत्सग का प्रभाव अचित्य है। ज्ञानी, योगी, त्यागी, ध्यानी ऐसे गुणवान् पुरुषो का समागम महान् पुण्य से होता है। सत्संग का एक क्षण भी पापी से भी पापी का उद्धार करता है।

"क्षणमपि सज्जनसंगतिरेका, भवति भवार्णवतरणे नौका।"

एक वार की क्षण-मात्र की सज्जन की सगति ससार सागर को पार करने के लिये नाव वन जाती है।

सत्पुरुषो को किया गया नमन, उनको की गई सेवा और उनके उपदेशो के श्रवण से कषायवान् मनुष्य भी शीघ्र शान्त हो जाता है। सत्पुरुषो के अविद्यमानता मे महापुरुषो द्वारा प्रणीत शास्त्र-वचनो को पढ़ना, मनन करना आदि भी सत्संग ही है। किसको कौनसा वाचन लाभदायक है इसका निर्णय अनुभवी हिताकाक्षियो से करना चाहिये।

भवचक्र मे भ्रमण करते जीवरूपी मुसाफिर को सतत सत्समागम अत्यन्त दुर्लभ है। इसलिये जब जब अवसर मिले, तव तव उसका लाभ उठाकर उसे सार्थक करना चाहिये।

(५) कितने समय मौन रहा ?

वाचालता गाभीर्य का नाश करती है। विना कारण बोलने से शक्ति का दुर्व्यय होता है। आन्तरिक वातों को हर किसी को वताने से कोई लाभ नही होता। वाक्-प्रवाह वन्द होने पर ही हृदय का प्रवाह खुलता है। मौन से सकल्प-वल वढ़ता है, व्यर्थ वोलने की वृत्ति पर कावू होता है। सत्यव्रत के पालन मे और क्रोध के निग्रह मे मौन वहुत मदद करता है। प्रतिदिन कम से कम एक से दो घण्टे मौन रखना ही चाहिये। मौन के समय उच्च विचार, जाप, ध्यान अथवा स्वाध्याय आदि करना। वाहर आते आते शब्द की वहुत कुछ शक्ति कम हो जाती है, इसलिये प्रत्येक साधक को अपने इष्टदेव का जाप मौन रहकर ही करना चाहिये। मौन से किए गए जाप की असर वहुत गहरी होती है और इसी कारण आन्तरिक मूक आशीष का मूल्य वहुत आका जाता है। मौन, अल्प जरूरीयात और आत्म निरीक्षण ये तीन ऊर्ध्वगति के लक्षण है।

(६) कितनी देर ब्रह्म की विचारणा की ?

विशुद्ध ब्रह्मचर्य के विना आत्मिक प्रगति असम्भव है। वीर्य को ओजस् तक पहुँचाना चाहिए। जिन्हे आत्म निस्तार की सामान्य भी लगन है, उन्हे मन, वचन, काया से अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करना ही चाहिए, क्योकि चारित्र अर्थात् सदाचार की यह जड है।

(७) दूसरों का कितना काम किया ?

चित्त-शुद्धि के लिए तथा परामार्थवृत्ति का अभ्यास करने के लिए निःस्वार्थता से दूसरो का कार्य करने की जरूरत है।

इससे अंतःकरण निर्मल और प्रसन्न होता है। मैं करता हू, इससे मेरे को इसका बदला मिले, ऐसी इच्छा भी स्वार्थवृत्ति है। इसलिए उसे भी दूर कर दूसरो का काम करने की आदत डालनी चाहिये। परोपकार को सज्जनो की विभूति कहा है। जीवन मे ऐसी परमार्थवृत्ति को लाना सम्पूर्ण आराधना का सार है।

(८) कितनी बार झूठ बोला ?

सत्य ही विजयवन्त है, असत्य नहीं। ऐसा शास्त्रो का वचन है। सत्यवादी को किसी भी प्रकार की चिन्ता नही होती, उसका मन हमेशा शान्त रहता है, उसे सब पूज्य भाव से देखते हैं। सत्य बोलने से वाग्लब्धि और वचन-सिद्धि प्राप्त होती है। सत्य बोलो (Speak the Turth) ऐसे मुद्रालेखो को लिख रखना चाहिए। प्रमादवश कभी झूठ बोलने मे आजाय तो उसका प्रायश्चित करो। सत्यवादी बनने का यह श्रेष्ठ उपाय है।

(९) कितनी बार क्रोध किया ?

क्रोध शान्ति का शत्रु है। हृदय मे छिपी कामनाओ का यह बाह्य चिह्न है। कामना पूरी नही होती, तब गुस्सा आता है। क्षमा, प्रेम, अहिंसा का भाव रखने से और अहं-भाव के नाश से गुस्से का नाश होता है। क्षमा, प्रेम आदि उत्तेजित ज्ञान तन्तुओ को शान्त करते है। जब गुस्सा आवे, तब श्रीनवकार महामन्त्र अथवा उसका आदि पद 'नमो अरिहताण' थोडी देर तक गिनना, गुस्सेवाले स्थान को छोड देना, परमात्मा की प्रार्थना करना, उनकी क्षमा का ध्यान करना। ऐसे ध्यान से गुस्से को जीतने का बहुत बल प्रकट होता है।

(१०) कितना समय व्यर्थ खोया ?

कहे जाने वाले मित्र ही वास्तव मे दुश्मन होते है। दुनिया में नि:स्वार्थ मित्र मिलना बहुत कठिन है। जो मित्र व्यर्थ की बाते कर समय बरबाद करते हैं, ऐसे मित्रो की सगति एक दम छोड़ देना चाहिए। भीतर की अमर आत्मा की मैत्री मे ही विश्वास रखो, वह मित्र जो चाहिए सो देगा। अच्छा सग नही मिले, तो जिनको आत्म-साक्षात्कार हुआ हो ऐसे महापुरुषो के वचन जिन ग्रन्थो मे हो, उन ग्रन्थो को पढना। उत्तम सामग्री-वाले मानव-भव का एक क्षण भी व्यर्थ नही खोना चाहिए; क्योकि प्रमाद से व्यतीत किया एक क्षण भी वापिस मिलना अत्यन्त दुर्लभ है।

(११) कितनी देर शास्त्रों को पढ़ा ?

गुरु मुख से शास्त्रो के रहस्य को समझने का प्रयत्न करना ज्ञान-प्राप्ति का प्रथम उपाय है। ऐसा अवसर नही मिले, तब भी श्रीउपदेशमाला, उपमिति भवप्रपचाकथा, श्रीयोगशास्त्र, श्राद्धविधि, धर्म सग्रह, शान्त सुधारस भावना, आदि शास्त्रो का स्वाध्याय, वाचन, मनन आदि भटकते चित्त को वश करते हैं, एकाग्रता प्रदान करते है, समाधि प्रकटाते है, आत्म ज्ञान कराते है। धर्म शास्त्रो के विचार यदि मन मे बैठ जाय, तो वही एक प्रकार का ध्यान और समाधि है।

(१२) कुटेवों को जीतने में कितनी बार असफलता मिली ?

कितनो को यह भी नही मालूम कि बुरी आदते क्या है ? कितने ही बुरी आदतो को अच्छी आदते मानते है। सिनेमा देखना, बिना कारण दिन को शयन करना, अपशब्द बोलना, मदिरा, तम्बाकू, पान, बीड़ी का उपयोग, हलके

उपन्यास पढना, ये सब बुरी आदते है। हम मे कितनी बुरी आदतें है, इसका निश्चय करना चाहिए और बाद मे उनसे मुक्त होने की तीव्र इच्छा करनी चाहिए। किसी भी तरह उनका त्याग करने का प्रयास करना। एक ही झपाटे मे कुटेवो को छोड़ना तो श्रेष्ठ है, फिर भी सत्त्व के अभाव से ऐसा न हो सके, तो धीरे-धीरे छोडते जाना। कुटेवो को छोड़ने के लिये नई-नई अच्छी आदते डालना चाहिये। किसी भी कार्य को करने का सच्चा निर्णय करने के बाद वह अशक्य नही रहता।

(१३) कौनसे गुण प्राप्त किये ?

जो गुण अपने मे न हों अथवा अल्प प्रमाण मे हो, उन्हे बढाने का प्रयास करना। प्राप्त करने योग्य गुण ये हैं धैर्य, करुणा, मैत्री, प्रेम, उदारता, क्षमा, सन्तोष, समता, सरलता, प्रामाणिकता, मध्यस्थता, सत्य, न्याय-निष्ठता, कृतज्ञता, परोपकारिता, तप, जप, नि स्वार्थता, सेवा-भाव, प्रसन्नता, सहृदयता, नम्रता, गुणप्रमोद, नियमितता, समर्पितता आदि।

उपर्युक्त गुणों को एक के बाद एक प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये। अधिक न बन सके, तो हर मास में एक-एक गुण को ग्रहण करने के लिये उसका चिन्तन करना। कोई भी एक मुख्य सद्गुण प्राप्त करने से उसके साथ के दूसरे गुण सहज मे आ जाते हैं। प्रतिदिन कम से कम आधा घण्टा गुणो को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये।

(१४) कौनसे दुर्गुण छोड़े ?

आन्तरिक दुश्मनो को दूर करने के लिये अच्छे गुणो की प्राप्ति के साथ-साथ दुर्गुणो को दूर करने का भी प्रयत्न करना चाहिये।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, अहंभाव, माया, असत्यता, कठोरता, वाचालता, वादशीलता, ईर्ष्यालुता, चिंतातुरता, दीनता, निर्माल्यता, लुब्धता, मूढ़ता आदि दूर करने योग्य मुख्य दोष हैं। ऊपर के सब दोषों की जड़ अहंता-ममता है। इसलिये उसका नाश करने का सतत प्रयत्न करना चाहिये। गुरुकृपा के बिना दोषों पर विजय प्राप्त करना कठिन है। इसलिये दोषों का नाश करने के इच्छुक को गुणवान् गुरुओं को समर्पित होना चाहिये। उनकी कृपा प्राप्त करने के लिये भी अप्रमत्त रहने की खास आवश्यकता है।

(१५) कौनसी इन्द्रिय अधिक बलवती है ?

सब ही इन्द्रियां बलवती है। पण्डितों को भी वे उलटे मार्ग पर ले जाती है। हर एक इद्रिय की खूब तपास करो। उसे जीतने के लिये उपवास, मौन, त्याग, शम, दम आदि उपायों का सेवन करो। इन्द्रियां मन की सहायता से ही उत्तेजित होती है। इसलिये बुरे संकल्प-विकल्पों का त्याग कर अथवा उन्हें शुभ विचारों मे परिवर्तित कर मन को जीतने का प्रयत्न करना चाहिये। मौन द्वारा इन्द्रिया और मन दुर्वल होते जाते है और अन्त मे जीते जा सकते है। इसलिये मौन का अभ्यास जीवन में बढाना चाहिये, जिससे इन्द्रियों को जीतने मे सहायता मिले।

(१६) रात को कितनी देर शयन किया ?

छै. घण्टे की नींद काफी समझी जाती है। निद्रा यदि पूरी न हो, तो कोई कार्य अच्छी तरह पूरा नहीं हो सकता। बाल, वृद्ध और रोगी को छोड़कर दूसरों के लिये छः घन्टे की निद्रा पर्याप्त है। अभ्यास से उसे भी कम की जा सकती है। जरूरत

से अधिक सोने से जड़ता वढती है और मस्तिष्क-शक्ति कमजोर हो जाती है। साधना मे आगे वढने की इच्छा वाले को नीद कम करते जाना चाहिये। रात्रि को देर से न सोना, ऊंघ की दवा न लेना, नीद नही आवे, तो भगवान् का स्मरण करते रहना। इससे दो लाभ होगे भगवान् के नामस्मरणपूर्वक सोने से नीद मे भी उसकी सस्कारधारा चालू रहेगी, जिससे उत्तम स्वप्न आयेंगे तथा चित्त को प्रसन्नता का अनुभव होगा। इसी तरह प्रातःकाल भी जल्दी उठने की आदत डालनी चाहिये। आहार व निद्रा का आपस मे सम्वन्ध है; इसलिए नीद कम करने के लिए जल्दी उठना व आहार पर नियन्त्रण रखना। मादक आहार सव तरह से हानिकर है। आवश्यकतानुसार सात्विक भोजन सव तरह से हितकारी है। उणोदरी भी निद्रा को जीतने के लिए श्रेष्ठ उपाय है।

इस तरह प्रत्येक विषय मे नियमितता लाने से साधक साधना मे वहुत प्रगति कर सकता है।



स्मृतेन येन पापोऽपि जन्तुः स्यान्निश्चयतः सुरः।
परमेष्ठिनमस्कार-मन्त्रं तं स्मर मानसे॥

उत्तराध्ययन टीका

जिसके स्मरण मात्र से पापी प्राणी भी निश्चित रूप से देवगति को प्राप्त करता है, उस परमेष्ठि नमस्कार मन्त्र का आप मन मे स्मरण-रटण करो।

दोषों को जीतने के उपाय

साधना, ऊपर उठने का मार्ग है और वह अनेक विषमताओं से भरी हुई है। इसलिए उस रास्ते पर जाने के लिए बहुत सावधानी रखने की आवश्यकता है। अनादि असद्-अभ्यास के योग से चित्त की वृत्तियाँ पानी के प्रवाह की तरह स्वभाव से अधोमार्ग मे प्रवृत्त हो जाती हैं। स्वाभाविक रूप से नीचे बहता सरिता का पानी समुद्र मे मिलकर पीने योग्य नहीं रहता और अपनी मिठास खो देता है। यदि उसे उपाय द्वारा योग्य भूमि मे ले लिया जाय, तो उससे जीवनप्रद अन्न, औषधियाँ आदि उत्पन्न होती है। इसी तरह अशुभ मार्ग मे प्रवृत्त हुई चित्तवृत्तियाँ भी ससार सागर मे मिलकर अपना स्वत्व खो देती है। इसके बजाय यदि साधना द्वारा उन चित्तवृत्तियों का ऊर्ध्वीकरण किया जाय, तो उससे आत्मा को पुष्ट करने वाली, जीव की सहज शक्तियाँ प्रकट होती है। विशुद्ध हुई चित्तवृत्तियां आत्मशक्ति को प्रकट करने मे सहायक होती हैं।

विषम मार्ग पर चढने के लिये जिस तरह सीढियाँ चाहिये, हाथ मे आलम्बन चाहिए, प्रकाश चाहिए, 'मैं चढ़ सकू गा' ऐसी दृढ श्रद्धा चाहिए। 'देहं **पातयामि वा कार्यं साधयामि**' अर्थात् शारीरिक श्रम की परवाह न करके भी कार्य साधने के लिये वीर्योल्लास होना चाहिये। इसी तरह साधना मार्ग मे आगे बढने के लिये या साधना के अन्तिम छोर पर पहुँचने के लिये आचरण रूपी सीढी चाहिये, शास्त्र रूपी दीपक चाहिये, उसमे से निकलता हुआ ज्ञान रूपी प्रकाश चाहिये, गुरु रूपी हस्तावलम्बन चाहिये, साधना सिद्धि के लिये श्रद्धा का अपार

बल चाहिये, विषम परिस्थिति आने पर भी उसमे टिके रहने के लिये धैर्य चाहिये, तब ही साधना मे सफलता मिलती है।

बिमारी रहती है, तब तक अच्छे वैद्य के कहने के अनुसार बिमारो के अनुरूप दवा लेनी पड़ती है और वह बार बार लेने पर भी दोष रूप नही गिनी जाती है, उसी तरह यहा साधना मार्ग में भी उपयोगी उपायो को अलग अलग रीति से समझने का प्रयत्न करना पड़ता है। जो वस्तु नई हो, कठिन हो, दुष्कर हो, उसे कई बार अलग अलग रीति से समझा जाय, तब ही उसमे प्रवेश हो सकता है। एक ही रीति से या एक ही सपाटे मे उसमे प्रवेश या प्रगति नही हो सकती। बार बार आदर पूर्वक सतत अभ्यास से ही उसमे आगे बढ़ा जा सकता है।

चित्त की अशुद्धियों को, चित्त के दोषो को दूर करना यही साधना का मुख्य कार्य है। विधिपूर्वक की गई साधना से वे अवश्य दूर होते हैं। मल, विक्षेप, और आवरण आदि सब दोषों को दूर करने की क्षमता महामन्त्र श्रीनवकार मे है, यह बात निश्चित है। परन्तु अपने मन में महामन्त्र का प्रवेश कराने के लिये, अपने मन तक महामन्त्र को पहुँचाने के लिये और मन मे महा-मन्त्र को स्थिर करने के लिये अपने को प्रयत्न करने की जरूरत है। महामन्त्र का प्रवेश होने के बाद फिर अपन निर्भय है।

चित्त की अशुद्धियो और चित्त के दोषो की वृद्धि किन कारणो से होती है ? और कौन-कौन से उपायो से वे निर्मूल होती हैं ? उसके लिये कार्यरूप मे परिणत करने की कितनी ही बाते समझने योग्य है। साधना मे आगे बढने के लिये साधकों को उन्हे समझना उपयोगी ही नही; बल्कि अति आवश्यक भी है। उनके पुन पुनः परिशीलन और आचरण से चित्त के

दोष दुर्बल होते है। इस प्रकरण मे ऐसी कुछ विचारणा निम्न प्रकार से की जाती है:

(१) कुछ पाप किसी बुरी वस्तु को देखने और जानने से होते हैं। इसलिये बुरी और अनावश्यक वस्तुओ को देखना, सुनना वा अनुभव ही नही करना। चित्त मे दोषो के उत्पन्न होने को रोकने का यह सरल उपाय है।

(२) अति उग्र पाप का फल इसी जीवन मे ही मिलता है। चाहे वह तीन दिन, पक्ष, मास या वर्षो बाद मिले। चिन्ता, व्याधि, अपकीर्ति और दुर्गति ये सब पापो के फल हैं, अर्थात् पापाचरण दोनो लोक मे दुःखदायक है। ऐसे विचार भी पाप के बल को कम करने मे सहायक होते है।

(३) सद्गुणो से होने वाले लाभ और फायदे का विचार करना। व्यक्ति, प्रजा और राष्ट्र प्रत्येक सदाचार के सेवन से ही समृद्धिशाली बनते हैं, ये विचार सदाचरण को स्थिर करते है।

(४) मृत्यु का निरन्तर विचार करना। अपने को जिनके वचन पर विश्वास हो, ऐसा कोई आप्तपुरुष अपने को कहे कि 'तुम्हारी अमुक समय के बाद मृत्यु होने वाली है,' तो पाप करने की हिम्मत नही होगी।

एक राजा बिमार हुआ। उसके एक हितैषी ने उसे दवा के रूप मे वनस्पति का रस देना शुरू किया और राजा के साथ स्वय भी रस पीना शुरू किया। राजा को लाभ होने लगा, परन्तु जैसे जैसे फायदा होने लगा, वैसे वैसे राजा मे बुरे विचारों की वृद्धि होने लगी। इस पर राजा ने दवा देने वाले हितैषी से पूछा 'रस तुम भी पीते हो और मैं भी पीता हूँ, फिर

भी तुमको तो नही, परन्तु मुझे बुरे विचार क्यों आते हैं ? हितैषी ने इसका उत्तर बाद मे देने को कहा और साथ मे यह भी कहा कि राजन्, आज से तीसवे दिन तेरी मृत्यु होने वाली है। तू जो रस लेता है उससे भी सात गुणा अधिक रस लिया करे, तो कदाचित् तू बच सकता है। राजा ने मृत्यु से बचने के लालच मे सात गुणा रस पीना शुरू कर दिया। राजा की तबीयत भी सुधरने लगी और बुरे विचार आना भी बिलकुल रुक गये। राजा ने कारण पूछा, तब हितैषी ने कहा, तीसवे दिन आने वाली मृत्यु के भय से तेरे खराब विचार रुक गये हैं। तुमने जो मेरे को पहले प्रश्न पूछा था उसका भी यही वास्तविक उत्तर है। मैं तो मृत्यु को अपने पैरों पर ही खडी देखता हूँ। फिर रस लेते हुए मुझे पाप विचार कैसे आवे, मृत्यु सम्बन्धी निम्न श्लोक बहुत मननीय है

मरणकस्थायिनं मृत्युं, यदि पश्येदयं जनः।
आहारोऽपि न रोचेत, किमुताऽकृत्यकारिता ॥१॥

इस प्रकार मृत्यु का विचार पाप और पाप विचारो को अटकाता है।

(५) पाप विचारो और पाप कार्यो को जिन्होने जीत लिया है, उनके जीवन का सूक्ष्म बुद्धि से अभ्यास करना और जो वर्तमान मे पापो को जीतने का प्रयत्न कर रहे है, उनका सत्सग करना। अथवा दूर रहने वाले ऐसे सत्पुरुषो और उनकी सद्वृत्तियो की मन से अनुमोदना करनी। इस तरह पाप और उसके विचारो से दूर रहा जा सकता है। इसके सिवाय उत्तम पवित्र पुरुषों के साथ की मित्रता भी पापो को अटकाती है; क्योंकि सच्ची और अभिन्न मित्रता भी समान स्वभाव

वालो के साथ ही सम्भव है, जिससे जिन पर दृढ़ प्रीति होती है, उनके गुणो को ग्रहण करने और उनके समान बनने की स्वाभाविक भावनाये रहती है। उत्तम प्रकृति वाले गुणवान् महापुरुषो के पास ही हृदय की गुप्त बाते प्रकट हो सकती हैं और इससे एक विशिष्ट प्रकार का आराम मिलता है। उनके साथ का वार्तालाप गुण प्राप्त करने और अवगुण दूर करने में सहायक होता है।

(६) एक एक दुर्गुण अथवा पाप को लेकर उसके प्रति-पक्षी गुण का विचार करने से अथवा उस दोष से मुक्त हुए पवित्र पुरुषो के प्रति प्रमोद भाव धारण करने से और वैसी दशा प्राप्त करने के लिए हृदय से प्रार्थना करने से दुर्गुणो का जल्दी नाश होता है, व सद्‌गुणो की प्राप्ति सुलभ होती है।

(७) सर्वज्ञ परमात्मा के ज्ञान की उपस्थिति का विचार करना। सर्वज्ञो के ज्ञान के सामने अपने को छिपा नही सकते। अपने मन मे होने वाले सूक्ष्म से सूक्ष्म विचारो को भी विशिष्ट ज्ञानी जान सकते हैं। मनुष्य का अपना हृदय भी हमेशा वहां उपस्थित रहता है।

(८) आत्म शक्ति का विचार करना। आत्म शक्ति के सामने अन्त में पाप बल निर्बल हो जाते है। पाप मृग है और आत्मशक्ति सिंह है। हृदय मे दिव्य शक्ति मौजूद है, ऐसा जो समझता है, उसके लिये कुछ कठिन नही, उसे किसी बात का भय नही।

(९) जो बात सिद्ध नही हो सकती, उसके बारे मे विवाद करना व्यर्थ है। अपने हृदय से नही मानते हो, ऐसी दलील देकर विवाद करना वितंडावाद है। इससे हृदय की कोमल और नाजुक सद्‌भावनाओं का नाश होता है। विवाद कोए की

तरह निबोली खाने जैसा है और प्रेम कोयल की तरह आम्र की मंजरी का भक्षण करने जैसा है। केवल चर्चा के लिये ही वादी होने में दोष-दृष्टि मुख्य होती है, और तत्त्व की खोज के लिये होने वाले धर्मवाद में गुण-दृष्टि प्रधान होती है। वितंडावादी दूसरों का शुभ नहीं देख सकता और तत्त्व खोजी हर एक से गुण ग्रहण कर सकता है। व्यर्थ के वाद विवाद से किसी सद्गुण या परम तत्त्व की प्राप्ति नहीं होती। परम तत्त्व-परमात्मा मन से भी अग्राह्य है। वहाँ वाद, तर्क, युक्ति या दलीलें काम नहीं आती। परन्तु हृदय की निखालसता, श्रद्धा और रुचि काम आती है। मनुष्य की समझ-शक्ति से परे ऐसे विषयों पर निरर्थक वाद विवाद करने से मनुष्य का मन निर्बल, शंकाशील और चंचल बनता है। इसके सिवाय निरर्थक वाद से अमूल्य समय व्यर्थ जाता है। इसलिये इससे दूर रहना। परन्तु धर्म तत्त्व को जानने के लिये निर्दोष निखालस भाव से चर्चा करना, यह तो एक महान् सद्गुण है।

(१०) प्राय. हर एक मनुष्य यह इच्छा करता है कि उसकी गिनती धर्मात्मा या पवित्र मनुष्य की श्रेणी में हो। परन्तु हृदय शुद्धि के बिना धार्मिकता का मात्र बाहरी दिखावा रखने से तो धर्म की लगन हमेशा कम होती जाती है। उज्ज्वल दिखावा और नीचे काला अंत.करण छिपाने का प्रयास करने के बनिस्बत काला दिखावा और नीचे उज्ज्वल अंत:करण श्रेष्ठ है। लोगों की निन्दा या स्तुति की कोई कीमत नहीं। अन्दर से अच्छा होने वाले को भी अज्ञ लोग बुरा कहते हैं और खराब को भी अच्छा कहते हैं। इसके सिवाय मात्र बाहरी बड़े २ दिखावे से अपने को तथा दूसरों को भी बहुत हानि होती है। सच्चा व पवित्र आदमी दिखावा न भी करे, फिर भी वह

प्रकट हुए बिना नही रहता। शफरी की तरह नही, परन्तु रोहित मत्स्य की तरह गंभीर और अगाध जल मे रहने वाला हो, अर्थात् आत्म-सद्गुण-रूप महासागर मे रमणता करने वाला ही शम सुख का अवगाहन कर सकता है, आत्मानन्द मे मग्न रह सकता है।

(११) साधक जीवन में सहिष्णुता गुण अत्यन्त आवश्यक है। अनेक दोषो को दवाने की ताकत सहिष्णुता मे है। मानव जीवन को श्रेष्ठता के अनेक उपाय है, उनमे सहिष्णुता मुख्य है। सहिष्णुता मे एक महान् लाभ यह है कि उसमे राजी खुशी से इच्छा-पूर्वक सहन करने की कला को प्राप्त करने का अवसर मिलता है। यह अवसर मानव जीवन के सिवाय दूसरे भवो मे सुलभ नही है। इसमे भी जिसे देवाधिदेव परम सहिष्णु भगवान् महावीर परमात्मा मिले हो, उसके भाग्य की तो कोई सीमा ही नही है। यह नियम है कि रात दिन वारंवार जिस इष्टदेव का स्मरण होता हो, उस इष्टदेव के जीवन की असर उसके भक्त पर सवसे ज्यादा होती है। जैन कुल मे जन्म लेने वाले महा भाग्यशाली जीव को प्रायः माता की कुक्षि मे ही इष्टदेव की भक्ति के सस्कार जन्म सिद्ध अधिकार के रूप मे माता से मिलते है। माता जैसा ध्यान करती है, वैसा उसका असर गर्भ के वालक पर होने लगता है और उससे उसकी प्रकृति के साथ इष्टदेव का सम्बन्ध हो जाता है। उत्तम कुल मे जन्म लेने मात्र से ही, कुल के लम्बे समय से चले आते कितने ही उत्तमोत्तम शुद्ध सस्कारो की पूंजी अनायास मिल जाती है, जो संस्कार-धन दूसरे लाखो उपायो से भी नही मिल सकते। इसीलिये उत्तम जाति और उत्तम कुल का महत्त्व है। सुनते हैं कि भगवान् महावीर के अनेक भक्त भूतकाल

ने सब से अधिक सहिष्णु हुए हैं। वर्तमान मे भी प्रभु शासन में अनेक सहिष्णु महापुरुष और महा सतिया देखने को मिल सकती है। यह प्रभु महावीर के पवित्र सस्कार की अपने को देन है।

सहिष्णुता जीवन मे पल पल पर उपयोगी एक महान् सद्गुण है। सहिष्णुता न हो, तो जगत् का एक भी व्यवहार सुख-पूर्वक नही चल सकता। ससार के बडे बड़े विग्रहो का बीज असहिष्णुता है। असहिष्णुता कायरता है, निर्बलता है, अकुलीनता है, और आत्म विश्वास के अभाव को सूचित करता है। परस्पर मे सहन करने मे बड़े शौर्य और प्रेम की जरूरत होती है। जीवन मे सहिष्णुता जैसा उपकारक और शाति-स्थापक परिबल दूसरा कोई नही है। सुख-दु.ख, मान-अपमान, शोक-मोह आदि आवेगो को दूर करने की ताकत सहिष्णुता मे है। सहिष्णुता किसी भी सयोग मे अडिग और कर्त्तव्यपरायण रहने की एक महाकला है और अक्षुब्ध रहने की एक महान् आत्म-शक्ति है। प्रेम से जगत् मे दिग्विजय हो सकती है, इस सूत्र की यह व्यावहारिक प्रक्रिया है। सहिष्णुता आत्मा का खमीर है और आत्मा की शक्ति रूप होने से उसकी ताकत भी अपार है। सहिष्णुता सन्मानपूर्वक क्षमा का दान है। क्षमा मागने मे जिस तरह नम्रता और सरलता की जरूरत होती है, उसी तरह क्षमा देने मे—दूसरों की बात को बरदाश्त करने मे, दूसरो की भूल को सह लेने मे सहिष्णुता गुण की जरूरत होती है। इसलिये सहिष्णुता एक विशिष्ट प्रकार का दान भी है। महापुरुषो को 'सर्वसहा' की उपमा दी जाती है, उसका मतलब भी सहिष्णुता ही है। सबको सहन करने और अपने स्वत्व से चलायमान न होने, अर्थात् अपने कर्तव्य को न भूलने की अडिग आत्मशक्ति सहिष्णुता है।

सहिष्णुता अभ्यास से प्राप्त की जा सकती है। उसे प्रतिदिन जीवन मे उतारने का प्रयत्न करना जरूरी है। जीवन मे प्रेम और करुणा का वल वढने से सहिष्णुता सहज ही वनती है। प्रेम तथा करुणा का वल भगवान् की अनत करुणा और भगवान् के अनन्त वात्सल्य का विचार सुदृढ करने से सुलभ होती है। इसलिये प्रति क्षण इष्टदेव के मगल नाम का स्मरण चालू रखना चाहिये, जिससे मगल नाम के स्मरण से प्रति क्षण अपने चित्त मे भगवान् की करुणा और भगवान् के वात्सल्य की सतत जागृति रह सके। दिन रात की धर्म करणी मे भी यह धर्म कार्य को वताने वाले निष्कारण वन्धु अरिहत भगवान् ही है, ऐसा उपयोग होने पर ही तो यह क्रिया लक्ष्य पूर्वक होती है। धर्म क्रिया भी परमात्मा के ध्यान का ही मगलमय एक प्रकार है। इस प्रकार के वारवार अभ्यास के वल से जव परमात्मा हृदय मे निवास करते हैं तव साधक को चारो तरफ से सव तरह की सिद्धिया अपने आप प्राप्त होती है।

मन है तव तक सङ्कल्प-विकल्प है, और मन के ये सङ्कल्प-विकल्प ही सर्व दु खो की जड हैं। इसलिये मन पर विजय प्राप्त करना जरूरी है। अमनस्कभाव यानी उन्मनीभाव की प्राप्ति होने से मन पर विजय प्राप्त होती है, और तमाम सङ्कल्प-विकल्पो का तथा उनसे उत्पन्न सर्व दु खो का भी अन्त आ जाता है।

जीवन मे श्रीनमस्कार महामन्त्र की भावपूर्वक सतत अराधना ही अमनस्क दशा रूप परमानन्द की प्राप्ति का सरल और सहज उपाय है।

संक्षिप्त दिनचर्या गर्भित हित शिक्षा

(१) चेतन! अनादि मोह निद्रा का त्याग कर और जल्दी उठ। स्वस्थ होकर साध्य और साधक दशा का स्मरण कराने वाले महामंगलमय श्रीपंच परमेष्ठि नमस्कार महामन्त्र का स्मरण कर। पूर्व-कालीन पवित्रतम महापुरुषों तथा सत्य और शीलगुण के प्रकर्ष से समस्त संसार को उज्वल बनाने वाली महासतियों के नाम स्मरण से अपनी आत्मा को पावन कर।

(२) भावमल को दूर करने के लिये और आत्मा को भाव आरोग्य का व्यायाम देने के लिये, ओ! योगिकुल के उत्तराधिकारी! जिसमें सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, गुरुवंदन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, और पच्चक्खाण, ये छै आवश्यक रहे हुए है, उस आवश्यक क्रिया-प्रतिक्रमण को तू विधिपूर्वक कर। साधको के जीवन विकास के लिये समस्त योग इस क्रिया मे एक ही स्थान पर अनन्त उपकारी श्रीगणधर भगवान् ने कुशलता पूर्वक समाविष्ट कर दिये हैं। इसलिये यह आवश्यक क्रिया सामान्य वस्तु नही है, परन्तु योग और अध्यात्म मार्ग का सब रहस्य इसमे भरा हुआ है। ऐसी सर्वांग-सुन्दर और सरल प्रक्रिया की बारम्बार प्राप्ति होना जीव को भवचक्र मे अति दुर्लभ है। इसलिये उसे तू सफल कर।

(३) अज्ञान के गहरे अन्धकार को दूर करने के लिये, हे आत्मन्! आत्म-चक्षु को खोलने वाले स्वाध्याय का तू श्रद्धापूर्वक अभ्यास कर। दिन-दिन वृद्धि पाने वाले अनुप्रेक्षा स्वाध्याय से तेरे मे नवनवोल्लेखशालिनी अपूर्व प्रतिभा प्रकट होगी, जिसके योग से तुझे बुद्धि से भी अगम्य और अलौकिक

तत्वों का साक्षात्कार होगा, परम तत्त्व को प्राप्त करने के लिये तेरी श्रद्धा अति दृढ होगी, जगत् के तमाम जीवो के साथ तुझे आत्मसमदर्शित्व प्राप्त होगा, दु खियो के दु ख दूर करने की इच्छा-रूप करुणा तेरे मे स्थिर होगी, तेरा ज्ञानप्रकाश निर्मल होगा और भवसागर को स्वयं पार करने और दूसरो को पार कराने की तेरी तमन्ना अति उत्कट होगी।

(४) हे आत्मान् ! तू पुद्गलो की सेवा अनादि काल से करता आया है, इससे तू पुद्गलो मे मोहान्ध हो गया है, और तेने संसार मे भ्रमण किया है, इसलिये भव अटवी की थकान को यदि तुझे दूर करना हो, तो तू परम चैतन्य-स्वरूप देवाधिदेव श्रीवीतराग भगवान् की प्रतिमा की अष्ट प्रकारी पूजा कर। आत्मा मे लगे हुए तमाम प्रकार के सासारिक मोह और ममता के विष को दूर करने के लिये यह अष्ट प्रकारी पूजा एक अजोड जडी बूटी है। इस पूजा के एक एक प्रकार के पीछे एक-एक महान् सिद्धि छिपी हुई है। हे आत्मन् ! प्रभु पूजा करते समय तू भगवान् की आत्मा जिस भावना से भगवान् बनी है, उस तमाम जीव राशि का उत्कृष्ट कल्याण करने की अप्रतिम कल्याण-भावना को मत भूल। भगवान् की पूजा, प्राप्त सामग्री के सदुपयोग के लिये, वस्तुओ पर की मूर्छा उतारने के लिये और सद्गुणों की प्राप्ति के लिये करने की है। गुणो की लक्ष्य-पूर्वक पूजा तुझे अवश्य गुणवान् बनायगी और तेरी आत्मा मे भी करुणा आदि भावो को जागृत करेगी।

(५) इधर उधर से दूसरो से लेने की बुद्धि के कारण आत्म-धन से हीन और दरिद्र बने हुए, तथा जो कुछ मिला वही खा लेने रूप आहार सज्ञा से बिलकुल पराजित हुए हे आत्मन् !

तू अब सत्पात्र को अपनी लक्ष्मी का दान देना सीख। दीन, हीन और करुणा-पात्र जीवो पर अनुकम्पा करने मे शूरवीर बन। अब अभक्ष्य और अपेय वस्तुओ को बिलकुल काम मे न ले। तेरे दाता-गुण और अणाहारी स्वभाव को तू याद कर। पांगला और पामर मत बन। अपनी अनन्त शक्तियो को काम मे ले। दान, शील, और तप मे तेरे आत्म-तेज का प्रकाश फैला।

(६) अपना भरण पोषण तो पशु पक्षी आदि भी करते है। परन्तु तू श्रीजिनेश्वर देव के मार्ग का अनुसरण करने वाला है; इसलिये अपने स्वार्थ के खातिर अन्याय, अनीति या विश्वास--घात का आश्रय कभी न ले।

(७) ससार की पापमय विकथाओ के सुनने से रोगग्रसित तेरी आत्मा को सद्धर्म की प्रेरणा का अमृतपान कराने वाली श्रीजिनवाणी को सद्गुरुओ के पवित्र मुखकमल से अच्छी तरह उपयोग पूर्वक श्रवण कर, इसके श्रवण से तेरी सासारिक थकान दूर हो जायगी, तुझे एक प्रकार की नई ताजगी मिलेगी और सत्कार्य मे तेरा उत्साह बढेगा।

जिनवाणी तीनो काल के तीनो लोक रूपी जगत् का दर्पण है। उसमे सारे जगत् का यथार्थ प्रतिबिम्ब है, जिससे वह तुझे तेरी और जगत् की सच्ची वास्तविकता बतलायगी।

(८) आधि, व्याधि और उपाधि से भरपूर और जन्म, जरा, मरण वगैरह दुखो से भरे ससार-रूपी समुद्र मे मधुर स्रोत जैसी सामायिक करके सच्चे समता भाव का अनुभव कर। अरे भाई! ससार की प्रत्येक प्रवृत्ति मे सामायिक को मुख्य स्थान दे, जिससे तुझे शान्ति का सरस अनुभव होगा।

छः खण्ड के स्वामी चक्रवर्ती भरत महाराजा को आरिसा भवन मे केवलज्ञान हुआ, वह इस सामायिक के समतायोग का प्रभाव है। दृढ़प्रहारी जैसे महापापियो का भी उद्धार हुआ है, वह भी इस समतायोग के प्रभाव से ही। भाई चेतन! यह समतायोग ही मोक्ष का अनन्य और प्रधान कारण है। अन्य लिंग मे भी मोक्ष प्राप्त होता है, उसका भी मूल कारण समता ही है। इस लिए तू इस समतायोग की साधना अनन्य चित्त से कर।

(९) हे भाई! तुझे अनायास ही विना परिश्रम के वर्ष मे छः माह के उपवास का फल प्राप्त करना हो, तो आहार-पानी की खटपट को जल्दी समाप्त करके सूर्यास्त होने से पहले चौविहार पच्चक्खाण कर ले।

(१०) हे भाई! तुझे सच्ची आध्यात्मिक जागृति लाना है, तो उसके अनन्य साधन-भूत सन्ध्याकाल का षड़ावश्यक प्रतिक्रमण गुरु के पास जाकर कर। याद रखना—यदि तू शुभ क्रिया नही करेगा, तो पापबन्ध की प्रवृत्तिया तुझे पल-पल पर दुःख देती रहेगी, तेरा आत्म-धन लूटती ही रहेगी, ऐसा समझना।

(११) तू कैसा भाग्यशाली है कि स्वाध्याय का पुण्य अवसर तुझे फिर मिला। भाई चेतन! तत्त्वाभ्यास की अलख को तू जगा, शुभ भाव की धुन लगा और तेरी चित्त-अटवी पर अधिकार जमा कर बैठे हुए महामोहादि चोरो को स्वाध्याय-रूपी तीक्ष्ण शस्त्र से दूर हटा।

(१२) भाई! तेरा जीवन सर्वस्व कौन है? इसका तू एकान्त मे विचार कर। तू कहा से आया? तुझे कहां जाना

है ? तू क्या कर रहा है ? तुझे क्या करना चाहिये ? इनका बारम्बार निरीक्षण कर। अनादि भूतकाल में किये अनन्त देह सम्बन्धो को तू भूल जा। एक ही पवित्र ध्येय मे लग जा। अशरण शरण्य, परम कृपालु देवाधिदेव के पुनीत नाम का तू स्मरण करता रह।

(१३) चेतन ! महा चपल इन्द्रियो रूपी घोडो पर विश्वास रख उन पर तू सवार हुआ है, परन्तु लगाम हाथ मे रखना। कुटिल और चपल इन्द्रियां तुझे छल न ले, इसके लिये अप्रमत्त बन उनका दमन करना। भाई ! इन्द्रियां पुण्य-बल से मिली हैं, इसलिये उनसे तू पुण्य का पोषण और पाप का शोषण कर। वे तुझे भोगास्वाद के लिये नही मिली है, परन्तु पुद्गल के शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श के ज्ञान के लिये मिली है। उनसे तू ज्ञान प्राप्त कर ज्ञानी बनना और ज्ञान का उपयोग वैराग्य-प्राप्ति के लिये करना।

समय कम है। रास्ता लम्बा है, विघ्न बहुत हैं। मात्र श्रीपचपरमेष्ठी के प्रति भक्ति भाव ही इस थोडे समय को सार्थक करेगा, लम्बे मार्ग को छोटा बनायेगा, सब विघ्नो को दूर करेगा।

* * * *

पारस जिस धातु को छूता है उसे सुवर्ण बनाता है, उसी तरह श्री नवकार का मगल जिसके अन्त करण मे है, उसे पूर्ण मगल रूप बनाता है, सिद्धरूप बनाता है, स्व-स्वरूप बनाता है.

नमस्कार स्वाध्याय (काव्य)

(१) श्रीनवकार मन्त्र का छन्द

दोहा

वांछित पूरे विविध परे, श्री जिन शासन सार,
निश्चे श्रीनवकार नित्य, जपता जयजयकार० (१)
अडसठ अक्षर अधिक फल, नवपद नवे निधान,
वीतराग स्वयं मुख वदे, पंच परमेष्ठी प्रधान; (२)
एकज अक्षर एक चित्त, समर्या संपत्ति थाय,
संचित सागर सातनां, पातिक दूर पलाय० (३)
सकल मंत्र शिर मुकुटमणि, सद्‌गुरुभाषित सार,
सो भविया मन शुद्धशुं, नित्य जपीये नवकार० (४)

छन्द

नवकार थकी श्रीपाल नरेसर, पाम्यो राज्य प्रसिद्ध,
श्मशान विषे शिवनाम कुवरने, सोवन पुरिसो सिद्ध,
नव लाख जपता नरक निवारे, पामे भवनो पार,
सो भविया भक्तें चोक्खे चित्ते, नित्य जपीये नवकार० (५)

बांधी वडशाखा शिके बेसी, हेठल कुंड हुताश,
तस्करने मंत्र समर्प्यो श्रावके, उड्यो ते आकाश,
विधि रीते जपंता अहि विष टाले, ढाले अमृत धार,
सो भविया भक्तें चोक्खे चित्ते, नित्य जपीये नवकार० (६)

बीजोरा कारण राय महाबल, व्यंतर दुष्ट विरोध,
जेणे नवकारे हत्या टाली, पाम्यो यक्ष प्रतिबोध;

नव लाख जपता थाये जिनवर, इस्यो छे अधिकार,
सो भविया भत्तो चोक्खे चित्ते नित्य जपीये नवकार० (७)

पल्लिपति शिख्यो मुनिवर पासे, महामंत्र मन शुद्ध,
पर भव ते राजसिंह पृथ्वीपति, पाम्यो परिगल रिद्ध,
ए मंत्र थकी अमरापुर पोहोतो, चारुदत्त सुविचार,
सो भविया भत्तो चोक्खे चित्तो, नित्य जपीये नवकार० (८)

सन्यासी काशी तप साधतो, पंचाग्नि पर चाले,
दीठो श्रीपार्श्वकुमारे पन्नग, अध बलतो ते टाले,
संभलाव्यो नवकार सेवक मुख, इन्द्रभवन अवतार,
सो भविया भत्तो चोक्खे चित्तो, नित्य जपीये नवकार० (९)

मन शुद्धे जपता मयणासुन्दरी, पामी प्रिय संयोग,
इण ध्यानथी कुष्ट टल्यो ऊंबरनो, रक्त पित्तनो रोग,
निश्चेशु जपता नवनिधि थाये धर्म तणो आधार,
सो भविया भत्तो चोक्खे चित्तो, नित्य जपीये नवकार० (१०)

घट मांहि कृष्ण भुजंगम घाल्यो, घरणी करवा घात,
परमेष्ठी प्रभावे हार फूल नो, वसुधा मांहि विख्यात,
कमलावतीये पिंगल कीधो, पाप तणो परिहार,
सो भविया भत्तो चोक्खे चित्तो, नित्य जपीये नवकार० (११)

गयणांगण जातो राखी ग्रहीने, पाडी बाण प्रहार,
पद पंच सुणता पांडुपति घर, ते थई कुन्ता नार,
ए मंत्र अमूलक महिमा मन्दिर, भवदुःख भंजण हार,
सो भविया भत्तो चोक्खे चित्तो, नित्य जपीये नवकार० (१२)

कंबल संबले कादव काढ्या, शकट पांचसे मान,
दीधो नवकार गया देव लोके, विलसे अमर विमान;

એ મન્ત્ર થકી સમ્પ્રતિ વસુધા લહી, વિલસે જૈન વિહાર,
સો ભવિયા ભત્તો ચોક્ખે ચિત્તો, નિત્ય જપીયે નવકાર૦ (૧૩)

આગે ચૌવીસી હુઈ અનન્તી, હોશે વલી અનન્ત,
નવકાર તણી કોઈ આદિ ન જાણે, એમ ભાખે અરિહત,
પૂરવ દિશિ ચારે આદિ પ્રપચે, સમર્યા સમ્પત્તિ થાય,
સો ભવિયા ભત્તો ચોક્ખે ચિત્તો, નિત્ય જપીયે નવકાર૦ (૧૪)

પરમેષ્ઠી સુરપદ તે પણ પામે, જે કૃત કર્મ કઠોર,
પુણ્ડરીક ગિરિ ઊપર પ્રત્યક્ષ પેખો, મણિધર ને એક મોર,
સદ્ગુરુ સન્મુખ વિધિયે સમરતા સફલ જનમ સસાર,
સો ભવિયા ભત્તો ચોક્ખે ચિત્તો, નિત્ય જપીયે નવકાર૦ (૧૫)

શૂલિકારોપણ તસ્કર કીધો, લોહખુરો પરસિદ્ધ,
તિહા સેઠે નવકાર સુણાવ્યો, પામ્યો અમરની રિદ્ધ;
સેઠ તણે ઘર વિઘ્ન નિવાર્યા, સુરે કરી મનોહાર,
સો ભવિયા ભત્તો ચોક્ખે ચિત્તે, નિત્ય જપીયે નવકાર૦ (૧૬)

પચ પરમેષ્ઠી જ્ઞાન જ પચહ, પચ દાન ચારિત્ત,
પચ સજ્ઝાય મહાવ્રત પચહ, પચ સમિતિ સમકિત;
પચ પ્રમાદ વિષય તજો પચહ, પાલો પચાચાર,
સો ભવિયા ભત્તો ચોક્ખે ચિત્તો, નિત્ય જપીયે નવકાર૦ (૧૭)

કલશ (છપ્પય)

નિત્ય જપીયે નવકાર, સાર સમ્પત્તિ સુખદાયક,
સિદ્ધ મન્ત્ર એ શાશ્વતો, એમ જપે શ્રી જગનાયક;
શ્રી અરિહત સુસિદ્ધ, શુદ્ધ આચાર્ય ભણીજે,
શ્રી ઉવજ્ઝાય સુસાધુ, પચ પરમેષ્ઠી થુણીજે;
નવકાર સાર સસાર છે, કુશલ લાભ વાચક કહે,
એક ચિત્તે આરાધતા, વિવિધ ઋદ્ધિ વાછિત લહે૦ (૧૮)

(२)

श्री नवकार समो जगि, मन्त्र न यन्त्र न अन्य,
विद्या नवि औषध नवि, एह जपे ते धन्य;
कष्ट टल्या बहु एहने, जापे तुरन्त कोध
एहना बीजनी विद्या, नमि विनमिने सिद्ध० (१)

सिद्ध धर्मास्तिकायादि द्रव्य,
तिमज नवकार ए भणे भव्य,
सर्व श्रुतमाँ वडो ए प्रमाण्यो,
महानिशीथे भलो परि वखाण्यो० (२)

गिरि माहि जिम सुरगिरि, तरुमाहि जिम सुरसाल,
सार सुगन्धमां चन्दन, नन्दन वनमा विशाल,
मृगमां मृगपति खगपति, खगमां तारामा चन्द्र,
गंग नदीमा, अनग, सुरूपमा देवमा इन्द्र० (३)

जिम स्वयंभूरमण उदधि माहि,
श्रीरमण जिम सकल सुभट माहि,
जिम अधिक नाग माहि नागराज,
शब्दमां जलद गम्भीर गाज० (४)

रस मांहि जिम इक्षुरस, फूलमा जिम अरविन्द,
औषधमांही सुधा, वसुधा-धवमा रघुनन्द,
सत्यवादिमा युधिष्ठिर, धीरमा ध्रुव अविकप,
मगलमांहि जिम धर्म, परिच्छद सुखमा सप० (५)

धममाँहि दया धर्म मोटो,
ब्रह्मव्रतमाँहि वज्जर कछोटो;
दानमाँहि अभयदान रूडु,
तपमाँहि जे कहेवु न कूडुं० (६)

रतनमाँहि सारो हीरो, नीरोगी नरमाँहि,
शीतलमाँहि उसीरो, धीरो व्रतधरमाँहि;
तिम सवि मन्त्रमाँ सार, भाख्यो श्री नवकार,
कह्या न जाय रे एहना, जेह छे बहु उपकार० (७)

तजे ए सार नवकार मन्त्र, जे अवर मन्त्र सेवे स्वतन्त्र,
कर्म प्रतिकूल बाउल सेवे, तेह सुरतरु त्यजी आक लेवे० (८)

एहने बीजे रे वासित, होये उपासित मन्त,
बीजा पण फलदायक, नायक छे ए तन्त;
अमृत उदधि फुसारा, सारा हरत विकार,
विषना ते गुण अमृतनो, पवननो नहि रे लगार० (९)

तेह निर्बीज ते मन्त्र झूठा,
फले नहीं साहमु हुई अपूठा;
जेह महामन्त्र नवकार साधे,
तेह दोय लोक अलवे आराधे० (१०)

रतनतणी जिम पेटी, भार अल्प बहु मूल्य,
चौद पूरवनु सार छे, मन्त्र ए तेहने तूल्य,
सकल समय* अभ्यन्तर, ए पद पच प्रमाण,
महसुह खंध ते जाणो, चूला सहित सुजाण० (११)

* शास्त्र

पंच परमेष्ठि गुण गण प्रतीता,
जिन चिदानन्द मोजे उदिता;
श्री यशोविजय वाचक प्रणीता,
तेह सार परमेष्ठी गीता०(१२)

त्रिकाल आराधना का स्वरूप दर्शाने वाला सुप्रसिद्ध "अमृत वेल नामक स्वाध्याय"

(३)

(स्वामी सीमंधरा विनति, ए देशी)

चेतन ज्ञान अजुवालीये,
टालीये मोह सन्ताप रे;
चित्त डमडोलतु वालीये,
पालीये सहजगुण आप रे ।। चे ।। १ ।।

उपशम अमृत रस पीजीये,
कीजीये साधु गुणगान रे,
अधम वयणे नवि खीजीये,
दीजीये सज्जन ने मान रे ।। चे ।। २ ।।

क्रोध अनुबन्ध नवि राखीये,
भाखीये वयण मुख साच रे,
समकित-रत्न-रुचि जोडीये,
छोडीये कुमति मति काच रे ।। चे ।। ३ ।।

शुद्ध परिणामने कारणे,
चारना शरण धरे चित्त रे,
प्रथम तिहां शरण अरिहंतनु,
जेह जगदीश जगमित्र रे ।।चे।।४।।

જે સમોસરણમાં રાજતા,
ભાજતા ભવિક સંદેહ રે,
ધર્મનાં વચન વરસે સદા,
પુષ્કરાવર્ત જિમ મેહ રે; ॥ચે॥૫॥

શરણ બીજું ભજે સિદ્ધનું,
જે કરે કર્મ ચકચૂર રે;
ભોગવે રાજ્ય શિવનગરનું,
જ્ઞાન-આનન્દ ભરપૂર રે ॥ચે॥૬॥

સાધુનું શરણ ત્રીજું ધરે,
જેહ સાધે શિવપંથ રે,
મૂલ ઉત્તર ગુણે જે વર્યા,
ભવ તર્યા ભાવ નિગ્રંથ રે ॥ચે॥૭॥

શરણ ચોથું ધરે ધર્મનું,
જેહમાં વર દયાભાવ રે;
જેહ સુખ-હેતુ જિનવર કહ્યો,
પાપજલ તારવા નાવ રે ॥ચે॥૮॥

ચારના શરણ એ પડિવજે,
વલી ભજે ભાવના શુદ્ધ રે;
દુરિત સવિ આપણા નિંદિયે,
જેમ હોયે સવર વૃદ્ધિ રે ॥ચે॥૯॥

ઇહ ભવ પર ભવ આચાર્યા,
પાપ અધિકરણ મિથ્યાત રે;
જે જિનાશાતનાદિક ઘણા,
નિંદિયે તેહ ગુણઘાત રે ॥ચે॥૧૦॥

गुरुतणां वचन ते अवगणी,
गूंथीया आप मतजाल रे;
बहुपरे लोकने भोलव्या,
निंदिये तेह जजाल रे ।।चे।।११।।

जेह हिंसा करी आकरी,
जेह बोल्या मृषावाद रे;
जेह परधन हरी हरखिया,
कीधलो काम उन्माद रे ।।चे।।१२।।

जेह धन धान्य मूर्छा धरी,
सेविया चार कषाय रे;
रागने द्वेषने वश हुवा,
जे कियो कलह उपाय रे ।।चे।।१३।।

झूठ जे आल परने दिया,
जे कर्यां पिशुनता पाप रे;
रति-अरति निंद माया-मृषा,
वलीय मिथ्यात्व सताप रे ।।चे।।१४।।

पाप जे एहवा सेविया,
तेह निंदिये त्रिहुं काल रे,
सुकृत अनुमोदना कीजिए,
जिम होये कर्म विसराल रे ।।चे।।१५।।

विश्व उपकार जे जिन करे,
सार जिन नाम सयोग रे,
तेह गुण तास अनुमोदीये,
पुण्य-अनुबन्ध शुभ योग रे ।।चे।।१६।।

सिद्धनी सिद्धता कर्मना,
क्षय थकी उपनी जेह रे;
जेह आचार आचार्यनो,
चरन वर्न सिंचवा मेह रे ॥चे॥१७॥

जेह उवज्झायनो गुण भलो,
सूत्र सज्झाय परिणाम रे,
साधुनो जे वली साधुता,
मूल-उत्तर गुणधाम रे ॥चे॥१८॥

जेह विरति देश श्रावक तणी,
जेह समकिती सदाचार रे;
समकित दृष्टि सुरनर तणी,
तेह अनुमोदीये सार रे ॥चे॥१९॥

अन्यमां पण दयादिक गुणो,
जेह जिन वचन अनुसार रे,
सर्व ते चित्त अनुमोदीये,
समकित बीज निरधार रे ॥चे॥२०॥

पाप नवि तीव्रभावे करे,
जेहने नवि भवराग रे;
उचित स्थिति जेह सेवे सदा,
तेह अनुमोदवा लाग रे ॥चे॥२१॥

थोडलो पण गुण परतणो,
साभलो हर्ष मन आण रे;
दोष लव पण निज देखतां,
निर्गुण निज आतमा जाण रे ॥चे॥२२॥

उचित व्यवहार अवलवने,
इम करी स्थिर परिणाम रे,
भाविये शुद्ध नय भावना,
पाप नाशय तणु ठाम रे ॥चे॥२३॥

देह मन वचन पुद्गल थकी,
कर्म थी भिन्न तुज रूप रे;
अक्षय अकलक छे जीवनु,
ज्ञान आनन्द स्वरूप रे ॥चे॥२४॥

कर्मथी कल्पना उपजे,
पवनथी जिम जलधिवेल* रे;
रूप प्रगटे सहज आपणु,
देखता दृष्टि स्थिर मेल रे ॥चे॥२५॥

धारतां धर्मनी धारणा,
मारता मोह वड चोर रे;
ज्ञान रुचि वेल विस्तारतां,
वारता कर्मनु जोर रे ॥चे॥२६॥

राग विष दोष उतारता,
जारतां द्वेष रस शेष रे,
पूर्व मुनि वचन सभारता,
वारता कर्म नि-शेष रे ॥चे॥२७॥

देखीये मार्ग शिवनगरनो,
जे उदासीन परिणाम रे,
तेह अणछोडतां चालीये,
पामीये जिम परमधाम रे ॥चे॥२८॥

*समुन्द्र की तरग

श्री नयविजय गुरु शिष्यनो,
शिखडी अमृत वेलरे;
ऐह जे चतुर नर आदरे,
ते लहे सुजस रगरेल रे ।।चे।।२६।।

सब समझ सके ऐसी सरल और सगीतमय भाषा में त्रिकालोचित आराधना का स्वरूप महा उपकारी महोपाध्याय श्रीयशोविजयजी म० श्री ने इस स्वाध्याय मे वर्णन किया है, जिसे आराधना करने वाली प्रत्येक आत्मा को कंठस्थ कर त्रिकाल पढना चाहिये । प्रथम की चार गाथा मे पीठिका कही, पीछे की चार गाथा मे श्रीअरिहतादिक चार का शरण स्वीकारने को फरमाया । उसके बाद सात गाथा मे दुष्कृत की निंदा, पीछे की सात गाथा मे सुकृत की अनुमोदना और आखिर की सात गाथा मे शेष आराधना के स्वरूप का वर्णन किया है । इसमे वर्णित प्रत्येक शब्द प्रमादी आत्मा को जागृत करता है, तथा आराधक को जीवन किस प्रकार बिताना चाहिये, उसका स्पष्ट वर्णन किया है । इसका अर्थ इतना सरल और स्पष्ट है कि सामान्य बुद्धिवाला भी उसे पढने के साथ ही उसके भाव को समझ जाता है, फिर भी उसके भीतर के गम्भीर रहस्य को गुरुगम् से विशेष प्रयत्न द्वारा समझने की आवश्यकता है, फिर भी जब तक यह अवसर न मिले, तब तक उसके पढने मात्र से भी जैन शासन मे बताई त्रिकाल आराधना, क्या चीज है, उसका स्पष्ट खयाल आ जाता है, इसलिये इस पूरी सज्झाय को यहा स्थान दिया गया है । इस सज्झाय का पठन और मनन परम लाभप्रद है, इसलिये वारवार मनन पूर्वक पढ़ने और विचारने योग्य है ।

नमस्कार महामंत्र का गीत

(४)

मंगलमय समरो नवकार, ए छे चौद पूरवनो सार,
जेना महिमानो नहिं पार, भव जलधिथी तारणहार ॥ १ ॥
अरिहंत शासनना शणगार, सिद्ध अनन्ता सुख देनार,
सूरि पाठक मुनि गुरु मनोहर, ए पांचे परमेष्ठी उदार ॥ २ ॥
नवपद ए नवसेरो हार, हृदये धरता उतरे पार,
अड़सठ अक्षर तीरथ सार, सपद आठ सिद्धि दातार ॥ ३ ॥
सती शिरोमणि श्रीमती नार, मन शुद्धे गणती नवकार,
तेनुं दुःख हरवा तत्काल, फणीधर फीटी थई फूलमाल ॥ ४ ॥
मुनिए दीधो वन मोझार, भील भीलडी ने नवकार,
आवे जपता पूरण आय, वे जण राजा-राणी थाय ॥ ५ ॥
समलीने मरतॉ नवकार. दइ मुनिए कीधो उपकार,
राजपुत्री थई कर्यो उद्धार, सुदर्शनाए समली विहार ॥ ६ ॥
कमठ काष्ठमां बलतो नाग, देखे पार्श्वकुंवर महाभाग,
सेवक मुख दीधो नवकार, इन्द्र थयो ते नागकुमार ॥ ७ ॥
अमर कुंवर जपतॉ नवकार, महाकष्टथी थयो उद्धार,
राजा तेना प्रणमे पाय, नमस्कार महिमा फेलाय ॥ ८ ॥
पाप प्रणाशक श्रीनवकार, महामंगल छे श्रीनवकार,
विघ्न विदारक श्रीनवकार, शिवसुखदायक श्रीनवकार ॥ ९ ॥
क्षण क्षण समरो श्रीनवकार, पल पल समरो श्रीनवकार,
घडी घड़ी समरो श्रीनवकार, अहोनिश समरो श्रीनवकार ॥१०॥
ए नवकारनुं गीत रसाल, गातॉं सुणतॉं मंगल माल,
लब्धिसूरीश्वर केरो बाल, पद्म नमे कर जोडी भाल ॥११॥

धुन

(५)

१ जय अरिहंत जय भगवंत,
जय जय जय जय जय भगवंत,

२ जय वीतराग, जय वीतराग,
जय जय जय जय जय वीतराग,

३ जय महावीर जय महावीर,
जय बोलो जय जय महावीर,
पतित पावन जय महावीर,
जय बोलो जय जय महावीर,

४ अरिहंत भजो अरिहंत भजो,
अरिहंत थवा अरिहंत भजो,
भगवंत भजो भगवंत भजो,
भगवंत थवा भगवंत भजो,
महावीर भजो महावीर भजो,
महावीर थवा महावीर भजो,

५ जय वीर जय वीर जय जय वीर,
भव भय भंजन, जय महावीर ।। जय वीर ।। १ ।।
त्रिशलानन्दन महाबल धीर,
पार उतारो भवजल तीर ।। जय वीर ।। २ ।।
शरणे आव्यो छुं महाराज,
बांह्य ग्रह्यानी राखो लाज ।। जय वीर ।। ३ ।।

तुं ठाकोर हु तारो दास,
राखो तुम चरणोनी पास ॥ जय वीर ॥ ४ ॥

६ सिद्धगिरी स्वामी आदि जिणद,
कापो हमारा भवना फन्द,
देव हमारा श्री अरिहत,
त्यागी हमारा गुरु गुणवर्त,
श्री जिन भाषित हमारो धर्म,
जेहथी लहीये सुर शिव शर्म,
पहेलु शरण हो श्री अरिहत,
बीजु शरण हो सिद्ध भगवत,
त्रीजु शरण हो गुरु गुणवत,
चोथु शरण हो धर्म जयवत,

७ श्री वीर जय वीर जय जय वीर,
श्री वीर जय वीर जय जय वीर,
श्री वीर जय वीर जय जय वीर,
त्रिशला नन्दन जय महावीर,

श्री अरिहंत भक्ति गर्भित नित्य मनन करने लायक

भावना–दोहा

(६)

नित्य प्रभाते उठवु, राखी मन उमग,
धरवुं ध्यान परमेष्ठिनु, करवु निर्मल अग ॥ १ ॥
अग्नि केरा बल थकी, माखणनुं घी थाय,
अन्तरवृत्ति ध्यानथी, परमातम प्रगटाय ॥ २ ॥

अहंकार ने छोड़ीने, भजो अरिहत सार;
राग-द्वेषनां त्याग थी, पामो मोक्षनुं द्वार ॥३॥

तुज विण इण ससारमा, शरणु नहि कोई स्वाम;
तुज चरणो थी पामीये, अनन्त सुखोनुं धाम ॥४॥

जगतारण जगत्रालहो, तु जग जय जयकार;
जे तुज शरणे नित्य रहे, ते तरीया ससार ॥५॥

त्रण भुवनमा तुं वड़ो, तुम सम अवर न कोय;
इन्द्र चन्द्र चक्री हरि, तुज पद सेवे सोय ॥६॥

हु गरजी अरजी करू, तूं छे दीनदयाल;
मुझ अधमने तारवा, कर कृपा किरपाल ॥७॥

धन धन श्री अरिहत ने, जेणे ओलखाव्यो लोक;
ते प्रभुनो पूजा विना, जन्म गुमाव्यो फोक ॥८॥

द्रव्य भाव थी अति घणो, हैडे हरख न माय;
इण विध जिनवर पूजतां, शिव सपत सुख थाय ॥९॥

श्रीजिनेश्वर पूजना, उत्कृष्टे परिणाम;
करता केई जीव पामीया, स्वर्ग मोक्षनां धाम ॥१०॥

समकितने अजुवालवा, उत्तम एह उपाय;
पूजाथी तमे प्रीछजो, मन वांछित सुख थाय ॥११॥

पूजा कुगतिनी अर्गला, पुण्य सरोवर पाल;
शिवगतिनी साहेलड़ी, आपे मगल माल ॥१२॥

पूजा करतां प्राणीया, पोते पूजनीय थाय;
आभव परभव सुख घणा, तस तोले कोई न आय १३॥

भवदव दहनने वारवा, जलद घटा सम जेह;
जिन पूजा जुगते करो, पामीजे भव छेह ॥१४॥

आतम रूप निहालवा, जिन बिम्ब अनूप निदान;
आतम दरिशन आरिसो, प्रतिमा श्रीभगवान ॥१५॥
जिन प्रतिमा जिन सारीखी, भेद नहिं लवलेश;
दर्शन पूजा भक्ति थी, टाले भव भय क्लेश ॥१६॥
जिन प्रतिमा अवलंबने, तरिया जीव अनेक;
मोटे पुण्ये पामीयो, दर्शन शुद्ध विवेक ॥१७॥
जस घर जिन पूजा नहिं, नहि सुपात्रे दान;
ते किम पामे बापडा, विद्या रूप निधान ॥१८॥
करो भक्ति अरिहतनी, करो परमारथ काम;
करो सुकृत जग मे सदा, रहे अविचल धाम ॥१९॥

साचो जैन

(७)

साचो जैन तो तेने कहिये, जे जीवदया ने जाणे रे;
निर्लोभी ने कपट रहित जे, राग रीश नवि राखे रे;
मन वचन काया थी निरमल, तृष्णा ने जे जीते रे ॥साचो॥१॥
हिंसा झूठ ने चोरी छोड़े, परनारी नवि पेखे रे;
पर द्रव्य ने तृण सम माने, विषयासक्ति वारे रे ॥साचो॥२॥
समभावी ने आतमरामी, परनिन्दानो त्यागी रे;
मोह माया ने जीती जाणे, श्रद्धा हृदये धारे रे ॥साचो॥३॥
धैर्य अनुपम वाणी गम्भीर, मान निवार्यु जेणे रे;
अरिहत प्रतिमा प्रेमे पूजे, धन धन आतम तेने रे ॥साचो॥४॥

(२)

मानव जैन तो तेने कहिये, जे आत्मसम जग जाणे रे;
परहित कारण प्राणने अर्पे, परसुखमां सुख माणे रे ॥१॥

सत्य दया शान्ति उर धारे, हिंसा दोषने टाले रे,
ब्रह्मचर्य संयम वैराग्ये, अन्तरने अजुवाले रे ।।२।।
विषय कषायने दूर निवारे, प्रभु भक्तिमाँ चित्त स्थापे रे,
तन मन धन जीवनना भोगे, परनां दुखडा कापे रे ।।३।।
आशा तृष्णा ममता त्यागे, परधन हाथ न लेवे रे;
आतमज्ञान अन्तरमाँ पामे, सकल तीरथने सेवे रे ।।४।।
महावीर मूर्त्ति ने पगले चाली, धर्मदास दिल धारे रे;
आत्म स्वराज्य हृदये प्रगटावे, जय अरिहंत उच्चारे रे ।।५।।

परमेष्ठि के ध्यान से आत्मा परमात्म स्वरूप होता है—

निज स्वरूप उपयोगथी, फिरी चलित जो थाय,
तो अरिहत परमातमा, सिद्ध प्रभु सुखदाय ।।१।।
तिनका आतम स्वरूप का, अवलोकन करो सार;
द्रव्य-गुण-पज्जव तेहना, चिन्तवो चित्त मझार ।।२।।
निर्मल गुण चिन्तन करत, निर्मल होय उपयोग;
तव फिरी निज स्वरूप का, ध्यान करो थिर जोग ।।३।।
जे सरूप अरिहंतको, सिद्ध सरूप वली जेह,
तेहवो आतम रूप छे, तिणमे नहिं सन्देह ।।४।।
चेतन द्रव्य साधर्म्यता, तेणे करी एक सरूप;
भेदभाव इणमे नहिं, एहवो चेतन रूप ।।५।।

* * *

जेह ध्यान अरिहंतको, तेहिज आतम ध्यान;
फेर कछु इणमे नहिं, एहिज परम निधान ।।१।।

*

चिरंतनाचार्यकृत महामांगलिक श्री पंचसूत्र का

पहला

पाप प्रतिघात-गुणबीजाधान सूत्रम् *

महामन्त्र का जाप शुरू करने से पहले अपने अंतःकरण मे भाव की जागृति के लिए इस पुस्तक मे पहले जो सूचनाएँ दी गई है, उसमे **पंच सूत्र का पहला सूत्र प्रणिधान पूर्वक** पढ़ लेना ऐसा भी सूचित किया है। वह सूत्र अब यहा अर्थ सहित दिया जाता है। यह सूत्र कण्ठस्थ कर प्रणिधान पूर्वक दिन मे तीन बार (तीन सन्ध्या) इसका पाठ करने से आत्मा का सहज मल (कर्म के सम्बन्ध मे आने की जीव की मूलभूत योग्यता) दूर होता है और मोक्ष प्राप्ति की योग्यता दिन प्रति दिन अधिकाधिक बढ़ती है।

णमो वीअरागाणं, सव्वण्णूणं, देविंदपूइआणं, जहट्ठिअवत्थुवाइणं, तेलुक्कगुरूणं, अरुहंताणं, भगवंताणं।

*इस सूत्र का जैसा नाम है वैसा ही गुण है। इसके नित्य स्मरण पठन-मनन से अनेक भवो के संचित पाप नाश होते हैं और ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुणो के बीजो का आत्मा मे वपन होता है, जिसके कारण आत्मा अनादि कर्म मैल का नाश कर सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र का पात्र बन अजरामरपद को प्राप्त करता है। इसके विस्तृत वर्णन से एक बहुत बडी पुस्तक बन सकती है परन्तु यहा तो मात्र शब्दार्थ ही लिखा गया है।

अर्थ (प्रथम मगलाचरण) श्री वीतराग भगवान् को नमस्कार हो (ऐसा कह उनकी विशिष्टता बताते हैं कि) वे सर्वज्ञ हैं, देवो और इन्द्रो से भी पूजित हैं, (राग द्वेषादि रहित होने से) वस्तु तत्त्व के यथार्थ प्ररूपक है। तीनो लोक (स्वर्ग, मृत्यु और पाताल) के देव, दानव और मनुष्य आदि के वे गुरु है, ससार मे पुन जन्म नही लेने वाले और (ऐश्वर्यादि भाग्य-वत होने से) भगवन्त है।

जे एवं आइक्खंति—इह खलु अणाई जीवे, अणाई जीवस्स भवे, अणाइकम्मसंजोगनिव्वत्तिए, दुक्खरूवे दुक्खफले दुक्खाणुबन्धे।

अर्थ वे ऐसा कहते है कि जीव अनादि है, उनका ससार (काम क्रोधादि और उसके फलस्वरूप जन्म मरणादि) अनादि है और इस ससार के कारण भूत कर्म-संयोग की परम्परा भी अनादि है। (अब यह ससार कैसा है? वे कहते हैं कि) यह ससार दु.ख रूप है, (नये २ जन्म मरणादि होने से) उसका परिणाम भी दु ख है (एक जन्म दूसरा जन्म का कारण होने से) और वह दु ख की परम्परा रूप भी है।

एअस्स णं वुच्छित्ती सुद्धधम्माओ, सुद्धधम्मसंपत्ती पावकम्मविगमाओ, पावकम्मविगमो तहाभव्वत्ताइ-भावाओ। तस्स पुण विवागसाहणाणि-चउसरणगमणं, दुक्कडगरिहा, सुकडाणासेवणं।

अर्थ इस दु खमय ससार का विच्छेद शुद्ध धर्म से अर्थात् औचित्य, सत्कार, और विधि पूर्वक सम्यग्ज्ञान, दर्शन तथा

चारित्र गुणों के सतत् सेवन से होता है। ऐसे शुद्ध धर्म की प्राप्ति (सेवा) पाप कर्मों का विशिष्ट नाश (पुन. बन्धन न हो इस प्रकार क्षयोपशम) होने से होता है। और पाप कर्मो का ऐसा विशिष्ट नाश तथा भव्यत्व (आत्मा का उस उस प्रकार का भव्यत्वस्वभाव) और आदि शब्द से काल नियति (भवितव्यता), कर्म (अशुभ कर्मों का ह्रास साथ ही पुण्य कर्मो का उपचय) तथा पुरुषार्थ, इन पाच कारणो के अनुकूल योग से होता है। ये तथाभव्यत्व आदि को पकाने (प्रगटाने-प्राप्त करने) के तीन साधन हैं। इनमे प्रथम साधन चार शरणो का स्वीकार, दूसरा साधन (इस भव परभव मे किये हुए) दुष्कृत्यो को (भाव पूर्वक गुरु साक्षी से) गर्हा और तीसरा साधन सुकृत्यो का सेवन (तथा अनुमोदना) करना।

अओ कायव्वमिणं होउकामेणं सया सुप्पणिहाणं, भुज्जो भुज्जो संकिलेसे, तिकालमसंकिलेसे।

अर्थ इसलिये दु.ख से मुक्त होने के इच्छुक को इन उपायों को हमेशा सुप्रणिधान (निश्चय) पूर्वक सेवन करना चाहिये राग, द्वेष, काम, क्रोध आदि सक्लेश अवस्था मे वारंवार और संक्लेस आदि के अभाव मे भी वह दिन मे तीन वार तो अवश्य करना चाहिये।

अव चार शरणो के स्वीकार को विधि कहते है

जावज्जीवं मे भगवन्तो परमतिलोगनाहा, अणुत्तर-पुण्णसंभारा, खीणरागदोसमोहा, अचिन्तचिन्तामणी, भवजलहिपोआ, एगंतसरणा, अरहंता सरणं।

अर्थ ऐश्वर्यादि ऋद्धिवाले (भगवन्त), तीनो लोक के परम याने समर्थ नाथ (योग-क्षेम करने वाले रक्षक), अनुत्तर

(ऊँचे मे ऊँचा तीर्थंकर नाम कर्म आदि) पुण्य के समूह वाले (निधान), राग, द्वेष और मोह जिसके निर्मूल क्षय हो गये हैं ऐसे, अचिंत्य (विना मागे) सुख को देने के लिये चिंतामणि से भी अधिक, ससार समुन्द्र को पार करने मे नाव समान और एकान्त शरण करने योग्य, अरिहंतो की मुझे जावज्जीव अर्थात् जीऊ (मुक्त न होऊ) तब तक शरण हो ! अरिहंत मुझे शरण दो ॥१॥

तहा पहीणजरामरणा, अवेअकम्मकलंका, पणट्ठ-वाबाहा, केवलनाणदंसणा, सिद्धिपुरनिवासी, निरुवम-सुहसंगया, सव्वहा कयकिच्चा, सिद्धा सरणं ।

अर्थ तथा जिन्हो के जरा, मरण सर्वथा क्षीण हो गये हैं, कर्म रूपी कलक से रहित है, सब प्रकार की व्याबाधा (पीड़ाएँ-दुःख) जिन्होकी नाश हो चुकी है, सम्पूर्ण ज्ञान और दर्शन जिन्होको प्राप्त हो गये है, सिद्धिपुर नाम के नगर मे (मोक्ष में) रहते है, जगत् के किसी सुख से उन्हो की तुलना नही होती ऐसे अनुपम (निरुपाधिक) सुख को जिन्होंने प्राप्त कर लिया है और जो सर्वथा कृतकृत्य है, (जिनका अब कोई कर्तव्य बाकी नही रहा है), उन सिद्धो की मुझे शरण हो ॥२॥

तहा पसंतगंभीरासया, सावज्जजोगविरया, पंच विहायारजाणगा, परोवयारनिरया, पउमाइनिदंसणा, झाणज्झयणसंगया, विसुज्झमाणभावा, साहू सरणं ।

अर्थ तथा प्रशांत और गम्भीर आशय (स्वभाव) वाले, सावद्य (पाप) व्यापार से निवृत्त हुए, पच विध आचार को (ज्ञानाचारादि को) यथार्थ जाननेवाले, परोपकार करने में

निरत, पद्मकमल वगैरह की उपमावाले, शुभ ध्यान और शास्त्राध्ययन मे सतत उद्यमवाले और उत्तरोत्तर जिनके भाव विशुद्ध होते रहते है, उन साधुओ को मुझे शरण हो। (३)

तहा सुरासुरमणुअपूइयो, मोहतिमिरंसुमाली, रागद्दोसविसपरमसंतो, हेऊ सयलकल्लाणाणं, कम्मवण-विहावसू, साहगो सिद्धाभावस्स, केवलिपण्णत्तो धम्मो जावज्जीवं मे भगवं सरणं।

अर्थ तथा सुर, असुर और मनुष्य से पूजित, मोह रूपी अन्धकार को नाश करने मे सूर्य समान, रागद्वेष रूप विष को नाश करने के लिये परम मन्त्र, सब प्रकार के कल्याण की साधना मे हेतुभूत, कर्मरूपी वन को भस्म करने के लिये अग्नि तुल्य, आत्मा के सिद्ध भाव का साधक और भगवत (पूज्य) ऐसे श्रीकेवलीभाषित धर्म की मुझे जावज्जीव शरण हो। (४)

सरणमुवगओ अ एएसिं गरहामि दुक्कडं, जण्णं अरिहंतेसु वा, सिद्धेसु वा, आयरिएसु वा, उवज्झाएसु वा, साहुसु वा, साहुणीसु वा, अन्नेसु वा धम्मट्ठाणेसु, माणणिज्जेसु, पूअणिज्जेसु, तहा माइसु वा, पिइसु वा, बंधुसु वा, मित्तेसु वा, उवयारीसु वा, ओहेण वा, जीवेसु मग्गट्ठिएसु अमग्गट्ठिएसु, मग्गसाहणेसु—अमग्गसाहणेसु, जं किंचि वितहमायरिअं अणायरिअव्वं अणिच्छिअव्वं पावं पावाणुबंधि, सुहुमं, वा बायरं वा, मणेण वा वायाए वा काएण वा, कयं वा काराविअं वा अणुमोइअं वा, रागेण

वा दोसेण वा मोहेण वा, इत्थ वा जम्मे जम्मंतरेसु वा गरहिअमेअं, दुक्कडमेअं, उज्झिअव्वमेअं, विआणिअं मए कल्लाणमित्तगुरुभगवंतवयणाओ, एवमेअं त्ति रोइअ सद्धाए, अरहंत–सिद्धसमक्खं गरिहामि अहमिणं, दुक्कडमेअं, उज्झिअव्वमेअं, इत्थ मिच्छामि दुक्कडं, मिच्छामि दुक्कडं, मिच्छामि दुक्कडं ।

अर्थ इन चारो शरणो को प्राप्त कर मैं अब गुरु साक्षी से दुष्कृत की गर्हा करता हूँ, वह इस प्रकार जो अरिहतो, सिद्धों, आचार्यो, उपाध्यायो, साधुओं तथा साध्वियो के प्रति, दूसरे भी अन्य माननीय, पूजनीय (सार्धमिकादि), धर्म स्थानों, तथा माता, पिता, वन्धु वर्ग, मित्रो, या उपकारियो के प्रति, अथवा सामान्यतया सम्यग्दर्शनादि मोक्ष मार्ग को प्राप्त हुए या मिथ्यात्वादि उन्मार्ग के वश हुए सव जीवों के प्रति, तथा मोक्ष-मार्ग रूप ज्ञान, दर्शन, चारित्र मे उपकारक (साधन भूत) पुस्तकादि, जिनमूर्ति, मन्दिरादि और रजोहरणादि के प्रति तथा मोक्षमार्ग के असाधनभूत वस्तुओ के प्रति मैंने नहीं आचरने योग्य, नही इच्छने योग्य, पापस्वरूप और परम्पराओं से पाप का वंध करानेवाले, ऐसे जो कई मिथ्या आचरण, सूक्ष्म या वादर (अल्प या ज्यादा) मन से, वचन से या काया से स्वयं किये हों, दूसरो के द्वारा कराये हो, या दूसरो से किया गया अच्छा माना (अनुमोदना की) हो, वे भी राग से, द्वेष से, या मोह से, वे भी इस जन्म मे या अन्य जन्मो मे, वे सव मेरे पाप गुरु समक्ष गर्हनीय है। वे दुष्कृत्य (दुष्कार्य) है और अधर्मरूप होने से त्याग करने योग्य है। इस वात को कल्याण मित्र ऐसे गुरु भगवंतो के वचनो से मैंने जाना है और वह

सत्य है, वह मुझे श्रद्धापूर्वक रुचा है। इसलिये उन अरिहंतों व सिद्धो के समक्ष मैं उनकी गर्हा करता हूँ, ये दुष्कृत्य हैं, छोड़ने योग्य हैं, ऐसा मैंने समझा है, इसलिये ये सब मेरें दुष्कृत्य मिथ्या हो ! मेरे दुष्कृत्य मिथ्या हों ! ! मेरे दुष्कृत्य मिथ्या हो ! ! !

होउ मे एसा सम्मं गरिहा, होउ में अकरणनियमो।

यह मेरी दुष्कृत की गर्हा सम्यग् भावपूर्वक हो ! भविष्य में ऐसा दुष्कृत नही करूं, ऐसा मेरा नियम हो, अर्थात् मैं यह नियम लेता हूँ।

बहुमयं ममेअं त्ति इच्छामि अणुसट्ठिं अरहंताणं भगवंताणं, गुरूणं कल्लाणमित्ताणं त्ति।

मुझे यह वचन बहुमान करने योग्य है, मान्य है, इसलियें श्रीअरिहत भगवान् को और उनके वचनों का प्रचार करने वाले कल्याण मित्र श्री गुरुओ की ऐसी हित शिक्षा की मैं (बारम्बार) इच्छा करता हूँ।

होउ मे एएहिं संजोगो, होउ मे एसा सुपत्थणा, होउ मे इत्थ बहुमाणो, होउ मे इओ मुक्खबीअं त्ति।

ऐसे देव गुरु के साथ मेरा संयोग हो ! मेरी यह प्रार्थना सफल हो ! इस प्रार्थना मे मुझे बहुमान हो ! मैं चाहता हूँ कि इनके प्रभाव से मेरी आत्मा मे मोक्ष के बीज का बीजारोपण हो और उसके फल स्वरूप मुझे मोक्ष की प्राप्ति हो।

पत्तेसु एएसु अहं सेवारिहे सिआ, आणारिहे सिआ, पडिवत्तिजुत्ते सिआ, निरइआरपारगे सिआ।

इन श्रीअरिहंत भगवन्त और कल्याण मित्र (हितैषी) गुरुओ का सम्पर्क मिलते ही मैं उनकी सेवा करने योग्य बनूँ। उनकी आज्ञापालन के लायक होऊँ, उनकी आज्ञा-पालन मे मेरा उद्धार है ऐसी दृढप्रतिपत्तिवाला मैं उनकी आज्ञा का भक्ति बहुमान पूर्वक स्वीकार करने वाला (गुरुओ को समर्पित भाव वाला) होऊँ और निरतिचार से उनकी आज्ञा का सम्पूर्ण पालन करने वाला बनूं ।

ऐसी दुष्कृत गर्हा तथा उसके साथ साथ प्रासगिक मनोरथ कर अब सुकृत सेवन करने को कहते है

संविग्गो जहासत्तीए सेवेमि सुकडं, अणुमोएमि सव्वेसिं अरहंताणं अणुट्ठाणं, सव्वेसिं सिद्धाणं सिद्ध-भावं, सव्वेसिं आयरियाणं आयारं, सव्वेसिं उवज्झायाणं सुत्तप्पयाणं, सव्वेसिं साहूणं साहुकिरिअं, सव्वेसिं सावगाणं मुक्खसाहणजोगे । सव्वेसिं देवाणं, सव्वेसिं जीवाणं, होउकामाणं, कल्लाणासयाणं, मग्गसाहणजोगे।

सविग्न यानि मोक्ष और मोक्ष मार्ग का पक्षकार अब इस प्रकार यथाशक्ति सुकृत की सेवा रूप अनुमोदना करता हूं। सब अरिहंतो का घोर तप, जप और परिषह-उपसर्ग सहने आदि सब अनुष्ठानो की अनुमोदना करता हूँ, इसी तरह सर्व सिद्धों के सिद्ध हुए केवलज्ञानादि भावो की सब आचार्यों के पंचाचार के पालन रूप सदाचारो की, सब उपाध्यायो के सूत्र (ज्ञान) दान की, सर्व साधुओ की (और साध्वियो की) उस उस साधु क्रिया की, सब श्रावकों की (और श्राविकाओ की) मन, वचन, काया से की हुई उस उस मोक्ष करणी की, तथा सब देवो तथा सर्व जीव जो मोक्ष के लिये योग्य (चरमावर्ती) हैं और जिस कारण

विशुद्ध आशयवाले हैं, उनके मोक्ष मार्ग के साधक ज्ञान, दर्शन, चारित्र के अनुकूल, ऐसे सब योगो की मैं अनुमोदना करता हूँ।

होउ मे एसा अणुमोअणा सम्मं विहिपुव्विआ, सम्मं सुद्धासया, सम्मं पडिवत्तिरूवा, सम्मं निरइआरा, परमगुणजुत्तअरहंताइसामत्थओ।

परमगुणनिधान श्रीअरिहतों, श्री सिद्धों, साधुओ और श्री तीर्थंकर कथित धर्म, इन चारो के शरण के सामर्थ्य से यह मेरी अनुमोदना सम्यग् विधि-पूर्वक, उत्तम-निर्मल आशयवाली, सम्यग् स्वीकारवाली (जीवन से वे गुण ओत-प्रोत हों) और निरतिचार (दोष रहित) हो !

अचिंतसत्तिजुत्ता हि ते भगवंतो वीअरागा सव्वण्णू, परमकल्लाणा, परमकल्लाणहेऊ सत्ताणं।

यह दुष्कृत्य की निन्दा और सुकृत्य की अनुमोदना वास्तव मे मैं उन अरिहतो आदि के प्रभाव से ही कर सका हूँ; क्योंकि वे अरिहत वगैरह पचपरमेष्ठी भगवन्त अचिंत्य शक्तिवाले है, वीतराग है*, सर्वज्ञ है, परम कल्याण स्वरूप है और जीवो को परम कल्याण की साधना में हेतु (पुष्ट आलबन) रूप हैं।

मूढे अम्हि पावे, अणाइमोहवासिए, अणभिन्ने भावओ हिआहिआणं अभिन्ने सिआ, अहिअनिवित्ते सिआ, हिअपवित्ते सिआ, आराहगे सआ,

* भावनिय से आचार्य, उपाध्याय और साधु भी वीतराग और सर्वज्ञ आदि हैं।

उचिअपडिवत्तीए सव्वसत्ताण सहिअं ति । इच्छामि सुकडं, इच्छामि, सुकडं, इच्छामि सुकडं ॥

उन अरिहंत आदि परम उपकारियों को मेरे हृदय में स्थापित करने के लिये (भाव से उनकी शरण लेने के लिये) मैं मूढ-अयोग्य हूँ, क्योंकि मैं पापी हूँ, अनादि मोह से घिरा हुआ हूँ, हे भगवन् ! मेरी आत्मा के सब प्रदेश राग, द्वेष, अज्ञान और मूढता से वासित हैं, जिससे अनभिज्ञ (अज्ञानी) ऐसा मैं हिताहित को नही जानता, आपकी अचिंत्य महिमा से मैं हिताहित को समझनेवाला होऊँ, अहित से निवृत्त होऊँ, हित मार्ग मे प्रवृत्त होऊँ और (मोक्ष, उसके देनेवाले तीर्थंकरों, तीर्थंकरो की पहिचान कराने वाले श्री सद्गुरु और मोक्ष साधक ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप धर्म, इन सब का) आराधक होऊँ। और सब जीवो के साथ औचित्यपूर्ण आचरण करने मे मेरा हित है, इस प्रकार सुकृत्य की इच्छा करता हूँ । सुकृत्य की इच्छा करता हू !! सुकृत्य को मैं इच्छा करता हूँ !!!

एवमेअं सम्मं पढमाणस्स, सुणमाणस्स, अणुप्पेह-माणस्स, सिढिलीभवंति, परिहायंति, खिज्जंति, असुह-कम्माणुबंधा, निरणुबंधे च असुहकम्मे भग्गसामत्थे सुहपरिणामेण कडगबद्धे विअ विसे अप्पफले सिआ, सुहावणिज्जे सिआ, अपुणभावे सिआ ।

इस प्रकार चार शरण, दुष्कृत्य की निंदा और सुकृत्य की अनुमोदना को जो वारम्वार सम्यक् पढता है, सुनता है और सूत्र के साथ अर्थ का पुनः पुन. चिंतन करने रूप अनुप्रेक्षा करता है, उसके अशुभ कर्मो के वध किये रस अथवा अनुबंध

अर्थात् अशुभ कर्म बंध की परम्परा मंद होती है, उन २ कर्मों की स्थिति, रस और दलिक कम होते है, और उनका निर्मूल नाश भी हो जाता है। इतना ही नही, अपितु इस सूत्र के पाठ से, सुनने से और अनुप्रेक्षा से आत्मा मे प्रकट हुए शुभ परिणाम के वल से जैसे कटकवद्ध (सर्प वगैरह के डक पर कपड़ा अथवा डोरी आदि से कस कर बांधने से) विष निर्बल-निष्फल हो जाता है, वैसे अशुभ कर्म भी निरनुबन्ध (उसके उदय से नये अशुभ कर्म बधन कराने मे असमर्थ) हो जाते है। उदय मे आये होने पर भी आत्मा को मोह आदि से वश करने मे असमर्थ हो जाते हैं, अल्प मात्र विपाकवाले होकर सुख पूर्वक निर्जरित हो सके अर्थात् नष्ट हो सके वैसे और पुन. ऐसे कर्म का बंध न हो, वैसे बन जाते हैं।

तहा, आसगलिज्जंति परिपोसिज्जंति, निम्मा-विज्जंति, सुहकम्माणुबंधा। साणुबंधं च सुहकम्मं पगिट्ठं, पगिट्ठभावज्जिअं नियमफलयं सुपउत्ते विअ महागए सुहफले सिआ, सुहपवत्तगे सिआ, परमसुह-साहगे सिआ।

उपरान्त इस सूत्र के पाठ से, सुनने से और अनुप्रेक्षा से जैसे उत्तम औषधि की विधि और परहेज पूर्वक प्रयोग करने से आरोग्य लाभ होता है वैसे आत्मा को शुभ कर्मो का बंध हो वैसे भाव प्रकट होते हैं, इससे शुभ (पुण्यानुबन्धी पुण्य) कर्मो का बध होता है, शुभ कर्मों की परम्परा पुष्ट होती है और इससे उत्कृष्ट भाव वाले शुभ कर्मो का बंध होता है। और इस तरह प्रकट हुए शुभ कर्मो का अनुबन्ध (परम्परा) पुष्ट होने से शुभ भाव भी पुष्ट होते हैं, यह शुभ कर्मानुबन्ध निश्चित रूप से शुभ फल

को (आत्मा के ज्ञानादि गुणो को) प्रकट करता है, इससे आत्मा संसार में भी विशिष्ट सुखो का भोगी बनकर परम्परा से मोक्ष सुख को प्राप्त करता है।

अओ अपडिबधमेअ असुहभावनिरोहेणं सुह-भावबीअं त्ति सुप्पणिहाणं सम्मं पढिअव्वं, सोणं सोअव्वं, सम्मं अणुप्पेहिअव्वं त्ति।

इस कारण किसी तरह के प्रतिवन्ध (रुकावट) के बिना हमेशा अशुभ भावो को (मन, वचन, काया की अकुशल प्रवृत्तियों को) रोक कर (अर्थात् शुभ भाव पूर्वक), यह सूत्र शुभ भावनाओं का (मोक्ष का) बीज होने से उसे उत्तम प्रणिधान (एकाग्रता और कर्त्तव्य का निश्चय) पूर्वक सम्यक् शांत चित्त से पढना चाहिये, सम्यग् अनुप्रेक्षा (पदार्थ विचारणा) करनी चाहिये।

णमो णमिअणमिआणं, परमगुरुवीअरागाणं, णमो सेसणमुक्कारारिहाणं, जयउ सव्वण्णुसासणं, परमसंबोहिए सुहिणो भवंतु जीवा, सुहिणो भवंतु जीवा, सुहिणो भवंतु जीवा॥

अब उपसंहार के साथ अंतिम मंगल करते हुए कहते हैं -

देव और दानव जिन्हे नमस्कार करते हैं, इन्द्रो और गणधरो आदि ने भी जिन्हे नमस्कार किया है, उन परम गुरु श्रीवीतराग भगवन्तो को मेरा नमस्कार हो, अन्य भी नमस्कार के योग्य सिद्धो, आचार्यो आदि तथा ज्ञानादिगुण विशिष्ट गुण-वानो को भी मेरा नमस्कार हो, श्री सर्वज्ञ का परमोपकारी शासन जयवंत हो और वर बोधि-लाभ से सर्व जीव सुखी हो! सर्व जीव सुखी हो!! सर्व जीव सुखी हो!!!

बड़ी शान्ति

महामन्त्र नवकार की साधना करने वाले को सारे विश्व की शान्ति की उदात्त भावना किस तरह क्रमशः भावनी चाहिये, उसका सुन्दर उल्लेख वृहत् शान्ति स्त्रोत मे है। यदि हो सके, तो त्रिकाल और ऐसा न हो सके, तो दो वक्त अथवा कम से कम दिन मे एक बार तो नियमित पाठ करना, यह महामन्त्र के साधक के लिये जरूरी है। इससे पच परमेष्ठियो के साथ जाप में मन की एकाग्रता बहुत सरलता पूर्वक हो सकती है।

सारे विश्व की शान्ति की तीव्र कामना परमेष्ठियो मे पराकाष्ठा को पहुँची हुई होती है। परमेष्ठियो के इस सदाशय को अनुमोदना-पूर्वक स्थिर बुद्धि से इस शान्ति पाठ को बोलने से परमेष्ठियो के प्रति हार्दिक भाव-भक्ति जागृत होती है। अन्त मे दिन प्रतिदिन परमेष्ठियो के साथ अन्तरंग एकता बढ़ती जाती है।

यहा प्रथम वृहत् शान्ति मूल पाठ मे और पीछे उसका सरल अर्थ दिया गया है।



बृहच्छान्तिः ।

(१) मूलपाठः

(मन्दाक्रान्ता)

मंगलाचरणम् (१)

भो भो भव्याः ! शृणुत वचनं प्रस्तुतं सर्वमेतद्,
ये यात्रायां त्रिभुवनगुरोरार्हता भक्तिभाजः ।
तेषां शान्तिर्भवतु भवतामर्हदादि-प्रभावा-
दारोग्यश्रीधृति-मति-करी-क्लेशवि-ध्वंसहेतुः ॥१॥

(२ पीठिका)

भो भो भव्यलोका ! इह हि भरतैरावत विदेह-सम्भवानां, समस्त-तीर्थकृतां जन्मन्यासन-प्रकम्पानन्तर मवधिना विज्ञाय, सौधर्माधिपतिः, सुघोषा-घण्टा-चालनानन्तरं, सकलसुरासुरेन्द्रैः सह समागत्य, सविनय-मर्हद्भट्टारकं गृहीत्वा, गत्वा कनकाद्रि-शृङ्गे विहित-जन्माभिषेकः शान्तिमुद्घोषयति यथा, ततोऽहं कृता-नुकारमिति कृत्वा "महाजनो येन गतः स पन्थाः" इति भव्यजनैः सह समेत्य, स्नात्रपीठे स्नात्रं विधाय शान्ति-मुद्घोषयामि, तत्पूजा यात्रा-स्नात्रादि-महोत्सवा-

न्तारमिति कृत्वा कर्णं दत्वा निशम्यतां निशम्यतां स्वाहा ॥ २ ॥

(३. शांतिपाठः)

(१) ॐ पुण्याहं पुण्याहं, प्रीयन्तां प्रीयन्तां, भगवन्तोऽर्हन्तः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनस्त्रिलोकनाथास्त्रिलोकमहितास्त्रिलोकपूज्यास्त्रिलोकेश्वरास्त्रिलोकोद्योतकराः : ॥ (३) ॥

ॐ ऋषभ–अजित-सम्भव-अभिनन्दन–सुमति–पद्म–प्रभ–सुपार्श्व–चन्द्रप्रभ-सुविधि–शीतल-श्रेयांस-वासु–पूज्य-विमल–अनन्त-धर्म–शान्ति–कुन्थु-अर–मल्लि–मुनिसुव्रत–नमि-नेमि-पार्श्व-वर्द्धमानान्ता जिनाः शान्ताः शान्तिकरा भवन्तु स्वाहा ॥ ४ ॥

(२) ॐ मुनयो मुनिप्रवरा रिपुविजय दुर्भिक्ष-कान्तारेषु दुर्गमार्गेषु रक्षन्तु वो नित्यं स्वाहा ॥ ५ ॥

(३) ॐ-श्री-ह्री-धृति-मति-कीर्ति-कान्ति-बुद्धि-लक्ष्मी-मेधा-विद्या-साधन-प्रवेश-निवेशनेषु सुगृहीतनामानो जयन्तु ते जिनेन्द्राः ॥ ६ ॥

(४) ॐ रोहिणी–प्रज्ञप्ति–वज्रशृङ्खला-वज्राङ्कुशी-अप्रतिचक्रा-पुरुषदत्ता-काली-महाकाली-गौरी गान्धारी-सर्वास्त्रामहाज्वाला मानवी वैरोटया अच्छुप्ता–मानसी–महामानसी षोडश विद्यादेव्यो रक्षन्तु वो नित्यं स्वाहा ॥ ७ ॥

(५) ॐ आचार्योपाध्यायप्रभृति-चातुर्वर्ण्यस्य श्रीश्रमण-
संघस्य शान्तिर्भवतु तुष्टिर्भवतु पुष्टिर्भवतु ॥ ८ ॥

(६) ॐ ग्रहाश्चन्द्र-सूर्याङ्गारक-बुध बृहस्पति-शुक्र-शनै-
श्चर-राहु-केतु-सहिताः सलोकपालाः सोम-यम-
वरुण-कुबेर-वासवादित्य-स्कन्द-विनायकोपेता ये
चान्येऽपि ग्राम-नगर-क्षेत्रदेवताऽऽदयस्ते सर्वे प्रीयन्तां
प्रीयन्ताम्, अक्षीण-कोश कोष्ठागारा नरपतयश्च
भवन्तु स्वाहा ॥ ९ ॥

(७) ॐ पुत्र-मित्र-भ्रातृ-कलत्र-सुहृत्-स्वजन सम्बन्धि-
बन्धुवर्गसहिता नित्यं चामोद-प्रमोद-कारिणः ॥१०॥

(८) अस्मिंश्च भूमण्डले, आयतन-निवासी-साधु-
साध्वी-श्रावक-श्राविकाणां रोगोपसर्ग-व्याधि-दुःख-
दुर्भिक्षदौर्मनस्योपशमनाय शान्तिर्भवतु ॥ ११ ॥

(९) ॐ तुष्टि-पुष्टि-ऋद्धि-वृद्धि-माङ्गल्योत्सवाः सदा,
प्रादुर्भूतानि पापानि शाम्यन्तु दुरितानि । शत्रवः
पराङ्मुखा भवन्तु स्वाहा ॥ १२ ॥

(४. श्री शान्तिनाथ स्तुतिः) (अनुष्टुप्)

श्रीमते शान्तिनाथाय, नमः शान्ति-विधायिने ।
त्रैलोक्यस्यामराधीश-मुकुटाभ्यर्चिताङ्घ्रये (१) ॥१३॥
शान्तिः शान्तिकरः श्रीमान्, शान्तिं दिशतु मे गुरुः ।
शान्तिरेव सदा तेषां, येषां शान्तिर्गृहे गृहे (२) ॥१४॥

(गाथा)

उन्मृष्ट-रिष्ट-दुष्ट-ग्रह-गति-दुःस्वप्न-दुर्निमित्तादि

सम्पादित-हित-सम्पन्नाम-ग्रहणं जयति शान्तेः (३) ।१५।

(५. शान्ति-व्याहरणम्) (गाथा)

श्रीसंघजगज्जनपद-राजाधिप-राज-सन्निवेशानाम् ।

गोष्ठिक-पुरमुख्याणां, व्याहरणैर्व्याहरेच्छान्तिम् (१)

॥१६॥

श्री श्रमणसंघस्य शान्तिर्भवतु ।

श्री जनपदानां शान्तिर्भवतु ।

श्री राजाधिपानां शान्तिर्भवतु ।

श्री राजसन्निवेशानां शान्तिर्भवतु ।

श्री गोष्ठिकानां शान्तिर्भवतु ।

श्री पौरमुख्यानां शान्तिर्भवतु ।

श्री पौरजनस्य शान्तिर्भवतु ।

श्री ब्रह्मलोकस्य शान्तिर्भवतु ।

(६. आहुति-त्रयम्)

ॐ स्वाहा। ॐ स्वाहा। ॐ श्री-पार्श्वनाथाय स्वाहा ॥१८॥

(७. विधिपाठ.)

एषा शान्तिः प्रतिष्ठा-यात्रा-स्नात्राद्यवसानेषु शान्तिकलशं गृहीत्वा कुङ्कुम-चन्दन कर्पूरागरु-धूप-वास कुसुमाञ्जलिसमेतः स्नात्र-चतुष्किकायां श्रीसंघ-समेतः शुचि-शुचि-वपुः पुष्प-वस्त्र-चन्दनाभरणालङ्-

कृतः पुष्पमालां कण्ठे कृत्वा, शान्ति-मुद्घोषयित्वा, शान्तिपानीयं मस्तके दातव्यमिति ॥१६॥

[प्रास्ताविक-पद्यानि] (उपजाति वृत्तम्)

नृत्यन्ति नित्यं मणि-पुष्प-वर्षं,
सृजन्ति गायन्ति च मङ्गलानि ।
स्तोत्राणि गोत्राणि पठन्ति मन्त्रान्
कल्याणभाजो हि जिनाभिषेके (१) ॥२०॥

[गाथा]

शिवमस्तु सर्वजगतः, पर-हित-निरता भवन्तु भूतगणाः ।
दोषाः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः (२)॥२१॥
अहं तित्थयर-माया-सिवादेवी तुम्ह नयर-निवासिनी ।
अम्ह सिवं तुम्ह सिवं, असिवोवसमं सिवं भवतु
स्वाहा (३) ॥२२॥

[अनुष्टुप्]

उपसर्गाः क्षयं यान्ति, छिद्यन्ते विघ्न-वल्लयः ।
मनः प्रसन्नतामेति, पूज्यमाने जिनेश्वरे (४) ॥२३॥
सर्व-मङ्गल-माङ्गल्यं, सर्व-कल्याण-कारणम् ।
प्रधानं सर्व-धर्माणां, जैनं जयति शासनम् (५) ॥२४॥

बड़ी शान्ति का शब्दार्थ

आर्हतों में शान्ति हो

हे भव्य जनो ! प्रसंग को अनुसरती यह सब मेरी बात सुनो ! अरिहन्त प्रभु के भक्त कि जो तीन भुवन के स्वामी श्री तीर्थङ्कर परमात्माओं की यात्रा में भक्तिवन्त है, उन सबको अरिहन्त परमात्मा आदि के प्रभाव से आरोग्य, सम्पत्ति, चित्त की स्वस्थता और बुद्धि को देने वाली तथा सब क्लेश पीडा का नाश करने मे कारणभूत ऐसी शान्ति प्राप्त हो ॥१॥

शान्ति की उद्घोषणा सुनो

हे भव्य लोको ! यही भरतक्षेत्र, ऐरावतक्षेत्र और महाविदेहक्षेत्र मे जन्म लेने वाले सब तीर्थंकर परमात्माओं के जन्म समय, अपना आसन कम्पायमान होने के बाद अवधिज्ञान से तीर्थङ्कर का जन्म हुआ है ऐसा जानकर सुघोषा नाम की दिव्य घण्टा बजाने के बाद, सौधर्म देवलोक के इन्द्र, सब देवेन्द्र और भुवनपति आदि इन्द्रों के साथ आकर विनय पूर्वक पूज्य अरिहन्त परमात्मा को हाथ मे लेकर मेरु पर्वत के शिखर पर जाकर वहाँ प्रभु का जन्माभिषेक स्नात्र महोत्सव समाप्त करने के बाद जिस प्रकार शान्ति की उद्घोषणा करते हैं, उस प्रकार मैं भी "किये हुए का अनुकरण करना चाहिये" और "महापुरुष जिस रास्ते जावें, उसी रास्ते जाना चाहिये" ऐसा विचार कर भव्य लोकों के साथ आकर स्नात्र पीठ पर स्नात्र कर शान्ति की उद्घोषणा करता हूँ, इसलिये आप सब पूजा महोत्सव, रथयात्रा महोत्सव और स्नात्र महोत्सव पूर्ण होने के बाद ध्यान पूर्वक एकाग्रता से कान देकर सुनो ! सुनो !! स्वाहा ।

शान्ति की उद्घोषणा का प्रारम्भ

(१) ॐ पुण्याह पुण्याह आज का दिवस पवित्र है ! आज का दिवस पवित्र है !! सर्वज्ञ और सर्वदर्शी अरिहन्त भगवन्त तीनो लोक के नाथ है, तीनो लोक मे पूजित है, तीनो लोक के पूज्य है, तीनो लोक के स्वामी हैं और तीनो लोक को प्रकाशमान करने वाले है। ऐसे श्री अरिहन्त भगवन्त प्रसन्न हो ! प्रसन्न हो !!

शान्ति के भण्डार चौबीस तीर्थङ्कर परमात्मा

ॐ ऋषभदेव, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभस्वामी, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभस्वामी, सुविधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयासनाथ, वासुपूज्यस्वामी, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतस्वामी, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और श्री वर्धमान स्वामी तक के शान्त ऐसे तीर्थङ्कर भगवन्त शान्ति करने वाले हो ! स्वाहा ।

सदा के रक्षक मुनि-महात्मा

ॐ रिपु से हुई पराजय मे, दुष्काल से, भयकर अरण्यों में और विकट रास्तो मे मुनियो मे अग्रेसर मुनि महात्मा हमेशा तुम्हारी रक्षा करे ! स्वाहा ।

परमात्माओं के नाम से कार्य सिद्धि

(३) ॐ श्री, ह्री, धृति, मति, कीर्ति, कान्ति, बुद्धि, लक्ष्मी, मेधा और विद्या के साधनो मे शास्त्रज्ञान प्राप्त करने के साधनो मे, प्रवेश करने मे तथा उसके पूरे होने पर उसमे से

उत्तीर्ण होकर निकलने मे अच्छी तरह नाम स्मरण किये गये उन जिनेश्वर भगवन्तों की विजय हो (परमात्मा का नाम लेकर काम करने से वे काम सफल होते है)

सोलह विद्या देवियों की तरफ से रक्षण

(४) ॐ रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रश्रृंखला, वज्राकुशी, अप्रतिचक्रा, पुरुपदत्ता, काली, महाकाली, गौरी, गाधारी, सर्वास्त्रामहाज्वाला, मानवी, वैरोट्या, अच्छुप्ता, मानसी महामानसी, सोलह विद्या देवियाँ हमेशा तुम्हारा रक्षण करे ! स्वाहा ।

श्री संघ में शान्ति तुष्टि पुष्टि हो

(५) ॐ आचार्य भगवन्त, उपाध्याय भगवन्त आदि श्रमण महात्माओ को प्रधानतावाले श्रीचतुर्विध सघ मे शान्ति हो, तुष्टि हो, पुष्टि हो ।

विविध प्रकार के देवों की प्रसन्नता

(६) ॐ चन्द्र, सूर्य, मगल, वुध, गुरु, शुक्र, शनैश्चर, राहु और केतु सहित ग्रह और लोकपाल जैसे कि सोम, यम, वरुण, कुवेर और वासव, आदित्य, स्कन्द, और विनायक वगैरह देव तथा दूसरे भी ग्रामदेवता, नगर देवता, क्षेत्र देवता ये सब प्रसन्न हो ! प्रसन्न हो ! ! और राजा भरपूर भण्डार और कोठारवाले हो ! स्वाहा ।

कुटुम्बों में आनन्द प्रमोद

(७) ॐ पुत्र, मित्र, भाई, पत्नी, सुहृद, अपने कुटुम्बीगण सगे सम्बन्धी और वन्धु वर्ग सहित आनन्द प्रमोद करने वाले हों ।

(८) और इस पृथ्वी मण्डल के धर्म स्थानों मे रहे हुए साधु साध्वियों, श्रावक और श्राविकाओं के रोग, कठिनाइयां, व्याधियां, दु:ख, दुष्काल और दौर्मनस्य की उपशमन द्वारा शान्ति हो।

(९) ॐ तुमको सदा तुष्टि हो, पुष्टि हो, ऋद्धि मिले, वृद्धि हो, और मांगलिक उत्सव निरन्तर हो, उत्पन्न हुए पाप और कष्ट शान्त हो। शत्रु विमुख हो! स्वाहा।

शान्ति करने वाले श्री शान्तिनाथ प्रभु का स्मरण

तीन लोक के प्राणियो को शान्त करने वाले और देवेन्द्रो के मुकुटो द्वारा पूजित चरणो वाले श्रीशान्तिनाथ प्रभु को नमस्कार हो। (१)

जगत् मे शान्ति करने वाले, जगत् को धर्म का उपदेश देने वाले, श्री शान्तिनाथ भगवान् मुझे शान्ति दो। जिस जिस घर में शान्तिनाथ प्रभु पूजे जाते हैं, वहाँ वहाँ सदा शान्ति ही रहती है। (२)

उपद्रवो, ग्रहों की दुष्टगति, दु:स्वप्न, दुष्ट निमित्तादि का नाश करने वाले तथा आत्महित और सम्पत्ति को प्राप्त कराने वाले श्री शान्तिनाथ भगवान् के नामोच्चारण को जय होती है। (३)

अलग अलग नामोच्चार पूर्वक शान्ति का उच्चार

श्री संघ, जगत् के जनपद, महाराजा, राजाओं के निवास स्थान, विद्वद् मण्डली के सभ्यों तथा अग्रगण्य नागरिको के नाम लेकर शान्ति बोलनी चाहिये, जैसे कि

श्री श्रमण संघ में शान्ति हो।

श्री जनपदों (देशों) में शान्ति हो।

श्री राजाधिपों (महाराजाओं) को शान्ति हो।

श्री राजाओं के निवास स्थान में शान्ति हो।

श्री गोष्ठिकों-विद्वद् मण्डली के सभ्यों को शान्ति हो।

श्री अग्रगण्य नागरिकों को शान्ति हो।

श्री नगर जनों को शान्ति हो।

श्री ब्रह्म (समस्त जीव लोक) लोक मे शान्ति हो।

तीन आहुतियां

ॐ स्वाहा, ॐ स्वाहा, ॐ श्री पार्श्वनाथाय स्वाहा!

शान्ति की उद्घोषणा कब ? और कौन करे ?

यह शान्तिपाठ जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा, रथयात्रा और स्नात्र वगैरह महोत्सवों के अन्त में बोलना। उसकी विधि यह है कि कोई गुणवान श्रावक केसर-चन्दन, कपूर और अगर का धूप, वास-चूर्ण और अञ्जलि में विविध रंगों के पुष्प रख शान्ति-कलश लेकर श्रीसंघ के साथ स्नात्रमण्डप मे खड़ा रहे। वह अत्यन्त पवित्र शरीरवाला होना चाहिये तथा श्वेत वस्त्र, चन्दन और आभूषणो से अलंकृत होना चाहिये। वह गले में पुष्पमाला पहिन कर शान्ति की उद्घोषणा करे और उद्घोषणा करने के बाद शान्तिकलश का पानी उसे सिर पर लगाना चाहिये और दूसरो को भी अपने मस्तक पर लगाना चाहिये।

अभिषेक के समय जिनेश्वर के भक्तों की भक्ति के प्रकार

भाग्यशाली जीव श्रीजिनेश्वर प्रभु के स्नात्र-अभिषेक के रत्नो और पुष्पो की वृष्टि करते हुए भक्तियुक्त नृत्य करते हैं। अष्ट मंगलादि का आलेखन करते हैं, माँगलिक स्तोत्र गाते हैं और गोत्र (नाम) तथा मन्त्र बोलते है।१।

मंगल भावना

अखिल विश्व का कल्याण हो, सर्व प्राणी गण दूसरों का हित करने की भावना वाले हों, सब के सब दोष नाश हों, और सर्वत्र सब लोक सुखी हों ।।२।।

मैं तीर्थङ्कर की माता शिवादेवी तुम्हारे नगर मे रहती हूँ, हमारा और तुम्हारा अर्थात् सबका भला हो, तथा उपद्रवों का नाश होकर कल्याण हो ।३।

श्री जिनेश्वर प्रभु की पूजा करने से सब प्रकार के कष्ट नाश होते है, विघ्न रूपी वेले छिद जाती है और मन प्रसन्न होता है ।४।

सब मगलो मे मगल रूप, समस्त कल्याणो मे कारण रूप और सब धर्मों मे श्रेष्ठ ऐसा जैन शासन सदा जयवन्त है।



लक्ष नवकार जाप के अनुष्ठान की विधि

(१) तीनो सन्ध्या मे 'शिवमस्तु सर्व जगतः' की भावना से बारह बारह नवकार स्थिर चित्त से गिनना ।

(२) परमात्मा की स्नात्रपूजा तथा अष्ट प्रकारी पूजा करना ।

(३) प्रतिमाजी के समक्ष प्रातः सायं २४ लोगस्स का कायोत्सर्ग (पंच परमेष्ठी आराधनार्थं करेमि काउस्सग्गं, वन्दण वत्तियाए०)

(४) हरएक नवकार के साथ एक सफेद पुष्प से प्रभु पूजन (पुष्प के अभाव मे हर एक नवकार के साथ एक अखण्ड अक्षत (चावल) से पूजा करना)

(५) प्रात. साय प्रतिक्रमण, देववन्दन, व्याख्यान श्रवण आदि ।

(६) आयंबिल या क्षीर का एकासना करना ।

(७) प्रति दिन ५० नवकार की माला गिननी अर्थात् प्रति दिन ५००० नवकार का जाप करना ।

आराधकों को विशेष सूचना

(१) २० दिन तक मन, वचन, काया से ब्रह्मचर्य पालना ।

(२) जहाँ तक हो सके मौन रखना ।

(३) संथारे पर भूमिशयन करना ।

(४) विजातीय परिचय वर्जनीय ।

(५) जाप स्पष्ट अक्षरों से करना ।

(६) पद्मासन या सुखासन से बैठना ।

(७) जाप करते समय योग मुद्रा रखना ।

(८) दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर या नमस्कार मन्त्र के कमल चित्र पर या जिन प्रतिमा पर रखना ।

(९) नवकारवाली सफेद वर्ण की रखना ।

(१०) जाप की जगह वाछूट आदि वर्जनीय ।

जाप का मंगल स्थल

(१) स्थल, एकांत पवित्र, सौ-सौ हाथ तक बिना अशुचि वाला ।

(२) गाय के शुद्ध घी का अखण्ड दीपक ।

(३) मघमघायमान अखण्ड धूप ।

(४) श्री पार्श्वनाथ प्रभु की पंच तीर्थी प्रतिमा की स्थापना ।

(५) नवकार महामन्त्र की महिमा को दर्शानेवाले सुन्दर कलामय उत्तम चित्र जाप गृह में चारों तरफ रखना ।

वे तीर्थङ्कर बने

यो लक्षं जिनबद्धलक्ष्यसुमनाः सुव्यक्तवर्णक्रमम्,
श्रद्धावान् विजितेन्द्रियो भवहरं मन्त्रं जपेच्छ्रावकः।

पुष्पैः श्वेतसुगंधिभिश्च विधिना लक्षप्रमाणं जिनं,
यः सम्पूजयते स विश्वमहितः श्रीतीर्थराजो भवेत् ॥

(श्री रत्न मन्दिरगणी)

अर्थ श्रीजिनेश्वर के प्रति लक्ष्य कर लिया है जिसने ऐसा जितेन्द्रिय श्रद्धालु, शरीर और वस्त्र की पवित्रता तथा मन की एकाग्रतापूर्वक पूजा की अन्य सामग्री सहित श्री जिनेश्वर देव की पूजाकर, सर्व प्रकार के भय का नाश करने वाले महामन्त्र नवकार का सुस्पष्ट वर्ण उच्चारण पूर्वक एक लाख की संख्या को जाप करने वाला भव्यात्मा, सारे संसार को पूज्य ऐसे तीर्थङ्कर पद को प्राप्त करता है।

नोंध जाप को शुरू करते समय नित्य इस श्लोक को मधुर कण्ठ से और एकाग्रतापूर्वक बोलना चाहिये।

परमातम-पद की प्राप्ति

समरो मन्त्र भलो नवकार, ए छे चौद पूरव नो सार,
एना महिमानो नहि पार. एनो अर्थ अनंत अपार ।

सुखमां समरो, दुःखमां समरो, समरो दिवस ने रात,
जीवतां समरो मरतां समरो, समरो सौ संगाथ ।

योगी समरे भोगी समरे, समरे राजा रंक,
देवो समरे दानव समरे, समरे सुख निःशंक ।

अड़सठ अक्षर एना जाणो, अड़सठ तीरथ सार;
आठ सम्पदाथी परमाणो, अडसिद्धि दातार ।

नवपद एना नवनिधि आपे, भवोभवना दुःख कापे;
चन्द्र वदनथी हृदये व्यापे, परमातम-पद आपे ।

नौ दिन एकासने से नवकार तप की आराधना विधि

पवित्र स्थान पर चन्द्रवा पुठिया लगाकर चाँदी के पत्तर पर या किसी अन्य वस्तु पर लिखे श्रीनवकार मन्त्र की स्थापना कर उसके आगे ज्ञान की स्थापना कर वहाँ हर रोज ज्ञान का चैत्यवन्दन करना। हर रोज ज्ञान का पूजन करना। जिनसे रोज न बन सके, उन्हे कम से कम पारणे के दिन तो एक बार अवश्य ज्ञान पूजन करना ही चाहिये।

प्रथम दिन नमो अरिहंताण पद की २० नवकार की माला अर्थात् २००० जाप करना।

पद में जितने अक्षर हों उतने खमासमणे, उतने लोगस्स का कायोत्सर्ग और स्वस्तिक आदि भी उतने ही करना। स्वस्तिक पर फल नैवेद्य रखना।

सात दिन हर रोज-क्रमशः एक एक और अन्तिम दो दिन आठवाँ व नवाँ पद मिलाकर १७ अक्षर होते हैं। इसलिये अन्तिम दो दिन सतरह खमासमणा, सतरह लोगस्स का कायोत्सर्ग और स्वस्तिक भी सतरह सतरह करना।

प्रथम के पाँच दिन में परमेष्ठियो के पद के जाप मे ॐ ह्रीं लगाना चाहिये। अन्तिम चार दिन मे बाकी चार पदो मे नहीं लगाना चाहिये इसको नीचे के कोष्टक से समझना चाहिये।

दिन	नवकारवाली का पद	स्वस्तिक	खमासमणा	कायोत्सर्ग	नवकारवाली
१ला	ॐ ह्री नमो अरिहंताणं	७	७	७	२०
२रा	ॐ ह्री नमो सिद्धाणं	५	५	५	२०
३रा	ॐ ह्री नमो आयरियाणं	७	७	७	२०
४था	ॐ ह्रीं नमो उवज्झायाणं	७	७	७	२०
५वां	ॐ ह्री नमो लोए सव्वसाहूणं	९	९	९	२०
६ठा	ऐसो पच नमुक्कारो	८	८	८	२०
७वां	सव्वपावप्पणासणो	८	८	८	२०
८वां	मंगलाणंच सव्वेसि पढमं हवइ मंगलं	१७	१७	१७	२०
९वा	मगलाणं च सव्वेसि पढमं हवइ मंगलं	१७	१७	१७	२०

कायोत्सर्ग की विधि

प्रथम दिन "नमो अरिहन्ताणं पद आराधनार्थं कायोत्सर्ग करू ?" इच्छ कह कर सात लोगस्स का कायोत्सर्ग करना। इस प्रकार हर रोज क्रमशः पाँचो परमेष्ठियों के आराधनार्थं परमेष्ठियो के अक्षर प्रमाणे कायोत्सर्ग करना।

छठे दिन ऐसो पचनमुक्कारो पद आराधनार्थं इस प्रकार कह कर आठ लोगस्स का कायोत्सर्ग करना।

सातवे दिन सव्वपावप्पणासणो पद आराधनार्थं ऐसा कह कर आठ लोगस्स का कायोत्सर्ग करना।

आठवे व नवें दिन मगलाण च सव्वेसि पढमं हवइ मंगलं पद आराधनार्थं कायोत्सर्ग करू, इच्छं कह दोनों दिन सतरह लोगस्स का कायोत्सर्ग करना।

श्री नवकार महामन्त्र तप के खमासमणे के दोहे

प्रथम दिन

अरिहंत पद ध्यातो थको, दव्वह गुण पज्जाय रे;
भेद छेद करी आतमा, अरिहंतरूपी थाय रे ॥१॥

यह दोहा बोलकर सात खमासमणा देना। हरएक खमासमणे के साथ श्री अर्हद्भ्यो नमो नमः बोलना।

दूसरे दिन

रूपातीत स्वभाव जे, केवल दंसण नाणी रे;
ते ध्याता निज आतमा, होय सिद्ध गुण खाणी रे ॥२॥

यह दोहा बोलकर पाँच खमासमणा देना। हरएक खमासमणे के साथ श्री सिद्धेभ्यो नमो नमः बोलना।

तीसरे दिन

ध्याता आचारज भला, महामन्त्र शुभ ध्यानी रे;
पंच प्रस्थाने आतमा, आचारज होय प्राणी रे ॥३॥

यह दोहा बोलकर सात खमासमणा देना। हरएक खमासमणे के साथ श्री आचार्येभ्यो नमो नमः बोलना।

चौथे दिन

तप सज्झाये रत सदा, द्वादश अंगनो ध्याता रे,
उपाध्याय ते आतमा, जगबंधव जगभ्राता रे ॥४॥

यह दोहा बोलकर सात खमासमणा देना। हरएक खमासमणे के साथ श्री उपाध्यायेभ्यो नमो नमः बोलना।

पाँचवें दिन

अप्रमत्त जे नित्य रहे, नवि हरखे नवि शोचे रें;
साधु सूधा ते आतमा, शुं मुंडे शुं लोचे रे ॥५॥

यह दोहा बोलकर नौ खमासमणा देना। हरएक खमासमणे के साथ सर्व-साधुभ्यो नमो नमः बोलना।

छठे, सातवें, आठवें व नवें दिन—

पंच नवकार ए सुप्रकाश, एहथी होये सवि पाप नाश;
सर्व मंगल तणुं एह मूल, सुजस विद्या विवेकानुकूल ॥६॥

अन्तिम चार दिनो मे यह दोहा बोलना। छठे व सातवें दिन आठ खमासमणा, आठवें व नवें दिन सत्तरह खमासमणा देना। हरएक खमासमणे के साथ सकलद्वादशाङ्गोपनिषद्भूत-श्री नमस्कारमहामन्त्रचूलिकायै नमो नमः बोलना।

नवकार तप में विशेष सूचना।

नौ दिन एकासना, दोनो वक्त प्रतिक्रमण, तीन वक्त देववन्दन, सवेरे सायं पाँचो कपड़ो का पड़िलेहण, स्नात्रादि से प्रभु पूजा, गुरुवन्दन, पच्चक्खाण, व्याख्यान श्रवण, दोपहर को देववन्दन कर विधि सहित पच्चक्खाण पारना, एकासना करते समय नहीं बोलना। एकासना करने के बाद जगचिन्तामणि का चैत्यवन्दन जय वीयराय तक करना। रात को संथारा पोरसी गुरु महाराज से सुनना अथवा उसकी गाथा को गिन लेना। भूमि संथारा करना तथा ब्रह्मचर्य का पालन करना। तप के दिन मे समता रखने का विशेष प्रयत्न करना। जाप तथा दूसरी भी सब क्रियाएँ उपयोग पूर्वक करने का लक्ष रखना। पारणे पर यथाशक्ति

स्वामिवात्सल्य करना। तप पूर्ण होने पर उद्यापन महोत्सव, शासन प्रभावना आदि शक्ति और समय के अनुसार करने की भावना रखना।

यह सामान्य विधि बताई गई है। विशेष विधि ग्रन्थान्तर से अथवा गुरुगम से जानना।

नवकार के तप के दिनों में जब जब समय मिले, तब तब नवकार की महिमा हृदय मे अंकित हो, ऐसा पठन, चिन्तन, मनन चालू रखना। तप पूरा होने पर भी प्रतिदिन अमुक समय तो नवकार मन्त्र की आराधना तथा पठन, चिन्तन, मनन या इस विषय के जानने वालों से साक्षात् समागम, उनसे श्रवण आदि चालू रखना। इस प्रकार नवकार की महिमा को अपने हृदय में अंकित करने का नम्रतापूर्वक प्रयास करना।

इसके सिवाय समय और संयोग की अनुकूलता मिले, तब १८ दिन तक गुरु के सांनिध्य मे पौषध में रहकर उपधान तप वहन करके विशिष्ट विधिपूर्वक इस महामन्त्र की आराधना करनी चाहिये। इससे शास्त्रीय मर्यादाओं का पालन होता है। श्री महानिशीथ आदि आगमों में उपधान तप वहन के साथ इस महामन्त्र की आराधना करने को फरमाया है।

श्रीनवकार महामन्त्र तप में प्रतिदिन करने के चैत्य वन्दन आदि

श्री नवकार महामन्त्र तप मे प्रतिदिन महामन्त्र के पद के क्रमानुसार आराधना करनी होती है। उसमे शुरू के पाँच दिन अरिहन्तादि पाँच पदो को लक्ष्य मे रखकर अलग अलग चैत्य-वन्दन, स्तवन व स्तुति हैं और अन्तिम चार दिन एक ही चैत्य-वन्दन, स्तवन और स्तुति है। उनका क्रम इस प्रकार है:

श्रीअरिहन्त पद का चैत्यवन्दन

जय जय श्री अरिहन्त भानु, भवि कमल विकाशी;
लोकालोक अरूपी रूपी, समस्त वस्तु प्रकाशी ॥१॥
समुद्घात शुभ केवले, क्षयकृत मल राशि;
शुक्ल चरम शुचि पाद से, भयो वर अविनाशी ॥२॥
अन्तरग रिपुगण हणी ए, हुए अप्पा अरिहन्त;
तसु पदपकज मे रही, हीर धरम नित सन्त ॥३॥

श्री अरिहन्त पद का स्तवन

(कड़खा नी देशी)

श्री अरिहन्त भगवन्त परमातमा;
देवनो देव गुण रयण खाणी;
सात शुद्धि करी मलिनता परिहरी
पूजीये भविजना प्रेम आणी ॥श्री॥१॥
अरति रति मोह निद्रा न हाँसी भय,
राग नहिं द्वेष नहिं जास अंगे;
काम मिथ्यात्व अज्ञान जस खय थया,
ध्याइये ते प्रभु अधिक रंगे ॥श्री॥२॥
ध्यान पिण्डस्थ पदस्थ रूपस्थ थी,
ध्येय ध्याता लहे एक ताने
द्रव्य पर्याय गुण तेहना ध्याइये
पाइये सिद्धि बहु तत्वज्ञाने ॥श्री॥३॥
जनम ना च्यार अगिवार घाती खये,
देवकृत जास ओगणीस राजे;

चउतीस अतिशय अंग चौथे कह्या,
पणतीस वयण गुण जास छाजे ॥श्री॥४॥
आठ अधिक सहस लक्षण धरे अंगमा,
गुण अनन्ते भर्यो नाथ सोहे;
जास कल्याणके जगतनु तम टले,
इन्द्र उपेन्द्रना चित्त मोहे ॥श्री॥५॥
नाम ने थापना द्रव्य भावे करी,
जे नरा चित्त मे नित ध्यावे,
देवपालादि भूपाल परे ते नरा,
तीर्थपति सम्पदा हस्त पावे ॥श्री॥६॥
जे महागोप खटकाय गोकुल तणो,
तिम महामाहण जास कहीये,
भवोदधि बूडता भव्य निस्तारणो,
सार्थपति मुगतिनो जेह लहीये ॥श्री॥७॥
द्रव्य भावे करो पूजना जे करे,
स्वर्ग अपवर्ग ते नियत पामे,
त्रण्य पण अष्ट नव सत्तर एगवीशविह,
पूजना करी वसे सिद्धि धामे ॥श्री॥८॥
प्रथम पद पूजतो राय श्रेणिक प्रथम,
भावि चोवीशी जिनराज थाशे;
तास पद पद्मनी सेवना सूर करी,
रूपविजयादि नित सुजस गाशे ॥श्री॥९॥

श्री अरिहन्त पद स्तुति

(वीर जिनेश्वर अति अलवेसर ए देशी)

सकल द्रव्य पर्याय प्ररूपक, लोकालोक स्वरूपोजी,
केवलज्ञाननी ज्योति प्रकाशक, अनन्तगुणे करी पूरोजी,

त्रीजे भव थानक आराधी, गोत्र तीर्थङ्कर नूरोजो;
वीर गुणाकर एहवा अरिहन्त, आराधो गुण भूरोजो ॥१॥

दूसरे दिन

श्री सिद्धपद का चैत्यवन्दन

श्रीशैलेशी पूर्वप्रान्त, तनु हीन त्रिभागी;
पूर्वप्रयोग प्रसंगथी, ऊरध गति जागी ॥१॥
समय एकमां लोकप्रान्त, गया निगुण निरागी;
चेतन भूपे आत्मरूप, सुदिशा लही सागी ॥२॥
केवल दंसण नाणथी ए, रूपातीत स्वभाव;
सिद्ध भये तसु हीर धर्म, वन्दे धरी शुभ भाव ॥३॥

श्री सिद्धपद का स्तवन

(गुण रसिया ए देशी)

श्री सिद्ध पद आराधीये रे,
क्षय कीधां अड कर्म रे ॥ शिव वसिया ॥
अरिहन्ते पण मानीया रे,
सादि अनन्त स्थिर शर्म रे ॥ शिव ॥१॥
गुण एकत्रीस परमातमा रे,
तुरिय दशा आस्वाद रे ॥ शिव ॥
एवंभूत नये सिद्ध थया रे,
गुणगणनो आल्हाद रे ॥ शिव ॥२॥
सुरगण सुख त्रिहुँ कालनां रे,
अनन्तगुणां ते कीध रे ॥ शिव ॥
अनन्त वर्गे वर्गित कर्यां रे,
तो पण सुख समीध रे ॥ शिव ॥३॥

बन्ध उदय उदीरणा रे,
सत्ता कर्म अभाव रे ॥शिव॥
ऊर्ध्व गति करे सिद्धजी रे,
पूर्वप्रयोग सद्भाव रे ॥शिव॥४॥
गति पारिणामिक भावथी रे,
बन्धन छेदन योग रे ॥शिव॥
असंग क्रिया बले निर्मलो रे,
सिद्धगतिनो उद्योग रे ॥शिव॥५॥
पएसन्तर अणफरसता रे,
एक समयमा सिद्ध रे ॥शिव॥
चरम त्रिभाग विशेषथी रे,
अवगाहन घन कीध रे ॥शिव॥६॥
सिद्धशिलानी उपरे रे,
ज्योतिमा ज्योति निवास रे ॥शिव॥
हस्तिपाल परे सेवता रे,
सौभाग्य लक्ष्मी प्रकाश रे ॥शिव॥७॥

श्री सिद्धपद स्तुति

अष्ट करमकुं दमन करीने, गमन कियो शिववासीजी,
अव्याबाध सादि अनादि, चिदानन्द चिद्राशिजी;
परमातम पद पूरण विलासो, अघघन दाघ विनाशीजी,
अनन्त चतुष्टय शिवपद ध्यावो, केवलज्ञानी भाखीजी, ॥१॥

श्री आचार्यपद का चैत्यवन्दन

जिन पद कुल मुखरस अनिल, मित रस गुणधारी,
प्रबल सबल घन मोह की, जिणते चमू हारी ॥१॥
ऋज्वादिक जिनराज गीत, नय तन विस्तारी;
भवकूपे पापे पडंत, जगजन निस्तारी ॥२॥
पचाचारी जीव के, आचारज पद सार;
तिनकुं वन्दे हीर धर्म, अट्ठोत्तरसय वार ॥३॥

श्री आचार्यपद का स्तवन

(नीलूडी रायण तरु तले-ए देशी)

पचाचार सुधा धरे सुणो सन्ताजी,
जीतो इन्द्रिय पच गुणवन्ताजी
पंच समिति समिता रहे, सु० गुप्ति त्रण करे सच ॥गु०॥१॥
पच महाव्रत पालता, सु० जीते चार कषाय ॥गु०॥
नव विध ब्रह्म गुपति धरे, सु० आचारज निरमाय ॥गु०॥२॥
अष्टांग जोग साधन करे, सु० लहे अडकर्म स्वरूप ॥गु०॥
जाणे अडलब्धि भली, सु० तिम अडदिट्ठी सरूप ॥गु०॥३॥
चउ अनुयोग वखाणता, सु० शासनना शणगार ॥गु०॥
बारसे छन्नु गुणे भर्या, सु० भावाचारज सार ॥गु०॥४॥
पंच प्रस्थान साधन करे, सु० मुनि गणी पंडित भाव । गु०॥
वाचक आचरजपणुं, सु० पामे गुणने दाव ॥गु०॥५॥
चउदसे बावन गणधारा, सु० लब्धितणा भण्डार ॥गु०॥
तस पद पकज पूजीये, सु० द्रव्य-भावे निरधार ॥गु०॥६॥

जुगप्रधान वीर शासने, सु० दोय हजारने चार ॥गु०॥
वर्तमान श्रुतना धणी, सु० ते पूजो धरी प्यार ॥गु०॥७॥
अशनासन वस्त्रादिके, सु० पानक औषध पात्र ॥गु०॥
नमनाभिगमन वन्दना, सु० करे नित नामी गात्र ॥गु०॥८॥
आचारज पद सेवतो, सु० श्री पुरुषोत्तम भूप ॥गु०॥
तीर्थङ्कर पद बाधियुं, सु० लहेगे चिद्घनरूप ॥गु०॥६॥

श्री आचार्यपद स्तुति

पंचाचार पाले अजुवाले, दोष रहित गुणधारीजी:
गुण छत्रीसे आगमधारी, द्वादश अंग विचारीजी;
प्रबल सबल घन मोह हरणकु, अनिल समो गुणवाणीजी.
क्षमा सहित जे संयम पाले, आचारज गुणध्यानीजी:

चौथे दिन

श्री उपाध्याय पद का चैत्यवंदन

धन धन श्री उवज्झाय राय, शठता धन भंजन,
जिनवर देशित दुवालसंग, कर कृत जनरंजन ॥१॥
गुणवण भंजण मणगयंद, सुय[1]सृणि किय गंजण;
कुणालंघ लोय लोयणे, जत्थ य सुयमंजण ॥२॥
महाप्राण मे जिण लह्यो ए, आगम से पद तुर्य;
तिनपे अहनिश हरि धर्म, वन्दे पाठकवर्य ॥३॥

श्री उपाध्याय पद स्तवन

(रसियानी देशी)

श्री उवज्झाय बहुश्रुत नमो भावशु,
अंग उपांगना जाण मुणीदा;

१. अंकुश

ભણે, ભણાવે શિષ્યને હિત કરો,
કરે નવ પલ્લવ પહાણ વિનીતા ॥શ્રી॥૧॥
અર્થ-સૂત્ર કહેવાના વિભાગથી,
સૂરીશ્વર-પાઠક સાર સોહંતો;
ભવ ત્રીજે અવિનાશી સુખ લહે,
યુવરાજ પરે અણગાર મહંતા ॥શ્રી॥૨॥
ચૌદ દોષ ભર્યા અવિનીત શિષ્યને,
કરે પન્નર ગુણવન્ત વિદિતા;
ગ્રહણ-આસેવન શિક્ષા-દાનથી,
સમય જાણે અનેકાન્ત સુજ્ઞાની ॥શ્રી॥૩॥
આવશ્યક પચવીશ શીખવે વાંદણે,
પચવીશ ક્રિયાનો ત્યાગ વિચારી;
પચવીશ ભાવના ભાવે મહાવ્રતી,
શુભ પચવીશી ગુણરાગ સુધારી ॥શ્રી॥૪॥
પય ભર્યો દક્ષિણાવર્ત[1] શંખ શોભિયે,
તેમ નય—ભાવ પ્રમાણ પ્રવીણા;
હય[2]-ગાય[3]-વૃષભ[4]-પંચાનન[5] સારિખા,
ટાલે પરવાદી અભિમાન અદીના ॥શ્રી॥૫॥
વાસુદેવ[6] નરદેવ[7] સુરપતિ[8] ઉપમા,
રવિ[9]-શશી[10]-ભંડારી[11]-રૂપ દીપંતા;
જમ્બૂ[12]-સીતાનદી[13]-મેરુમહીધરો,[14]
સ્વયમ્ભૂઉદધિ[15]-રયણ[16]-ભૂપ ભણંતા ॥શ્રી॥૬॥
એ સોલ ઉપમા બહુશ્રુતને કહી,
ઉત્તરાધ્યયને રસાલ જિણંદા;
મહીન્દ્રપાલ વાચકપદ સેવતો,
સૌભાગ્ય લક્ષ્મી સુવિશાલ સૂરીંદા ॥શ્રી॥૭॥

श्री उपाध्याय पद स्तुति

अंग इग्यारे चौदे पूरव, गुण पचवीशना धारीजी,
सूत्र अरथधर पाठक कहीये, योग समाधि विचारीजी;
तप गुणसूरा आगम पूरा, नय निक्षेपे तारीजी,
मुनि गुणधारी बुध विस्तारी, पाठक पूजो अविकारीजी।

पांचवें दिन

श्री साधु पद का चैत्यवन्दन

दंसण नाण चरित्त करो, वर शिवपद गामी;
धर्म शुक्ल शुचि चक्र से, आदिम खय कामी ॥१॥
गुण प्रमत्त अप्रमत्त तें, भये अन्तरजामी;
मानस इन्द्रिय दमन भूत, शम दम अभिरामी ॥२॥
चार तिधन*गुणगण भर्यो ए, पंचमपद मुनिराज;
तत्पद पंकज नमत है, होय धर्म के काज ॥३॥

श्री साधु पद का स्तवन

(भविका ! श्री सिद्ध चक्रपद वंदो—ए देशी)

षट् व्रतधारी छ कायना रक्षक, पंच इन्द्रिय वश करता,
भाव विशुद्धि पडिलेहणा करें, करण विशुद्धि धरता रे,
भविका ! एहवा मुनिवर वन्दो ! जोम लहो परमाणंदो रे ! १॥

* वर्ग की मूल सख्या से गुणा करने से धन संख्या होती है, उसके अनुसार ३ X ३ = ९ X ३ = २७ गुण की सख्या यहा 'तिधन' शब्द से जानना।

लोभ निग्रह करो खंति सूधा, संजमना अधिकारी,
अकुशल मन वच काय निरोहे, सहे परिसह अतिभारो रे ।।भ।।२।।
देव तिरि नर आत्म-समुद्भव, उपसर्ग सोले सहता,
सत्तावोश मुनिवर गुणधारी, समिति गुप्ति निरवहतारे ।।भ।।३।।
बाह्य अभ्यन्तर तप नित तपता, कठिन करम खयकारी,
दोष बियालोश रहित अशन करे, अतिक्रम चार निवारो रे।।भ।।४।।
द्रव्यादिक अभिग्रह चउ करता, खड्विध विगयना त्यागी,
चार प्रकारे सलोनता करो, ज्ञान ध्यान मति जागो रे ।।भ।।५।।
नरना दोष अढार निवारी, दीक्षा योग्यने आपे,
नवविध भाव लोचना कारण, केश लोच त्रिक थापे रे ।।भ।।६।।
चउद अभ्यन्तर ग्रन्थी तजीने, जेह थया निर्ग्रन्थ,
अशरण शरण तरण तारक मुनि, चलवे शिवपुर पन्थरे ।।भ।।७।।
बहुश्रुत तपसी लब्धिना धारी, व्रत दूपण परिहारी,
अप्रमत्त गुणठाणग धारी, मुनि नमो जोग समारी रे ।।भ।।८।।
वीरभद्र ए मुनिपद सेवो, होशे विदेह जिणंद,
दस मुख पद्म वयण रस पामी, रूप विजय आणन्द रे ।।भ।।९।।

श्री साधु पद स्तुति

समिति गुप्ति करी सयम पाले, दोष बेतालोश टालेजी;
षट् काया गोकुल रखवाले, नवविध ब्रह्मव्रत पालेजी;
पंच महाव्रत सूधा पाले, धर्म शुक्ल उजवालेजी;
क्षपक श्रेणो करो कर्म खपावे, शमदम गुण उपजावेजो ।।१।।

श्री नवकार महामन्त्र लघु तप के अन्तिम चार दिनों में उपयोगी चैत्यवन्दन और स्तुति ।

पंच परमेष्ठि महिमा का चैत्यवन्दन

(१)

अरिहंताणं णमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ।। १ ।।
सिद्धाणं णमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, बीयं हवइ मंगलं ।। २ ।।
आयरियाणं णमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, तइयं हवइ मंगलं ।। ३ ।।
उवज्झायाणं णमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, चउत्थं हवइ मंगलं ।। ४ ।।
साहूणं णमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पंचमं हवइ मंगलं ।। ५ ।।
एसो पंचणमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ।। ६ ।।

(२)

पंच परमेष्ठि गुण गर्भित चैत्यवन्दन

बार गुण अरिहन्त देव, प्रणमीजे भावे;
सिद्ध आठ गुण समरतां, दुःख दोहग जावे ।। १ ।।
आचारज गुण छत्रीश, पचवीश उवज्झाय;
सत्तावीश गुण साधुना, जपतां शिवसुख थाय ।। २ ।।
अष्टोत्तर शत गुण मलीए, एम समरो नवकार;
धीर विमल पंडित तणो, नय प्रणमे नित्य सार ।। ३ ।।

श्री नवकार महामन्त्र महिमा का स्तवन

ए पंच परमेष्ठिपद, मन्त्रइ नवकार,
शिवपदनुं साधन, प्रवचन केरूं सार,
एक अक्षर जपतां, सात सागरनुं दुःख,
नाशे सघले पद, पणसय सागर दुःख ॥ १ ॥

नवपद वली सम्पदा, आठ अक्षर अडसठी,
गुरु अक्षर सात ज, लघु अक्षर इगसठी,
जे विधिस्युं जपई, गुरु मुख वही उपधान,
वली निर्मल चित्ते, समकित विनय प्रधान ॥ २ ॥

होई बहु फलदायक, इह परलोके सार,
सिद्धि सघली एहमां, चौद विद्या आधार,
बहु भेदई ध्याओ, कमल कर्णिकाकार,
वली रहस्य उपांशु, भाष्य जाप त्रण सार ॥ ३ ॥

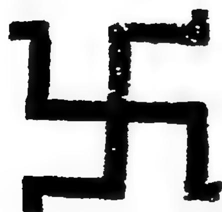
वली द्रव्ये भावे, एहना अनेक विधान,
गुरु विनयथी लहीइं, थापन पच प्रस्थान,
सवि मंगलमांहि, परम मंगल छई एह,
सवि पाप नसाड़ई, ताड़ई दुरित अछेह ॥ ४ ॥

एहनुं माहात्म्य, ज्ञान विमलथी जाणी,
आराधो अहनिश, जिम सुखिया थाओ प्राणी,
अन्तर आतमथी, लहीये एह सरूप,
परमातम भावे एह छे सिद्धिसरूप ॥ ५ ॥

श्री नवकार महामंत्र की स्तुति

आकृष्टिं सुरसम्पदां विदधतिः मुक्तिश्रियो वश्यता–
मुच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवां विद्वेषमात्मैनसाम् ।
स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रयततां मोहस्य संमोहनं,
पायात् पञ्चनमस्क्रियाऽक्षरमयी साऽऽराधना देवता ॥१॥

अर्थ पंचपरमेष्ठि नमस्क्रियारूप अक्षरमयी आराधना देवता आपकी रक्षा करो-जो कि सुरसपदाओं के आकर्षण है, मुक्तिरूपी लक्ष्मी को वश करते है, चारों गति मे होने वाली विपदाओं का नाश करते हैं। आत्मा के पापों के प्रति द्वेष करते हैं, दुर्गति के प्रति गमन करने वाले जीवों को रोकते है और जो मोह का भी संमोहन करते हैं अर्थात् मोह का भी नाश करते हैं।



संथारा पोरिसी (मूल)

संथारा पोरिसी में धार्मिक जीवन के श्रेष्ठ आदर्श की हकीकत को थोड़े मे संग्रह कर ली गई है। इसका श्रवण, वाचन, मनन, परिशीलन बहुत लाभदायक है।

महामंत्र नवकार की साधना मे तीव्रता लाने के लिये इसका स्वाध्याय बहुत ही उपयोगी है, इससे यहां प्रथम मूल सूत्र और पीछे उसका सरल शब्दार्थ बताया गया है।

१. नमस्कार

निसीहि, निसीहि, निसीहि।

नमो खमासमणाणं गोयमाईणं महामुणीणं ॥

२. संथारा की आज्ञा

अणुजाणह जिट्ठज्जा।

अणुजाणह परम-गुरु! गुरु-गुण-रयणेहिं मंडिय-सरीरा!।
'बहु-पडिपुन्ना पोरिसी, राइय संथारए ठामि' ॥१॥

३. संथारा की विधि

अणुजाणह संथारं, बाहुवहाणेण वाम-पासेणं।
कुक्कुडि-पाय-पसारण, अतरंत पमज्जए भूमिं ॥२॥
संकोइअ संडासा, उव्वट्टन्ते अ काय- पडिलेहा।

४. जागृत रहना पड़े तो

दव्वाई-उवओगं, उस्सास-निरुंभणालोए ॥३॥

५. सागारी अणसण

जइ मे हुज्ज पमाओ, इमस्स देहस्सिमाइ रयणीए ।
आहारमुवहि–देहं सव्वं तिविहेण वोसिरिअं ॥४॥

६. मंगल भावना

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं;
साहू मंगलं, केवलि–पन्नत्तो धम्मो मंगलं ॥५॥
चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा;
साहू लोगुत्तमा, केवलि–पन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो ॥६॥

७. चार शरण

चत्तारि सरणं पवज्जामि, अरिहंते सरणं पवज्जामि,
सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि,
केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि ॥७॥

८. अठारह पाप स्थानों का त्याग

पाणाइवायमलीअं, चोरिक्कं मेहुणं दविण मुच्छं ।
कोहं माणं मायं, लोहं पिज्जं तहा दोसं ॥८॥
कलहं अब्भक्खाणं, पेसुन्नं–रइ–अरइ–समाउत्तं ।
पर–परिवायं माया–मोसं मिच्छत्त–सल्लं च ॥९॥
वोसिरिसु इमाइं, मुक्ख–मग्ग-संसग्ग–विग्ध–भूआइं ।
दुग्गइ–निबंधणाइं, अट्ठारस पाव–ठाणाइं ॥१०॥

९. आत्मानुशासन

एगोहं नत्थि मे कोइ, नाहमन्नस्स कस्सइ ।
एवं अदीणमणसो, अप्पाणमणुसासइ ॥११॥

एगो मे सासओ अप्पा, नाण-दंसण संजुओ।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोग—लक्खणा ॥१२॥

१०. सर्व सम्बन्धों का त्याग

संजोग-मूला जीवेण, पत्ता दुक्ख-परंपरा।
तम्हा संजोग-संबंधं, सव्वं तिविहेण वोसिरिअं ॥१३॥

११. सम्यक्त्व की धारणा

अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो।
जिण—पन्नत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहिअं ॥१४॥

१२. क्षमापना

खमिअ खमाविअ मइ, खमह, सव्वह जीव—निकाय।
सिद्धह साख आलोयण, मुज्झह वइर न भाव ॥१५॥
सव्वे जीवा कम्म—वस, चउदह—राज भमंत।
ते मे सव्व खमाविआ, मुज्झ वि तेह खमंत ॥१६॥

१३. सब पापों का मिथ्या दुष्कृत

जं जं मणेण बद्धं, जं जं वायाइ भासिअं पावं।
जं जं काएण कयं, मिच्छा मि दुक्कडं तस्स ॥१७॥

संथारा पोरिसी का शब्दार्थ

निसीहि, निसीहि, निसीहि

क्षमा श्रमणों को, गौतम आदि महा मुनियों को नमस्कार हो। हे ज्येष्ठ आर्यो! अनुज्ञा दो।

उत्तम गुणरत्नों से विभूषित देहवाले हे परम गुरु! (प्रथम) पोरसी अच्छी तरह सम्पूर्ण हुई है, इसलिये रात्रि के संथारे के लिये स्थिर होने की आज्ञा दें (१)

हे भगवन्! सथारे की आज्ञा दो। हाथ का सहारा लेने से तथा बाई करवट सोने से (इसकी विधि का पालन होता है) और कुकड़ी के माफिक पग रख कर सोने मे अशक्त होने से भूमि का प्रमार्जन करु (और पीछे पैर लम्बे करना उसकी विधि मैं जानता हू) (२)

यदि पैर लम्बे करने के बाद सिकुड़ना पड़े, तो ढींचण को पूंज कर सिकोड़ना तथा करवट बदलना पड़े तो शरीर का प्रमार्जन करना, यह इसकी विधि है। यदि काय-चिन्ता के लिये उठना पड़े, तो निद्रा को दूर करने के लिये द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की विचारणा करना और इतने पर भी निद्रा न उड़े, तो हाथ से नाक पकड़ कर नि.श्वास को रोकना और इस तरह निद्रा बराबर उड़ जावे, तब प्रकाश वाले द्वार की तरफ जाना। (ऐसी विधि को मैं जानता हूँ।) (३)

यदि मेरे शरीर की इस रात्रि को ही मृत्यु हो जाय, तो मैं आहार, उपकरण और देह को मन, वचन, और काया से अभी वोसिराता हूँ (त्याग करता हूँ) (४)

चार पदार्थ मंगल रूप हैं। (१) अरिहंत मंगल हैं (२) सिद्ध मगल है (३) साधु मंगल है और (४) केवली प्ररूपित धर्म मगल है (५)

चार पदार्थ लोकोत्तम हैं। (१) अरिहत लोकोत्तम है (२) सिद्ध लोकोत्तम है (३) साधु लोकोत्तम है और (४) केवली भाषित धर्म लोकोत्तम है। (६)

'राग द्वेप रूप या चार गति रूप) संसार के भय से बचने के लिये मैं चारो की शरण लेता हूँ। (१) अरिहतो की शरण लेता हूँ। (२) सिद्धो की शरण लेता हूँ। (३) साधुओं की शरण लेता हूँ और (४) केवली भाषित धर्म की शरण लेता हूँ। (७)

प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, रति-अरति, पर-परिवाद, माया-मृषावाद, और मिथ्यात्व शल्य, इन अठारह पाप स्थान, मोक्ष मार्ग की प्राप्ति में विघ्न भूत और दुर्गति के कारण रूप होने से त्यागने योग्य है। (इसलिये मैं इनका त्याग करता हूँ) (८-१०)

"मैं अकेला हूं, मेरा कोई नही है और मैं भी किसी का नहीं" ऐसा अदीन मन से विचारते हुए आत्मा को समझाना चाहिये। (११)

ज्ञान और दर्शन से युक्त एक मेरी आत्मा ही शाश्वत है और दूसरे सब सयोग से उत्पन्न हुए बाह्य भाव हैं। (१२)

मेरे जीव ने दु.ख की परम्परा कर्म संयोग के कारण ही प्राप्त की है। इसलिये इन सब कर्म संयोगो को मैं मन, वचन और काया से वोसिराता हूँ। (१३)

मैं जीऊँ तब तक अरिहंत मेरे देव है, सुसाधु मेरे गुरु है और श्री जिनेश्वर भाषित धर्म को मैं तत्त्व मानता हूँ। इस तरह के सम्यक्त्व को मैंने अंगीकार किया है। (१४)

हे जीव समूह ! तुम सब क्षमत क्षमापना करके मेरे को क्षमा करो। मैं सिद्धो की साक्षी मे आलोचना करता हूँ कि मेरा किसी भी जीव से वैर भाव नही है। (१५)

सब जीव कर्मवश होकर चौदह राजलोक मे भ्रमण करते है, उन सब को मैंने क्षमाया है, वे मुझे भी क्षमा करे। (१६)

मैंने जो कोई पाप मन से बाधा हो, वचन द्वारा उच्चारण किया हो, और काया से किया हो वे सब मेरे दुष्कृत्य मिथ्या हों। (१७)

श्री अरिहंत परमात्मा

(भव अटवी में सार्थवाह)

श्री अरिहत परमात्मा का इस विश्व पर महान् उपकार है। उस उपकार को समझने के लिये भव अटवी का स्वरूप समझना जरूरी है।

यह ससार एक भयकर अटवी है। अटवी मे जिस तरह सीधे और टेढे मार्ग होते हैं, सिह, बाघ आदि हिंसक पशुओं का भय होता है, कई प्रकार के वृक्ष होते है, इन विविध वृक्षों की छाया, पत्ते, पुष्प और फल होते हैं, और अटवी मे जैसे खड्डे, दर्रे और चोर लुटेरो के उपद्रव होते है तथा फसानेवाले धाड़ामार होते हैं और पार उतारने वाले दयालु सार्थवाह भी होते है, उसी तरह ससार अटवी मे भी ये सब होते हैं।

इसका स्पष्ट स्वरूप समझने के लिये अनुभवी पुरुषों ने उपनय-भावार्थ सहित द्रव्य अटवी और भाव अटवी का विविध प्रकार का वर्णन शास्त्रो में अनेक स्थानों पर किया है।

भाव अटवी का वास्तविक स्वरूप समझने के लिये प्रथम द्रव्य अटवी का वर्णन इस प्रकार बताया गया है।

वसतपुर नाम का नगर है, वहा धन नाम का एक सार्थवाह है। इप्सितपुर जाने के लिये स्वय तैयार है। स्वयं दयालु और परोपकारी स्वभाव वाला होने से दूसरों को भी इप्सितपुर नगर जाना हो तो साथ ले जाने के लिये उद्घोषणा कराता है। साथ में आनेवालो के सरक्षण और उनके लिये आवश्यक वस्तुओं की जवाबदारी स्वयं अपने पर लेता है।

उसकी उद्घोषणा को सुन इप्सितपुर जाने की इच्छा वाले बहुत से लोग वहाँ इकट्ठे होते हैं।

इप्सितपुर जाने के लिये बीच में एक भयंकर अटवी आती है। इस अटवी को पार करने के दो रास्ते हैं। एक मार्ग छोटा है और दूसरा मार्ग टेढा मेढा होने से लम्बा है। इस लम्बे मार्ग से सुख पूर्वक जाया जाता है परन्तु बहुत दिन लगते हैं जो कि अंत में यह मार्ग भी छोटे मार्ग से आगे जाकर मिल जाता है।

छोटे मार्ग से इप्सितपुर जल्दी पहुँचा जा सकता है, परन्तु कष्ट से पहुँचा जाता है। उस मार्ग मे चलना कठिन है क्योंकि उसमे चढाव उतार बहुत आते है, फिर वह लिपसना है। थोड़ी सी लापरवाही से गिरते देर नही लगती, उस मार्ग मे प्रवेश करते ही महाघोर और विकराल सिंह तथा बाघ मुसाफिर के पैरो को पकडते हैं, वे जब तक नहीं छोडते तब तक मार्ग मे आगे नहीं बढा जा सकता। पूरी अटवी मे ये बाघ और सिंह मुसाफिर का पीछा करते है।

इस मार्ग मे वृक्ष भी बहुत मिलते हैं। उनमे बहुत से तो बड़े मनोहर हैं। परन्तु उनकी छाया विश्राम लेने लायक नही है; क्योंकि बहुत मनोहर होने पर भी उन वृक्षो की छाया मृत्यु देनेवाली है। इसके सिवाय उस मार्ग मे बहुत से वृक्ष सूखे व कुम्हलाये पत्तोवाले हैं, यदि उनके नीचे थोडी देर विश्राम किया जाय, तो मृत्यु का डर नही है।

इस मार्ग के दोनो तरफ़ मनोहर स्वरूपवान् बहुत से पुरुष हैं, वे रास्ते मे जानेवाले मुसाफिरो को लोभ और लालच देकर बुलाते हैं, परन्तु उनकी बाते सुनने लायक नही है। उनके मीठे

वचनों में आकर साथ के मनुष्यों से अलग होने पर बड़ा भय है; क्योंकि अकेले उस अटवी को पार करना सम्भव नहीं है।

दुरंत और घोर दावाग्नि भी इस अटवी में जलती रहती है। उस दावाग्नि को पार करने में जरा भी वेपरवाही की जाय, तो निश्चय वह मनुष्य को जला देती है।

बहुत कठिनाई से उल्लघन किये जावें, ऐसे ऊँचे २ पर्वत इस रास्ते में आते है। सावधानी पूर्वक उनका उल्लघन न किया जाय, तो निश्चय ही मृत्यु हो जाती है।

उस मार्ग में आगे चलने पर अत्यंत गहन और विस्तृत वांस जाल (वास का जगल) आता है, जिन्हे एक दम पार कर जाना चाहिये, क्योंकि वहाँ रहने से बहुत दोष उत्पन्न होते हैं।

उसके बाद उस मार्ग में आगे चलने पर एक बड़ा गहरा खड्डा आता है, उस खड्डे के पास ही मनोरथ नाम का याचक वहां बराबर खड़ा रहता है। जो कोई उधर से गुजरता है, उसे वह कहता है कि 'इस खड्डे को थोड़ा बन्द करते जाओ' परन्तु उसकी बात को बिलकुल नही सुनना चाहिये; क्योंकि वह खड्डा कभी नही भरा जा सकता है। जैसे-जैसे उसे भरते जायेंगे, वैसे-वैसे वह अधिक २ बड़ा होता जायगा, उसे भरने से वह आस पास के रास्तों को भी खराब कर देता है ऐसा वह विचित्र खड्डा है। उसे भरने के लिये मनोरथ नामक याचक की बात नही सुनना चाहिये और उस खड्डे को भरने के लिये वहां नही रुकना चाहिये।

इसी तरह उस अटवी मे चक्षु और इन्द्रियों को अत्यंत सुखदायक दिव्य किंपाक नाम के फल है। वे फल देखने लायक और खाने योग्य भी नही हैं।

इसके सिवाय उस अटवी मे रहनेवाले बाईस महा विकराल पिशाच प्रतिक्षण उधर से जानेवाले मुसाफिरो को त्रास देते रहते हैं, परन्तु उस त्रास को परवाह नही करना चाहिये।

इसके अलावा इस छोटे मार्ग से जाने मे खाने-पीने को वस्तुए भी दुर्लभ होती हैं, इस कारण इस रास्ते मे कही रुकना भी नही है। निरतर गमन चालू नही रखने पर कभी इप्सित-पुर नगर मे नही पहुँचा जा सकता है। रात्रि मे भी कभी दो पहर से अधिक निद्रा नही लेकर, बाकी दो पहर मे भी चलते रहना ही इष्ट है।

इस प्रकार अप्रमत्तता से चला जाय, तब इस अटवी को जल्दी पार किया जा सकता है। अटवी पार कर लेने पर दुर्गति से रहित नगर मिलता है, जहाँ किसी प्रकार का कोई क्लेश नही है, वरन् सुख ही सुख है।

छोटे मार्ग का वर्णन सुनकर कुछ लोग सार्थवाह के साथ छोटे मार्ग से गये और बाकी के लोग लम्बे मार्ग से गये। इस तरह सार्थवाह व उनके साथी इप्सितपुर नगर मे पहुँच गये।

मार्ग मे चलते समय सार्थवाह और उनके साथी मार्ग को जितना सुधार सकते थे सुधारते जाते थे। बीच मे आने वाले शिला-खण्डो पर मार्ग के गुण व दोषो को लिखते जाते थे। इससे पीछे आनेवाले मुसाफिरो को यह भी पता चल जाय कि कितना चल चुके हैं और कितना चलना और बाकी है।

सार्थवाह की आज्ञा के माफिक चलनेवाले जिस तरह शीघ्र इच्छित स्थान पर पहुँच जाते हैं, वैसे ही पीछे रहे लोग भी सार्थवाह के लिखित सकेत के अनुसार चलते हैं, वे भी इप्सित-पुर पहुँच जाते है।

परन्तु जो इस तरह नही चले और चलते नही, वरन् रास्ते मे मनोहर वृक्षो आदि की छाया में विश्राम लेने खड़े रहते हैं, वे इच्छित स्थान पर पहुँचे भी नही और पहुँचेंगे भी नही।

इस दृष्टात का उपनय यह है कि सार्थवाह के स्थान पर श्री अरिहत भगवान् को समझना। उद्घोषणा, यह उनकी धर्मदेशना है। मुसाफिरों के स्थान पर ससारी जीव है। अटवी यह संसार है। सर्वविरति साधु-मार्ग, सरल मार्ग। लम्बा मार्ग देशविरति-श्रमणोपासक मार्ग है। इप्सितपुर मोक्ष है। सिंह व बाघ के स्थान पर राग व द्वेष समझना। मनोहर वृक्षों की स्त्री आदि से ससक्त वस्तियो रहने के स्थान है। परिशाटित और शुष्क वृक्षो के स्थान पर निर्दोष वस्ती रहने के स्थान को समझना। दोनो तरफ के बोलने वाले पुरुषो के स्थान पर अकल्याण मित्रों को समझना, सार्थवाह के साथ चलने वालों को साधु समझना। दावाग्नि के स्थान पर क्रोध, पर्वत के स्थान पर मान, वशजाला के स्थान पर माया, खड्डे के स्थान पर लोभ समझना। किंपाक फल पाच इन्द्रियो के शब्द, रूप, रस, गध और स्पर्श आदि पाँच विषय हैं। बाईस पिशाच बाईस परिषह हैं। विरस और अल्प भोजन-पान की जगह प्रासुक और एषणीय आहार पानी है। प्रयाण के स्थान पर निरतर उद्यम है। रात्रि में दो प्रहर गमन के स्थान पर स्वाध्यायकरण है, तथा अत में इप्सितपुर प्राप्ति मुक्तिपुरी है। इस नगरी मे किसी प्रकार का क्लेश नही है और केवल सुख ही सुख है। इसका विशेष स्वरूप शास्त्रो मे निम्न प्रकार वर्णन किया है। —

यह मुक्ति नगरी ऐसी सुन्दर और आकर्षक है कि उसका सम्पूर्ण वर्णन करना मनुष्य की शक्ति के बाहर है। फिर भी

सामान्य रूप से कहा जाय, तो वहां मृत्यु नहीं, वृद्धावस्था नहीं, पीड़ा-शोक नहीं, उद्वेग नहीं, क्षुधा नहीं तृषा नहीं और किसी भी प्रकार के उपद्रव वहां नहीं, वहाँ तो केवल स्वभाविक बाधा-पीड़ा बिना का अपने स्वाधीन ऐसा केवल सुख ही सुख है। इस संसार के तमाम सुखों को एकत्र कर उनका उतने से ही गुणा किया जाय, तब भी वह सुख सम्पूर्ण स्वरूप-लाभ और सहजानन्द स्वरूप मुक्ति, जो आत्मा ने प्राप्त की है, वह आत्मा के सुख के एक प्रदेश के सुख जितना भी नहीं हो सकता। यदि मुक्तात्माओं के सुख का केवल एक अंश ही लिया जावे, तब भी वह सुख-समग्र लोका-काश मे नहीं समा सकता।

दूसरे सुखों को बाहर लेने जाना पडता है, जब की मुक्ति नगर में सुख स्वभाव से अदर ही मिलते है। दूसरे सुखों में बीच-बीच में पीड़ा उद्वेग होता है, जब कि मुक्ति सुख में कोई पीडा, अड़चन या अंतराय नहीं होती। दूसरे सुखों में दूसरों से वस्तु, धन, समय, सहाय, आदि की अपेक्षा रहती है, जबकि मुक्ति नगर के सुख अपने पर ही आधारित हैं। दूसरे सुखों का आखिर मे अत आता है और फिर पीछे दुःख होता है। मुक्ति सुख का कभी अंत नहीं होता। दुनियादारी के सुखों की बराबरी के लिये दूसरी वस्तुएं होती है, जब कि मुक्ति सुखों की बराबरी के लिये ससार मे कोई उपमा ही नहीं है। जैसे गांव के लोग कदाचित् नगर के गुणो को जानते हो, तब भी उपमा योग्य वस्तु के अभाव मे उसका वर्णन नहीं कर सकते, वैसे ज्ञानी पुरुष भी मुक्तात्माओं के स्वरूप को जानते हुए भी उसका स्वरूप कहने के लिये ससार में कोई उपमा नहीं मिलने से नहीं कह सकते, इसलिये वह अवर्णनीय है, जब उसका अनुभव हो, तब ही वह कल्पना कर सकता है।

ऐसा अनुपम, अनुत्तर, विशुद्ध, स्वाधीन और अविनाशी कभी भी क्षय न हो ऐसा सुख मुक्ति मे है ।

मनुष्य-भव-रूपी नगर से लेकर मुक्ति नगर की प्राप्ति तक बीच में आने वाले अतराय और अटवी इतने विषम हैं कि सार्थवाह बिना या साथियो की सहायता बिना वह सब को पार नहीं कर सकता ।

इसलिये मुक्तिनगर की प्राप्ति करने के इच्छुक को अरिहंत परमात्मा और उनके शासन को आदर पूर्वक रात दिन शरण लेना अत्यंत आवश्यक है ।

समरो नित्य नवकार

सुख कारण भवियण, समरो नित्य नवकार,
जिन शासन आगम, चौद पूरव नो सार,
इण मत्रनो महिमा, कहेता न आवे पार,
सुरतरु मन चिंतित, वछित फल दातार ॥ १ ॥

सुर दानव मानव, सेवा करे कर जोड़,
भूमण्डल विचरे, तारे भवि जन कोड़,
सुर छन्दे विलसे, अतिशय जास अनन्त,
पद पहेले प्रणमुं, अरि-गजन अरिहन्त ॥ २ ॥

जे पन्नरे भेदे, सिद्ध थया भगवन्त,
पंचमी गति पहोता, अष्ट करम करी अन्त,
कल अकल सरूपी, पंचानन्तक देह,
बीजे पद प्रणमुं, सिद्धतणा गुण एह ॥ ३ ॥

गच्छ भार धुरन्धर, सुन्दर शशधर शोभ,
करे सारण वारण, गुण छत्रीसे थोभ,
सूत्र जाण शिरोमणि, सागर जिम गम्भीर,
त्रीजे पद प्रणमुं, आचारज गुण धीर ॥ ४ ॥

श्रुतधर गुण आगम, सूत्र भणावे सार,
तप विधि सजोगे, भाखे अर्थ विचार,
मुनिवर गुण जुत्ता, कहीए ते उवज्झाय,
पद चौथे प्रणमुं, अहनिशि तेहना पाय ॥ ५ ॥

पंचाश्रव टाले, पाले पंचाचार,
तपसी गुण धारी, वारी विषय विकार,
त्रस थावर पीयर, लोक मांहि जे साध,
त्रिविधे करी प्रणमुं, परमारथ जिणे लाध ॥ ६ ॥

अरि हरि करि साइणि, डाइणि भूत वेताल,
सवि पाप पणासे, वासित मंगल माल,
इम समर्या संकट, दूर टले तत्काल,
जपे जिनगुण प्रभु, सुन्दर शिष्य रसाल ॥ ७ ॥



श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथ भगवान्
का स्तोत्र

ॐ नमः पार्श्वनाथाय, विश्वचिन्तामणीयते ।
ह्रीँ धरणेन्द्रवैरोट्या–पद्मादेवीयुताय ते ॥१॥

शान्तितुष्टिमहापुष्टि-धृतिकीर्तिविधायिने ।
ॐ ह्रीँ द्विड्व्यालवेताल–सर्वाधिव्याधिनाशिने ॥२॥

जयाऽजिताख्याविजयाख्याऽपराजितयाऽन्वित !
दिशांपालैर्ग्रहैर्यक्षै-र्विद्यादेवीभिरन्वित ! ॥३॥

ॐ असिआउसा नम–स्तत्र त्रैलोक्यनाथताम् ।
चतुःषष्टिः सुरेन्द्रास्ते, भासन्ते छत्रचामरैः ॥४॥

श्रीशंखेश्वरमण्डन ! पार्श्वजिन ! प्रणतकल्पतरुकल्प !।
चूरय दुष्टव्रातं, पूरय मे वाञ्छितं नाथ ! ॥५॥

पू० आचार्य श्री सिद्धसेन सूरि विरचित "श्री नमस्कार माहात्म्य" नामक ग्रंथ के छठे प्रकाश के आधार पर श्री नमस्कार महामन्त्र की महिमा यहाँ बतलाई जाती है।

श्री नवकार महामंत्र की महिमा

श्री पंच परमेष्ठि नमस्कार महामन्त्र सर्व पापो का नाश करनेवाला है तथा सर्व मगलों मे प्रथम मगल है, जो कोई पाँच समिति मे प्रयत्नशील हो, तीन गुप्ति से पवित्र हो, इस पंच नमस्कार का त्रिकाल स्मरण करता है, उसे शत्रु मित्र रूप हो जाते हैं, विष अमृत हो जाता है, जंगल सुन्दर महल हो जाता है, दुष्ट ग्रह अनुकूल हो जाते है, चोर भी यश फैलाने वाले हो जाते हैं, खराब निमित्त और अपशकुन आदि भी शुभ फल देनेवाले हो जाते हैं, मन्त्र, तन्त्र आदि उसका पराभव नही कर सकते, सर्प कमल की नाल जैसा बन जाता है, डाकिन भी उसका द्रोह नही कर सकती, अग्नि चणोठी के ढेर के माफिक हो जाती है, सिंह सियाल जैसे बन जाते है, हाथी मृग जैसा हो जाता है, राक्षस रक्षा करने लगते है, भूत विभूति करने वाले हो जाते है, प्रेत प्रीति करने लगते है, चेटक-मलिन व्यंतर देवता उसके दास हो जाते है, युद्ध उसे धन देने वाला हो जाता है, रोग उसे भोग देने वाले हो जाते है, विपत्ति उसे सम्पत्ति के लिये होती है तथा सब प्रकार के दुःख उसे सुख देने वाले होते है।

जैसे गरुड का स्वर सुनकर चन्दन का वृक्ष सर्पों के बंधन से मुक्त हो जाता है, वैसे पंच नमस्कार की गम्भीर ध्वनि सुनने से मनुष्य भी तमाम बन्धनों से मुक्त हो जाता है। नमस्कार मे एक चित्तवाले के लिये जल, स्थल, श्मशान, पर्वत, दुर्ग वगैरह उपद्रव के स्थान भी उत्सवरूप मे परिवर्तित हो जाते हैं। पुण्यानुबन्धी पुण्यवाला जीव विधि पूर्वक पंच परमेष्ठि नमस्कार का ध्यान करता है वह तिर्यंच व नरकगति मे तो कभी जाता ही नही। नमस्कार के प्रभाव से चक्रवर्ती आदि की सम्पदा समुद्र के किनारे के मुक्ताफल की तरह सुलभ हो जाती है। विधिपूर्वक स्मरण किया गया यह मन्त्र सब सिद्धियों का देनेवाला है। विधिपूर्वक स्मरण करने से यह मन्त्र, पर-विद्या का उच्छेद करता है तथा क्षुद्र देवताओं के उपद्रव को नाश करता है।

स्वर्ग, मृत्यु और पाताल तीनों लोक में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से जो कोई आश्चर्यकारी अतिशय किसी को दिखाई देता है, वह इस नमस्कार की आराधना का ही प्रभाव है, ऐसा समझना। तिर्च्छालोक मे चन्द्र आदि, अधो लोक मे चमरेन्द्र आदि, सौधर्मादि में शक्रेन्द्र आदि तथा आगे के अहमिन्द्र आदि की जो सम्पत्ति दिखाई देती है, वह नमस्कार रूपी वृक्ष के अंकुर, पल्लव, कली या पुष्प है, ऐसा समझना। अभी तक जिन-जिन आत्माओं ने सिद्धपद प्राप्त किया है वे नमस्कार रूपी महारथ पर चढ़कर ही प्राप्त किया है और प्राप्त करेंगे। जब यह मन्त्र दुर्लभ शिवपद भी देता है, तो आनुषंगिक दूसरे फल भी दे, उनकी तो क्या गिनती की जावे।

जो मन, वचन और काया की शुद्धि से एक लाख नवकार का जाप करते हैं, वे जैन संघ के पूज्य बन तीर्थङ्कर नाम कर्म बांधते हैं। हे मित्र ! यदि तेरा मन नमस्कार में लीन नही होता, तो चिरकाल से आचरण किये तप, श्रुत और चारित्र का क्या फल है ? जो असख्य दु:खो को दूर करता है, जो इस लोक और परलोक मे सुख देने के लिये कामधेनु के समान है, दुषम काल मे जो कल्पवृक्ष के समान है, उस मन्त्राधिराज का जाप क्यो नही किया जाय ? दिये से, सूर्य से या दूसरे किसी भी तेज से जिस अन्धकार का नाश नही होता है, उसका नाश नमस्कार से होता है। जैसे नक्षत्रो मे चन्द्रमा शोभायमान है, वैसे तमाम पुण्य राशि मे भाव नमस्कार सर्व श्रेष्ठ है। भाव नमस्कार के विना जीव ने अनन्त वार द्रव्य लिंग धारण किये और छोड़े; परन्तु कोई फल नही मिला। विधि पूर्वक आठ वार, आठ सौ वार, आठ हजार वार या तो आठ करोड़ वार इस नमस्कार का जाप किया जाय, तो तीन भव मे मुक्ति देता है।

हे धर्म वन्धु ! सरल भाव से तुझे प्रार्थना करता हूँ कि संसार समुद्र मे जहाज समान इस मन्त्र के वारे मे शिथिल मत वन। यह भाव नमस्कार अवश्यमेव उत्कृष्ट तेज है, स्वर्गापवर्ग का मार्ग है, दुर्गति को नाश करने मे अग्नि के कण समान है। भव्य प्राणी अन्त समय की आराधना के समय इसे पढे, सुने और इसका ध्यान करें, तो वह कल्याण की परम्परा को प्राप्त करता है। जैसे आग लगने पर उस समय मनुष्य अन्य सर्व चीजो को छोड़कर रत्नो की ही पहले रक्षा करता है, तथा युद्ध मे विषम स्थिति पर महा सुभट अपने अमोघ शस्त्र को काम मे लेता है, वैसे अन्त समय पर सर्व श्रुत स्कन्ध का

चिन्तन करने का सामर्थ्य नही रहने से, क्षीण बुद्धि वाले सात्विक पुरुष द्वादशागी के सारभूत पच परमेष्ठि को ही याद करते है। जैसे समुद्र मे से अमृत, मलयाचल मे से चन्दन, दही मे से मक्खन, वैसे आगम से उद्धृत सर्व श्रुतो का सारभूत और कल्याण की निधि समान इस नवकार का कोई धन्य पुरुष ही सेवन करता है।

पवित्र शरीर से कमलासन से बैठ, हाथ को योगमुद्रा मे रख, सविग्न मनवाला बन, स्पष्ट, गम्भीर और मधुर स्वर से पूर्ण पंच नमस्कार का सम्यक् प्रकार से उच्चारण करना यह उत्सर्ग विधि है। रोग आदि के कारण इस विधि का पालन न हो सके, तो परमेष्ठियो के नाम के आदि अक्षरो से बनता 'असिआउसा' इस मन्त्र को याद करके भी अनन्त जीव यम के बन्धन से मुक्त हुए है। इन आद्य अक्षरों की सन्धि करने से अ+अ+आ+उ+म् ओं (ॐ) बनता है। यह ॐकार मोह हस्ती को वश करने के लिये अकुश के समान है। दैववशात् अन्त समय मे ॐकार को भी याद नही किया जा सके, तो धर्मबन्धु से उसका श्रवण करना और विचार करना कि अहो! मैं सर्वांगे अमृत से सिंचित हूँ और आनन्दमय हूँ कि जिससे किसी पुण्यशाली बन्धु ने पुण्य का कारण, परम कल्याण को करने वाला, परम मगलमय यह पच नमस्कार मुझे सुनाया। अहो! मुझे दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति हुई, प्रिय का समागम हुआ, तत्व का प्रकाश हुआ, हाथ मे सारभूत वस्तु प्राप्त हुई, आज मेरे कष्टो का नाश हुआ, पाप दूर हुए और मैं भव समुद्र से पार हुआ, कि पंच नमस्कार मुझे सुनाई पड़ा। पच नमस्कार श्रवण से आज मेरा प्रशम, देव गुरु की आज्ञा का पालन, नियम, तप और जन्म सर्व सफल हुए। सुवर्ण को अग्नि का

ताप जैसे शुद्धि के लिये होता है, वैसे मेरी विपत्ति भी मेरे अच्छे के लिये हुई कि जिससे महा मूल्यवान् यह नमस्कार का तेज आज मुझे मिला। इस तरह शम रस से उल्लासपूर्वक नमस्कार को सुनने वाला क्लिष्ट कर्मों का नाश कर सद्‌गति को प्राप्त करता है। तत्पश्चात् उत्तम देवलोक मे उत्पन्न होता है। वहां से च्यवन कर धर्मनिष्ठ विपुल समृद्धि शाली कुलो मे उत्पन्न होकर नमस्कार को भवित करने वाला जीव आठ भव में सिद्धि को प्राप्त करता है।

श्री नमस्कार महामन्त्र का ऐसा अचिंत्य प्रभाव जानकर इस महामन्त्र को हृदयेश्वर बनाकर सर्व दु:खो से मुक्त बनो।

स्तोत्र पाठ की महिमा

श्री नमस्कार महामन्त्र की आराधना मे तीव्रता लाने के लिये महामन्त्र का स्मरण, जाप और ध्यान आदि जैसे उपयोगी अग है, वैसे स्तोत्र पाठ भी एक अगत्य का अग है। सेवा, पूजा आदि से शरीर आदि की शुद्धि होती है, ध्यान से मन की शुद्धि होती है और स्तोत्र पाठ से वाणी की शुद्धि होती है। सम्पूर्ण साधनशुद्धि बिना साध्य शुद्धि नही हो सकती। मन, वचन और काया ये तीनो भी आराधना मे मुख्य साधन है। उनमे स्तोत्र पाठ वाणी को (वचन को) पवित्र बनाने का एक अमोघ साधन है। कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य श्री ने एक स्थान पर फरमाया है कि "तत्र स्तोत्रेण कुर्यां च पवित्रां स्वां सरस्वती" अर्थात् मैं भगवान् के स्तोत्र द्वारा मेरी वाणी को पवित्र बनाता हूँ।

दीर्घकाल तक विधि पूर्वक श्रेष्ठ उपासना करने के बाद और उनके द्वारा परमतत्त्व के साथ अभेद भाव से मिलन का आस्वाद लेने के बाद पवित्र हृदय वाले अनुभवी महापुरुष जो स्तोत्र की रचना करते है, वे बहुत ही प्रभावशाली होते हैं। उनकी इन रचनाओं से "दूसरे भी भव्य जीव इन स्तोत्रो के पाठ द्वारा परम तत्त्व का साक्षात्कार करनेवाले बनें" ऐसा शुभ संकल्प और महान् करुणा भरी होती है, जिससे शुद्ध हृदय पूर्वक उनका आलबन लेने वाले उत्तम जीवों को वे स्तोत्र चित्त-शुद्धि आदि में एकदम चमत्कारिक रीति से असर करने वाले सिद्ध होते हैं। इनमे श्री मन्त्राधिराज स्तोत्र, श्री ऋषि-मण्डल स्तोत्र और श्री चिन्तामणि स्तोत्र आदि महाप्रभावशाली स्तोत्र माने जाते हैं। यहाँ वे स्तोत्र दिये जाते है।

શ્રી મંત્રાધિરાજસ્તોત્રમ્

શ્રી પાર્શ્વ: પાતુ વો નિત્ય, જિન. પરમશંકર: ।
નાથ. પરમશક્તિશ્ચ, શરણ્ય. સર્વકામદ: ॥ ૧ ॥

સર્વવિઘ્નહર: સ્વામી, સર્વસિદ્ધિપ્રદાયક: ।
સર્વસત્વહિતો યોગી, શ્રીકર: પરમાર્થદ: ॥ ૨ ॥

દેવદેવ: સ્વયંસિદ્ધશ્ચિદાનન્દમય: શિવ: ।
પરમાત્મા પરબ્રહ્મા, પરમ. પરમેશ્વર: ॥ ૩ ॥

જગન્નાથ: સુરજ્યેષ્ઠો, ભૂતેશ: પુરુષોત્તમ: ।
સુરેન્દ્રો નિત્યધર્મશ્ચ, શ્રીનિવાસ: શુભાર્ણવ ॥ ૪ ॥

સર્વજ્ઞ: સર્વદેવેશ., સર્વદ. સર્વગોત્તમ. ।
સર્વાત્મા સર્વદર્શી ચ, સર્વવ્યાપી જગદ્ગુરુ. ॥ ૫ ॥

તત્વમૂર્તિ: પરાદિત્ય:, પરબ્રહ્મપ્રકાશક. ।
પરમેન્દુ: પરપ્રાણ., પરમામૃતસિદ્ધિદ: ॥ ૬ ॥

અજ. સનાતન: શમ્ભુ-રીશ્વરશ્ચ સદાશિવ: ।
વિશ્વેશ્વર. પ્રમોદાત્મા, ક્ષેત્રાધીશ: શુભપ્રદ: ॥ ૭ ॥

સાકારશ્ચ નિરાકાર:, સકલો નિષ્કલોઽવ્યય: ।
નિર્મમો નિર્વિકારશ્ચ, નિર્વિકલ્પો નિરામય: ॥ ૮ ॥

અમરશ્ચાજરોઽનન્ત, એકોઽનન્ત. શિવાત્મક. ।
અલક્ષ્યશ્ચાપ્રમેયશ્ચ, ધ્યાનલક્ષ્યો નિરંજન. ॥ ૯ ॥

ૐકારાકૃતિરવ્યક્તો, વ્યક્તરૂપસ્ત્રયીમય: ।
બ્રહ્મદ્વયપ્રકાશાત્મા, નિર્ભય: પરમાક્ષર: ॥ ૧૦ ॥

दिव्यतेजोमयः शान्तः, परामृतमयोऽच्युतः ।
आद्योऽनाद्यः परेशानः, परमेष्ठी परः पुमान् ॥ ११ ॥
शुद्धस्फटिकसंकाशः, स्वयंभूः परमाच्युतः ।
व्योमाकारस्वरूपश्च, लोकाऽलोकावभासकः ॥ १२ ॥
ज्ञानात्मा परमानन्दः, प्राणारूढो मनःस्थितिः ।
मनःसाध्यो मनोध्येयो, मनोदृश्यः परापरः ॥ १३ ॥
सर्वतीर्थमयो नित्यः, सर्वदेवमयः प्रभुः ।
भगवान् सर्वतत्त्वेशः, शिवश्रीसौख्यदायकः ॥ १४ ॥
इति श्री-पार्श्वनाथस्य, सर्वज्ञस्य जगद्गुरोः ।
दिव्यमष्टोत्तरं नाम-शतमत्र प्रकीर्तितम् ॥ १५ ॥
पवित्रं परमं ध्येयं, परमानन्ददायकम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं नित्यं, पठते मंगलप्रदम् ॥ १६ ॥
श्रीमत्परमकल्याण-सिद्धिदः श्रेयसेऽस्तु वः ।
पार्श्वनाथजिनः श्रीमान्, भगवान् परमः शिवः ॥ १७ ॥
धरणेन्द्रफणच्छत्रा-लङ्कृतो वः श्रियं प्रभुः ।
दद्यात्पद्मावतीदेव्या, समधिष्ठितशासनः ॥ १८ ॥
ध्यायेत्कमलमध्यस्थं, श्रीपार्श्वजगदीश्वरम् ।
ॐ ह्रीं श्रीं ह्रं समायुक्तं, केवलज्ञानभास्करम् ॥ १९ ॥
पद्मावत्यान्वितं वामे, धरणेन्द्रेण दक्षिणे ।
परितोऽष्टदलस्थेन, मन्त्रराजेन संयुतम् ॥ २० ॥
अष्टपत्रस्थितैः पञ्च-नमस्कारैस्तथा त्रिभिः ।
ज्ञानाद्यैर्वेष्टितं नाथं, धर्मार्थकाममोक्षदम् ॥ २१ ॥
शतषोडशदलारूढं विद्यादेवीभिरन्वितम् ।
चतुर्विंशतिपत्रस्थं, जिनं मातृसमावृतम् ॥ २२ ॥

मायावेष्ट्यं त्रयाग्रस्थं, क्रौँकारसहित प्रभुम् ।
नवग्रहावृतं देव, दिक्पालैर्दशभिर्वृतम् ॥ २३ ॥

चतुष्कोणेषु मन्त्राद्यै-श्चतुर्बीजान्वितैर्जिनैः ।
चतुरष्टदशद्वीति द्विधांकसंज्ञकैर्युतम् ॥ २४ ॥

दिक्षु क्षकारयुक्तेन, विदिक्षु लांकितेन च ।
चतुरस्त्रेण वज्रांक-क्षितितत्त्वे प्रतिष्ठितम् ॥ २५ ॥

श्री-पार्श्वनाथमित्येव, यः समाराधयेज्जिनम् ।
त सर्वपापनिर्मुक्त, भजते श्रीः शुभप्रदा ॥ २६ ॥

जिनेशः पूजितो भक्त्या, संस्तुत प्रस्तुतोऽथवा ।
ध्यातस्तु यैः क्षण वाऽपि, सिद्धिस्तेषा महोदया ॥ २७ ॥

श्रीपार्श्वमन्त्रराजान्ते, चिन्तामणिगुणास्पदम् ।
शान्तिपुष्टिकर नित्य, क्षुद्रोपद्रवनाशनम् ॥ २८ ॥

ऋद्धि-सिद्धि-महाबुद्धि-धृति-श्री-कान्ति-कीर्त्तिदम् ।
मृत्युजय शिवात्मान, जपनान्नन्दितो जन. ॥ २९ ॥

सर्वकल्याणपूर्णः स्याज्जरामृत्युविवर्जित. ।
अणिमादिमहासिद्धि, लक्षजापेन चाप्नुयात् ॥ ३० ॥

प्राणायाममनोमन्त्र-योगादमृतमात्मनि ।
त्वामात्मान शिव ध्यात्वा, स्वामिन् सिध्यन्ति जन्तव ॥३१॥

हर्षदः कामदश्चेति, रिपुघ्नः सर्वसौख्यदः ।
पातु व. परमानन्द-लक्षण सस्मृतो जिनः ॥ ३२ ॥

तत्त्वरूपमिद स्तोत्र, सर्वमगलसिद्धिदम् ।
त्रिसन्ध्यं य. पठेन्नित्य, नित्यं प्राप्नोति स श्रियम् ॥ ३३ ॥

आद्यन्ताक्षरसंलक्ष्य,–मक्षरं व्याप्य यत् स्थितम् ।
अग्निज्वालासम नाद, बिंदुरेखासमन्वितम् ॥ १ ॥

अग्निज्वालासमाक्रांतं, मनोमल विशोधकम् ।
देदीप्यमान हृत्पद्मे, तत्पदं नौमि निर्मलम् ॥ २ ॥

अर्हमित्यक्षर ब्रह्म , वाचक परमेष्ठिनः ।
सिद्धचक्रस्य सद्बीज, सर्वतः प्रणिदध्महे ॥ ३ ॥

ॐनमोऽर्हद्भ्यो ईशेभ्य., ॐ सिद्धेभ्यो नमो नम. ।
ॐ नम सर्वसूरिभ्य, उपाध्यायेभ्य ॐ नमः ॥ ४ ॥

ॐ नम ॐ सर्वसाधुभ्य, ॐ ज्ञानेभ्यो नमो नम ।
ॐ नमस्तत्त्वदृष्टिभ्यश्चारित्रेभ्यस्तु ॐ नम. ॥ ५ ॥

श्रेयसेऽस्तु श्रियेऽस्त्वेत–दर्हदाद्यष्टकं शुभम् ।
स्थानेष्वष्टसु विन्यस्त, पृथग्बीजसमन्वितम् ॥ ६ ॥

आद्यं पद शिखा रक्षेत्, पर रक्षेत् मस्तकम् ।
तृतीयं रक्षेन्नेत्रे द्वे, तुर्यं रक्षेच्च नासिकाम् ॥ ७ ॥

पंचम तु मुख रक्षेत्, षष्ठं रक्षेच्च घटिकाम् ।
नाभ्यंत सप्तम रक्षेत्, रक्षेत् पादान्तमष्टमम् ॥ ८ ॥

पूर्वं प्रणवतः सात., सरेफो द्व्यब्धिपंचषान् ।
सप्ताष्ट–दशसूर्यांकान्, श्रितो बिंदुस्वरान् पृथक् ॥ ९ ॥

पूज्यनामाक्षरा आद्याः, पंच–दर्शनबोधने ।
चारित्रेभ्यो नमो मध्ये, ह्रीं सांतः समलंकृतः ॥ १० ॥

[मूलमंत्र–ॐ ह्रां ह्रीं ह्रुं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रौं ह्रः
असिआउसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रेभ्यो ह्रीं नम.]

जंबूवृक्षधरो द्वीपः, क्षारोदधिसमावृतः ।
अर्हदाद्यष्टकरष्ट–काष्टाधिष्ठैरलंकृतः ॥ ११ ॥

तन्मध्ये सगतो मेरु, कूटलक्षैरलंकृत. ।
उच्चैरुच्चैस्तरस्तार स्तारामडलमडित. ॥ १२ ॥

तस्योपरि सकारांत, बीजमध्यास्य सर्वगम् ।
नमामि बिंबमार्हन्त्य, ललाटस्थ निरंजनम् ॥ १३ ॥

अक्षय निर्मल शात, बहुल जाड्यतोज्झितम् ।
निरीह निरहंकार, सार सारतरं घनम् ॥ १४ ॥

अनुद्धत शुभ स्फीत, सात्त्विक राजस मतम् ।
तामस चिरसबुद्ध, तैजस शर्वरी-समम् ॥ १५ ॥

साकार च निराकार, सरसं विरस परम् ।
परापर परातीत, परपरपरापरम् ॥ १६

सकल निष्कल तुष्ट, निवृत्त भ्रातिवर्जितम् ।
निरजन निराकार, निर्लेप वीतसशयम् ॥ १७ ॥

ईश्वर ब्रह्म सबुद्ध, शुद्ध सिद्ध मत गुरुम् ।
ज्योतीरूप महादेव, लोकालोकप्रकाशकम् ॥ १८ ॥

अर्हदाख्यस्तु वर्णात., सरेफो बिंदुमडित ।
तुर्यस्वरकलायुक्तो,–बहुधा नादमालित. ॥ १९ ॥

एकवर्ण द्विवर्णं, च, त्रिवर्णं तुर्यवर्णकम् ।
पचवर्ण, महावर्ण, सपर च परापरम् ॥ २० ॥

अस्मिन् बीजे स्थिता. सर्वे, ऋषभाद्या जिनोत्तमाः ।
वर्णैर्निजैर्निजैर्युक्ता, ध्यातव्यास्तत्र सगताः ॥ २१ ॥

नादश्चन्द्रसमाकारो, बिंदुर्नीलसमप्रभः ।
कलारुणसमासातः स्वर्णाभः सर्वतोमुखः ॥ २२ ॥

शिरःसंलीन ईकारो, विनीलो वर्णतः स्मृतः ।
वर्णानुसारसंलीनं, तीर्थकृन्मंडलं स्तुमः ।। २३ ।।

चंद्रप्रभ-पुष्पदंतौ, 'नाद' स्थितिसमाश्रितौ ।
'बिंदु'मध्यगतौ नेमि,-सुव्रतौ जिनसत्तमौ ।। २४ ।।

पद्मप्रभ-वासूपूज्यौ, 'कला'पदमधिष्ठितौ ।
शिर-'ई'स्थितिसंलीनौ, पार्श्व-मल्ली जिनोत्तमौ ।। २५ ।।

शेषास्तीर्थंकृतः सर्वे, 'ह-र' स्थाने नियोजिताः ।
मायाबीजाक्षरं प्राप्ता-श्चतुर्विंशतिरर्हताम् ।। २६ ।।

गतराग-द्वेष-मोहाः, सर्व-पाप-विवर्जिताः ।
सर्वदा सर्वकालेषु, ते भवतु जिनोत्तमाः ।। २७ ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा ।
तयाच्छादितसर्वांगं, मा मां हिनस्तु डाकिनी ।। २८ ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा ।
तयाच्छादितसर्वांगं, मा मां हिनस्तु याकिनी ।। २९ ।।

देवदेवस्य, यच्चक्र, तस्य चक्रस्य या विभा ।
तयाच्छादितसर्वांगं, मा मां हिनस्तु राकिनी ।। ३० ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा ।
तयाच्छादितसर्वांग, मा मा हिनस्तु लाकिनी ।। ३१ ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा ।
तयाच्छादितसर्वांगं, मा मां हिनस्तु काकिनी ।। ३२ ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा ।
तयाच्छादितसर्वांगं मा मां हिनस्तु शाकिनी ।। ३३ ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा ।
तयाच्छादितसर्वांगं, मा मा हिनस्तु हाकिनी ।। ३४ ।।

देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांग मा मां हिंसन्तु पन्नगाः॥ ३५ ॥
देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांग, मा मा हिंसन्तु हस्तिनः॥ ३६ ॥
देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं, मा मां हिंसन्तु राक्षसा.॥ ३७ ॥
देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं, मा मा हिंसन्तु वह्नय ॥ ३८ ॥
देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं, मा मां हिंसन्तु सिहकाः॥ ३९ ॥
देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं, मा मा हिंसन्तु दुर्जनाः॥ ४० ॥
देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा।
तयाच्छादितसर्वांगं, मा मां हिंसन्तु भूमिपाः॥ ४१ ॥
श्री गौतमस्य या मुद्रा, तस्या या भुवि लब्धयः।
ताभिरभ्यधिक ज्योतिरर्हन् सर्वनिधीश्वर॥ ४२ ॥
पातालवासिनो देवा, देवा भूपीठवासिनः।
स्वर्वासिनोऽपि ये देवा, सर्वे रक्षन्तु मामितः॥ ४३ ॥
येऽवधिलब्धयो ये तु, परमावधिलब्धय.।
ते सर्वे मुनयो दिव्या, मां संरक्षतु सर्वदा.॥ ४४ ॥
ॐश्रीह्रींश्च धृतिर्लक्ष्मी-गौरी चंडी सरस्वती।
जयाम्बा विजया क्लिन्ना, जिता नित्या मदद्रवा॥ ४५ ॥
कामांगा कामवाणा च, सानंदा नंदमालिनी।
माया मायाविनी रौद्री, कला काली कलिप्रिया॥ ४६ ॥
एताः सर्वा महादेव्यो, वर्तंते या जगत्त्रये।
मह्यम् सर्वाः प्रयच्छतु, कांति कीर्ति धृति मतिम्॥ ४७ ॥

दुर्जना भूतवेताला:, पिशाचा मुद्गलास्तथा ।
ते सर्वेऽप्युपशाम्यतु, देवदेवप्रभावतः ॥ ४८ ॥

दिव्यो गोप्य. सुदुष्प्राप्य:, श्रीऋषिमडलस्तवः ।
भाषितस्तीर्थनाथेन, जगत्त्राणकृतेऽनघः ॥ ४९ ॥

रणे राजकुले वह्नौ, जले दुर्गे गजे हरौ ।
श्मशाने विपिने घोरे, स्मृतो रक्षति मानवम् ॥ ५० ॥

राज्यभ्रष्टा निज राज्यं, पदभ्रष्टा निज पदम् ।
लक्ष्मीभ्रष्टा निजा लक्ष्मी, प्राप्नुवति न सशय ॥ ५१ ॥

भार्यार्थी लभते भार्यां, सुतार्थी लभते सुतम् ।
वित्तार्थी लभते वित्तं, नरः स्मरणमात्रतः ॥ ५२ ॥

स्वर्णे रौप्ये पटे कांस्ये, लिखित्वा यस्तु पूजयेत् ।
तस्यैवाष्टमहासिद्धिर्गृहे वसति शाश्वती ॥ ५३ ॥

भूर्जपत्रे लिखित्वेदं, गलके मूर्ध्नि वा भुजे ।
धारित सर्वदा दिव्य, सर्वभीति-विनाशकम् ॥ ५४ ॥

भूतैः प्रेतैर्ग्रहैर्यक्षै, पिशाचैर्मुद्गलैर्मलैः ।
वातपित्तकफोद्रेकैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ५५ ॥

ॐभूर्भुव.स्वस्त्रयीपीठ-वर्तिन.शाश्वता जिना ।
तैः स्तुतैर्वन्दितैर्दृष्टै-र्यत् फलं तत् फल श्रुतौ ॥ ५६ ॥

एतद् गोप्यं महास्तोत्र, न देयं यस्य कस्यचित् ।
मिथ्यात्ववासिने दत्ते, बालहत्या पदे पदे ॥ ५७ ॥

आचाम्लादितपः कृत्वा, पूजयित्वा जिनावलिम् ।
अष्टसाहस्रिको जाप. कार्यस्तत्सिद्धिहेतवे ॥ ५८ ॥

शतमष्टोत्तरं प्रात-र्ये पठन्ति दिने दिने ।
तेषा न व्याधयो देहे, प्रभवन्ति न चापदः ॥ ५९ ॥

अष्टमासावधिं यावत्, प्रातः प्रातस्तु यः पठेत् ।
स्तोत्रमेतन्महातेजो, जिनबिंबं स पश्यति ॥ ६० ॥
दृष्टे सत्यर्हतो बिंबे, भवे सप्तमके ध्रुवम् ।
पदं प्राप्नोति शुद्धात्मा, परमानन्दसंपदाम् ॥ ६१ ॥
विश्ववंद्यो भवेद् ध्याता, कल्याणानि च सोऽश्नुते ।
गत्वा स्थानं परं सोऽपि भूयस्तु न निवर्तते ॥ ६२ ॥
इदं स्तोत्रं महास्तोत्रं, स्तुतीनामुत्तमं परम् ।
पठनात् स्मरणाज्जापात्, लभते पदमव्ययम् ॥ ६३ ॥



श्रीचिंतामणिपार्श्वनाथ-स्तोत्रम्

किं कर्पूरमयं सुधारसमयं किं चन्द्ररोचिर्मयं,
किं लावण्यमयं महामणिमयं कारुण्यकेलीमयम् ।
विश्वानन्दमयं महोदयमयं शोभामयं चिन्मयं,
शुक्लध्यानमयं वपुर्जिनपतेर्भूयाद् भवालम्बनम् ॥१॥

पातालं कलयन् धरां धवलयन्नाकाशमापूरयन्,
दिक्चक्रं क्रमयन् सुरासुरनरश्रेणिं च विस्मापयन् ।
ब्रह्माण्डं सुखयन् जलानि जलधेः फेनच्छलाल्लोलयन्,
श्री चिन्तामणिपार्श्वसम्भवयशोहसश्चिरं राजते ॥२॥

पुण्यानां विपणिस्तमोदिनमणिः कामेभकुम्भे सृणि-
र्मोक्षे निस्सरणिः सुरद्रुकरणी ज्योतिःप्रभासारणिः ।
दाने देवमणिर्नतोत्तमजनश्रेणिकृपासारणिः,
विश्वानन्दसुधाघृणिर्भवभिदे श्री–पार्श्वचिन्तामणिः ॥३॥

श्रीचिन्तामणिपार्श्वविश्वजनतासंजीवनस्त्वं मया,
दृष्टस्तात ! ततः श्रियः समभवन्नाशक्रमाचक्रिणम् ।
मुक्तिः क्रीडति हस्तयोर्बहुविधं सिद्धं मनोवाञ्छितं,
दुर्दैवं दुरितं च दुर्गतिभयं कष्टं प्रणष्टं मम ॥४॥

यस्य प्रौढतम-प्रतापतपनः प्रोद्दामधामाजग-
ज्जंघालः, कलिकालकेलिदलनो मोहान्धविध्वंसकः ।
नित्योद्योतपदं समस्तकमलाकेलीगृहं राजते,
स श्रीपार्श्वजिनो जने हितकृतश्चिन्तामणिः पातु माम् ॥५॥

विश्वव्यापितमो हिनस्ति तरणिर्बालोऽपि कल्पांकुरो,
दारिद्र्याणि गजावलिं हरिशिशुः काष्ठानि वह्नेः कणः ।
पीयूषस्य लवोऽपि रोगनिवहं यद्वत् तथा ते विभो,
मूर्तिः स्फूर्तिमती सती त्रिजगती-कष्टानि हर्तुं क्षमा ॥६॥

श्री-चिन्तामणिमन्त्रमोंकृतियुत ह्री-कारसाराश्रित,
श्री-मर्हन्नमिऊणपासकलितं त्रैलोक्यवश्यावहम् ।
द्वेधाभूतविषापह विषहरं श्रेयः प्रभावाश्रयं,
सोल्लास वसहाङि्कतं जिनफुलिङ्गानन्दन देहिनाम् ॥७॥

ह्री श्री-कारवर नमोऽक्षरपर ध्यायन्ति ये योगिनो,
हृत्पद्मे विनिवेश्य पार्श्वमधिप चिन्तामणिसञ्ज्ञकम् ।
भाले वामभुजे च नाभिकरयोर्भूयो भुजे दक्षिणे,
पश्चादष्टदलेषु ते शिवपद द्वित्रैर्भवैर्यान्त्यहो ॥८॥

नो रोगा नैव शोका न कलहकलना नारिमारिप्रचारा,
नैवाधिर्नासमाधिर्न च दरदुरिते दुष्टदारिद्रयता नो ।
नो शाकिन्यो ग्रहा नो न हरिकरि-गणव्यालवैतालजाला,
जायन्ते पार्श्वचिन्तामणिनतिवशतः प्राणिना भक्तिभाजाम् ॥९॥

गीर्वाणद्रुमधेनुकुम्भमणयस्तस्याङ्गणे रङि्गणो,
देवा दानवमानवाः सविनय तस्मै हितध्यायिनः ।
लक्ष्मीस्तस्य वशा वशैव गुणिनो ब्रह्माण्डसस्थायिनी,
श्रीचिन्तामणिपार्श्वनाथमनिश सस्तौति यो ध्यायति ॥१०॥

इति जिनपतिपार्श्वपार्श्वपार्श्वाख्ययक्ष.,
प्रदलितदुरितौघः प्रीणितप्राणिसंघः ।
त्रिभुवनजनवाञ्छादानचिन्तामणिक ,
शिवपदतरुबीजं बोधिबीजं ददातु ॥११॥

॥ शिवमस्तु सर्वजगत ॥

नवकार का सामर्थ्य

जैसे अनेक उत्तम औषधियों के अर्क के मिश्रण से बनी छोटी सी पुड़िया में रोगनाश की अपार शक्ति होती है, वैसे ही मन्त्रो मे भी पापनाश की कल्पनातीत शक्ति होती है। समस्त शास्त्रो के रहस्य-स्वरूप होने से मन्त्र छोटा होता है, इसलिये उसे आत्मसात् करने मे अधिक अनुकूलता होती है, तथा उसे किसी भी अवस्था मे भी सरलता से गिना जा सकता है और उसके स्मरण से आचार शुद्धि, विचार शुद्धि, योग शुद्धि और अध्यात्म शुद्धि इन चारो की आराधना हो जाती है। समर्थ ज्ञानी पुरुष भी अन्त समय में मन्त्र मे ही अपना चित्त लगाते हैं। मन्त्र इष्ट देवता का स्मरण रूप है। अर्थ-भावनापूर्वक सतत स्मरण और जाप से धीरे-धीरे मन्त्र जिस इष्ट देवता का होता है, उस स्वरूप में उनका ध्यान करने वाला व्यक्ति भी बनता जाता है और आगे बढते-बढते क्रम से वह तन्मय, तद्रूप भी बन जाता है। महामन्त्र नवकार जैन शासन का परम मन्त्र है, तमाम आराधनाओं का यह अन्तिम रहस्य है। नवकार द्वारा समस्त उत्तम आराधना पकड़ मे आजाती है। नवकार का पुन. पुन. स्मरण करने वाला अन्त में पंचपरमेष्ठी स्वरूप बनता है। अथवा नवकार के प्रथम पद स्वरूप "नमो अरिहंताणं" का पुनः पुनः स्मरण करने वाली आत्मा अन्त में अरिहत स्वरूप बनती है। नवकार का सामार्थ्य अद्भुत है, वह सर्वाङ्ग-शुद्ध महामन्त्र है और दूसरे तमाम महामन्त्र और प्रवर विद्याओ का उत्कृष्ट बीज स्वरूप है।